खाकान कुबलाई

नैशनल बुक ट्रस्ट–पुस्तक

मार्को पोलो

मॉरिस कॉलिस

अनुवादक
जगत शंखधर

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

महामान्या राजकुमारी फहरुन्निसा, ज़ैयद अल हुसैन

को समर्पित

भूमिका

मार्को पोलो की पुस्तक का मूलपाठ मौले और पेलियट का अनुवाद है, (रूतलज द्वारा १९३८ में प्रकाशित) और इस पर ही मेरा प्रस्तुत विवरण आधारित है। सत्रह पांडुलिपियों तथा पहले के प्रकाशित संस्करणों—जिनमें जेल्दा पांडुलिपि भी शामिल है—से संग्रहीत यह मूलपाठ सम्पूर्ण है। जेल्दा पांडुलिपि की खोज एक दूरस्थित स्पेनिश पुस्तकालय में कुछ वर्ष पहले सर परसीवल डेविड ने की थी। मेरी पद्धति यह है कि मैं मुख्य घटनाओं का सारांश अपने शब्दों में कहता हूं फिर व्याख्या सहित उन पर सरसरी तौर से टीका करता हूं, जिसका एक उद्देश्य यह है कि मार्को पोलो को जितने विस्तृत स्वरूप में दिखाना सम्भव हो सकता है, दिखाया जाए। मैंने ज्यादा उद्धरणों का प्रयोग नहीं किया और जिनका किया है, उन्हें मैंने अटकल से ही मूल संस्करण के बाद के अनेक उपलब्ध अनुवादों में से इधर-उधर से ले लिया है, पर मैंने केवल उन्हीं उद्धरणों को चुना है, जिनकी वाक्य रचना मुझे सबसे अधिक उपयुक्त लगी है। फिर भी मेरा निर्देशक मूलपाठ मौले और पेलियट का अनुवाद ही रहा है जिसके अर्थों से मैंने कहीं विभेद नहीं किया, यद्यपि उद्धरणों को आवश्यक रूप से अक्षरशः वहीं से नहीं लिया गया है। मूल संस्करण की टिप्पणियां यद्यपि मेरे लिए बहुमूल्य सिद्ध हुई, पर इन पर किया गया टीका मेरा अपना है, और सुदूरपूर्व की सभ्यता को मैं जिस प्रकार से समझ सका हूं, वह उस पर ही आधारित है।

इसमें उद्भूत विवरण मुश्किल से मार्को पोलो के जीवन वृत्त का प्रारूप बनाता है। उसकी चारित्रिक विशेषताओं को विस्तृत रूप से बताने के लिए यद्यपि काफी जानकारी नहीं है, पर इसमें कम-से-कम इतनी झलक जरूर मिल जाती है कि मार्को पोलो की बुद्धि किस प्रकार की थी। वह मूलरूप से एक निष्कपट व्यक्ति एवं स्पष्टवक्ता था। कुछ तरीकों में, उसका दृष्टिकोण एक बालक की तरह का था, क्योंकि वह हर चीज़ को एक नई दृष्टि से देखता था। वह जो कुछ देखता, उससे अक्सर आश्चर्य चकित हो जाता, और बहुत से बच्चों की तरह उसे यह नहीं समझ में आता था कि कुछ नयी बातों से एक सच्ची कहानी को कैसे अलंकृत किया जाय। एक बच्चे की ही तरह, वह अधिक पढ़ा-लिखा नहीं था और उसकी पुस्तक की शैली में भी कुछ साहित्यिक-सा नहीं है। पर यह सच है कि वह बिल्कुल बच्चा न था, क्योंकि वास्तव में उसकी बुद्धि एक तार्किक आलोचक की थी।

मध्ययुग के जिस जमाने में वह रहता था, वह काल्पनिक बातों से भरा पड़ा था। लेकिन तोता-परियों की कहानियों में उसे विश्वास नहीं था। जहां उसका कोई समकालीन सभी तरह की आश्चर्यजनक कहानियां लिखकर गल्पकथाओं की एक पुस्तक की रचना कर डालता, वहां वह अपनी निगाह के नीचे आनेवाली हर चीज का परीक्षण करता है और उन चीजों के सिवाय वह अन्य किसी चीज के बारे में नहीं लिखता जो उसने स्वयं देखी हैं या जिनके बारे में उसने उन व्यक्तियों से सुना है, जिन्हें उसने विश्वस्त समझा। कहीं भी उसका गर्व या अहं अभिव्यक्ति नहीं पाता। वास्तव में हम यह महसूस करते हैं कि अपने व्यक्तिगत साहसिक कार्यों के बारे में वह आवश्यकता से अधिक मितभाषी है परन्तु जैसा कि मैं आगे बताऊंगा, उसने यह नहीं समझा कि वह यात्राओं की कोई पुस्तक लिख रहा था, जिसका मुख्य नायक वह स्वयं था—बल्कि अपने विचार में वह योरुप को समकालीन एशिया के प्रामाणिक विवरण दे रहा था।

सन् १९५० में जब मेरी पुस्तक प्रथम बार प्रकाशित हुई, तो इसे आक्सफोर्ड विश्व विद्यालयके चीनी भाषा के प्राध्यापक श्री एच० एच० डब्बस, एम० ए० बी० डी०, पी-एच० डी० ने पढ़ा और उन्होंने कृपापूर्वक अपने कुछ संशोधन मुझे भेजे, जिन्हें प्रस्तुत संस्करण में शामिल कर लिया गया है। इस कष्ट के लिए तथा मेरी रचना को उन्होंने अपनी सर्वसम्मत विद्वता का जो समर्थन दिया है, उसके लिए मैं उनका आभारी हूं।

मॉरिस कॉलिस

जनवरी १९५०

विषय-सूची

		पृष्ठ
१.	पोलो लोग चीन कैसे गए?	६
२.	मार्को पोलो की यात्रा की प्रेरक घटनाएं	१५
३.	फारस होकर यात्रा	२६
४.	सिल्क मार्ग	३१
५.	मंगोल	४०
६.	ग्रीष्म-प्रासाद में	४३
७.	पीकिंग का प्रासाद	४६
८.	मार्को पोलो के कार्यशील जीवन का प्रारम्भ	५५
९.	कागजी मुद्रा	५६
१०.	डाक के मार्ग	६२
११.	धर्म और ज्योतिष	६६
१२.	ऐस्बेस्टॉस और पत्थर का कोयला	७०
१३.	कुबलाई का आखेट	७३
१४.	मार्को पोलो का युन्नान में निरीक्षण दौरा	७७
१५.	हाथियों का संग्राम	८५
१६.	पगान का नगर	९४
१७.	सुंग राजवंश की राजधानी	९८
१८.	मंगोलों का जापान पर आक्रमण	१०९
१९.	चीनी जहाज़	११४
२०.	मार्को पोलो की सुमात्रा को समुद्र यात्रा	११७
२१.	अण्डेमान द्वीपसमूह	१२५
२२.	दांत की खोज	१२८
२३.	रहस्यमय हिन्दू-भारत	१३६
२४.	मोती और कच्चा अम्बर	१४२
२५.	पोलो के विश्व वर्णन का उपसंहार	१४४
२६.	पोलो का वेनिस वापिस लौटना	१४६
२७.	सामान्य निष्कर्ष	१५४

पोलों की यात्राओं को दर्शाते हुए ऐशिया का मान चित्र

अध्याय पहला

पोलो लोग चीन कैसे गए ?

यदि मार्को पोलो को अपनी जीवनी संक्षिप्त रूप से कहनी होती तो वह इस प्रकार कहता :

सन् १२६० में जब मैं छः वर्ष का था तो मेरे पिता निकोलो पोलो और चचा मैफियो, मुझे अपनी मां के पास वेनिसवाले पारिवारिक मकान में छोड़कर व्यापार के लिए कुस्तुन्तुनिया चले गये और इस प्रकार एक जगह से दूसरी जगह पहुंचते और पूर्व की ओर बढ़ते हुए वे वोल्गा तट पर, सराय पहुचे। इसके बाद मध्य एशिया को पार करते हुए वे समरकन्द के रास्ते बुखारा पहुंचे। उस नगर में उनकी मुलाकात चीन-सम्राट् के दरबार को जाने वाले राजदूतों से हुई। यह सम्राट्, चीन सागर से क्रीमिया तक के सारे राज्यों का खाकान अर्थात् अधिराज भी था। इन राजदूतों ने मेरे पिता और चाचा से आग्रह किया कि वे उनके साथ चीन चलें। उनका कहना था कि वहां खूब लाभ होगा। इस तरह वे सब साथ-साथ पुराने सिल्क मार्ग पर रवाना हुए और तिब्बत के उत्तर के रेगिस्तानों से होते हुए अन्त में पीकिंग पहुंचे जिसे पहले किसी योरुप निवासी ने नहीं देखा था। वह वर्ष सन् १२६५ ई० का था। वे पीकिंग में लगभग बारह महीने रहे और चलते समय खाकान ने उनको पोप के नाम एक पत्र दिया, जिसमें मंगोलों को ईसाई धर्म सिखाने के लिए पादरी भेजने का अनुरोध था। सन् १२६९ में वे वेनिस पहुंचे। उस समय मैं पन्द्रह वर्ष का हो चुका था और मेरी माता की मृत्यु हो चुकी थी। मेरे पिता और चचा मैफियो ने कोई पादरी ढूंढ़ने की कोशिश की पर पोप की मृत्यु के कारण उन्हें देर लग गयी। सारी व्यवस्था कहीं सन् १२७१ तक पूरी हो पायी और वे पादरियों के साथ फिर चीन को रवाना हुए। इस बार उन्होंने मुझे भी साथ ले लिया था।

यात्रा में साढ़े-तीन साल लग गये और पीकिंग पहुंचते-पहुंचते मैं इक्कीस वर्ष का हो चुका था। कोई भी भाषा सीखने में तो, मैं वैसे ही होशियार था, इसलिए मैंने शीघ्र ही मंगोल भाषा सीख ली। खाकान ने मुझे पसन्द किया और सन् १२७७ में मेरी सिविल सर्विस में नियुक्ति हुई। अपने काम के सिलसिले में मुझे चीन के बाहर और भीतर कई लम्बी यात्राओं पर भेजा गया और अन्त में

में एक बड़े नगर का गवर्नर बना दिया गया। मेरे पिता और चचा मैफियो बहुत धनी हो गये। वह जगह हमें बहुत अच्छी लगी। फिर पन्द्रह वर्ष चीन में रहने के बाद हमने घर जाना चाहा। किन्तु खाकान हम लोगों को नहीं जाने देते थे। फिर भी सन् १२९२ में, जबकि वेनिस छोड़े हमें करीब बीस साल हो चुके थे, उन्होंने इस शर्त पर हमें आने की अनुमति दी कि हम उस महिला को भी साथ ले लें, जिसे वे अपने चचेरे पोते की वहू बना कर भेज रहे थे। उनका चचेरा पोता मंगोल अधिराज्य के ऐसे भाग का अलखान या शासक था, जिसमें फारस भी सम्मिलित था। इस बार हम समुद्री मार्ग से सुमात्रा के तट से होते हुए भारत के पार फारस की खाड़ी से गये। इस यात्रा में दो वर्ष लग गये। उस महिला को खाकान के चचेरे पोते के सुपुर्द कर हम वेनिस की ओर बढ़े और वहां १२९५ के शुरू में पहुंचे। चूंकि हम तेईस वर्ष तक तो बाहर रहे और इसी बीच हमारे रिश्तेदारों को हमारी कोई खबर नहीं मिली थी, इसलिए वे सब लोग हमें देखकर बहुत ताज्जुब में पड़ गये।

मैंने समझा कि अब मेरे साहसिक कार्यों की समाप्ति हो गयी थी, पर बात ऐसी न थी। व्यापार में, जिनोआ, वेनिस का प्रतिद्वंद्वी था। जिस साल हम लौटे उसके दूसरे साल इन दो नगरों के व्यापारियों के बीच एक समुद्री युद्ध हुआ, जिसमें मैं पकड़ लिया गया और वहां के [illegible]धिकारियों ने मुझे जिनोआ की जेल में डाल दिया। वहां पर रस्टिशेलो [illegible] के एक व्यक्ति से मेरी भेंट हुई, वह भी कैदी था और साहित्यिक [illegible] का व्यक्ति था। मैंने जो कुछ एशिया में देखा था उसका विवरण बोल-बोल कर उसे लिखा दिया। मेरे बन्दी जीवन के तीन साल में एक पूरी किताब लिखी गयी। यह मेरे साहसिक कार्यों और यात्राओं का उतना विवरण नहीं था, जितना कि पूर्वी जगत का। वस्तुतः यही मार्को पोलो की कहानी है। आगे जो वर्णन आयेगा, उसे मैं इस विस्तार से कहूंगा कि आपको पढ़ने में रुचिकर लगे।

ऊपरी रूपरेखा में मंगोल अधिराज्य चीनसागर से क्रीमिया तक फैले हुए कहे गये हैं। निकोलो और मैफियो पोलो के १२६० में पहली यात्रा करने के कुछ ही पहले यह महान साम्राज्य स्थापित हुआ था। १२०० तक मंगोल लोग चीन और साइबेरिया के बीच के विस्तृत मैदानों पर रहने वाले बर्बर लोगों में से ही थे। उनके कबीलों में से एक कबीले में असाधारण सैन्य बुद्धि का एक व्यक्ति पैदा हुआ। बाद में वह चंगेज़ खां अथवा आसमुद्र क्षितीश प्रसिद्ध हुआ। अपनी आयु के चालीस बरस तक उसने अपना जीवन सारे मंगोल कबीलों को

एक करने में और पेशेवर फौज बनाने में बिताया। यह फौज चार बातों में दुनिया भर की किसी फौज से अच्छी थी—उसका अनुशासन अच्छा था, उसका संचालन अच्छा था, उसके शस्त्रास्त्र अच्छे थे और उसकी सहनशक्ति अच्छी थी। उसमें घुड़सवार धनुर्धर थे, जो दूसरे धनुर्धरों से जल्दी, अधिक दूर तक और अचूक तीर चला सकते थे। उनके घोड़े दूसरी फौजों के घोड़ों से अधिक पुष्ट और फुर्तीले थे और इसीलिए उनके सवार अपने विरोधियों की अपेक्षा अधिक तेजी से युद्ध संचालन कर सकते थे। दूसरा कारण जिससे मंगोलों ने सदा युद्ध जीते, वह था, अचानक आक्रमण करने की नीति। वे बड़ी फुर्ती से अपेक्षित दिशा से भिन्न दिशा में आक्रमण करते थे। इसके इलावा एक कारण और भी था वह यह कि उनके तीर तो दुश्मनों को लगते थे पर वे स्वयं मार से दूर रहते थे। जब विपक्षियों का इस प्रकार उत्साह भंग हो जाता तो मंगोल घोड़ों पर चढ़े हुए हर ओर से आक्रमण कर देते क्योंकि उनके शीघ्रगामी घोड़े उनको इसमें सहायता देते। जितना समय आधुनिक पैदल सेना को यंत्रचालित तोपखाने की टुकड़ी के सामने मिलता है, उससे अधिक समय उनके विपक्षियों को खुले मैदान में न मिलता था। और मंगोलों के युद्ध कौशल की नकल करना भी सम्भव नहीं था, क्योंकि उनकी तरह चोट करने और घुड़सवारी करने की निपुणता बचपन से अभ्यास करने ही से आ सकती थी।

ऐसी थी वह विकराल सेना, जिसकी सहायता से १२०६ के लगभग चंगेज़ खां ने सारे संसार पर आक्रमण किया और उसकी अपार धार्मिक निपुणता में उसने अपनी प्रतिभाशाली समरचातुरी का योग दिया, जिसके द्वारा एक साथ चार पृथक् सेनाओं को वह हजारों मील दूर के लक्ष्य पर भेज सकता था। प्रत्येक सेना अलग रास्ते से जाती, पर लक्ष्य पर साथ-साथ एक ही दिन पहुंचती। उसका उद्देश्य स्पष्ट था: वह सारे विश्व का मालिक बनना चाहता था। यह सच है कि उसे पता नहीं था कि विश्व कितना विशाल है, किन्तु वह कितना ही विशाल क्यों न हो, उसे विश्वास था कि वह उसे जीत लेगा। सन् १२२७ में उसकी मृत्यु होने से पहले ही उसके साम्राज्य में चीन का उत्तरी भाग, कैस्पियन सागर तक का विस्तृत भूभाग और उससे भी आगे क्रिमिया तक तथा उत्तरी फारस सम्मिलित हो गये थे।

उसके पुत्र ओगानई ने अपने पिता की महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने का निश्चय किया और खाकान चुने जाने पर वह शेष संसार को जीतने निकल पड़ा। उसने अपने भतीजे बातू को योरूप के विरुद्ध भेजा। बातू ने दक्षिणी रूस पर आक्रमण

किया और हंगरी को भी परास्त कर दिया। पोलैण्ड का विनाश करने के बाद बर्लिन से लगभग सौ मील दक्षिण लीगनिज में जर्मनों को पराजित किया। अगर सन् १२४१ में ओगातई की मृत्यु न हो जाती तो वह फ्रांस और इंग्लैण्ड तक जा पहुंचता। मंगोल वंश के नियमों के अन्तर्गत किसी खाकान की मृत्यु के अवसर पर उसका उत्तराधिकारी चुनने के लिए चंगेज़ परिवार के सारे सदस्यों को राजधानी कराकोरम (कृष्ण भीतियों) में जमा होना पड़ता था। इसलिए बातू मध्य एशिया के स्टेपी मैदानों के बीच कराकोरम लौट आया। बाद के दस वर्षों में ओगातई के बेटे कुयुक खां के अधीन कुछ अधिक प्रगति न हो पाई। तब १२५१ में ओगातई का भतीजा मंगू खाकान हुआ। उसके नेतृत्व में मंगोलों ने मुसलमानों पर आक्रमण किया जिनका पवित्र नगर बग़दाद खलीफाओं का केन्द्र था। खलीफा कालीन में लपेट कर पैरों तले दबा कर मार डाला गया। इसके बाद मंगू ने सीरिया ले लिया और दमिश्क को लूटा-पाटा, किन्तु मिस्र न ले सका, जहां कि खलीफा के उत्तराधिकारी भाग कर जा बसे थे। १२६० में, जब वृद्ध पोलो लोग कुस्तुन्तुनिया से चले थे, उसी साल उसकी मृत्यु हो गयी थी और उसके बाद उसका भाई कुबलाई उत्तराधिकारी हुआ। कुबलाई ने पीकिंग को अपनी राजधानी बनाया। खाकान होने के साथ ही साथ वह चीन का सम्राट् भी था। चूंकि उसका साम्राज्य काफी विस्तृत था और फासले बहुत थे, इसलिए वह अपने अधीनस्थ तीन खानों को पश्चिम में नियुक्त करने पर विवश हो गया। चुनाचे एक को फारस में, दूसरे को दक्षिणी रूस में वोल्गा पर, और तीसरे को अफगानिस्तान के उत्तरी प्रदेश में उसने नियुक्त किया।

ये आश्चर्यजनक घटनाएं चौअन वर्षों में घटी थीं। उनके कारण जो भारी और भयानक नरसंहार हुए, वैसे संसार ने पहले कभी नहीं देखे थे, क्योंकि मंगोल तो प्राचीन रोम के विजेताओं से भी अधिक बर्बर थे। अब उनके साम्राज्य का विस्तार भूमध्यसागर तक हो गया था और यह कहना कठिन था कि जाने कब वे योरूप पर फिर से आक्रमण शुरू कर दें, जिन्हें बातू ने उन्नीस वर्ष पहले छोड़ दिया था। इससे सारे ईसाई क्षेत्र में भीषण आशंका छा गई थी।

किन्तु, वास्तव में मंगोल संतुष्ट थे। सभ्य संसार के चार बटा पांच हिस्से की लूट-पाट से वे इतने अधिक धनी हो गये थे कि शेष पांचवें भाग का उन्हें लोभ न रहा। इसके सिवा, वे तेजी से सभ्य होते गये और व्यापार और शांति के लाभ समझने लगे थे। सड़कों, सरायों और डाकघरों की अत्यन्त निपुण व्यवस्था संगठित की गयी थी और किसी को भी, यहां तक कि विदेशियों तक के लिये

योरूप से दूर पूर्व तक की यात्रा करना सुरक्षित हो गया था। अनेक देशों के व्यापारियों ने इन रास्तों का उपयोग आरम्भ कर दिया। यह एक बिल्कुल ही नयी बात थी। रोमन साम्राज्यकाल में योरूप और एशिया में सिल्कमार्ग और समुद्र, दोनों ही से नियमित रूप से आवागमन था, किन्तु सातवीं शती में मुहम्मद की विजयों ने दोनों महाद्वीपों को अलग कर दिया था। उस समय के बाद अब जब मंगोलों ने साढ़े-पांच शताब्दियों के बाद उन मार्गों को फिर से खोला तो तब तक योरूप, चीन की महान् सभ्यता के विषय में जो कुछ जानता था वह सब भूल चुका था। अब खाकानों का चीन के सम्राट् के रूप में पीकिंग में रहते हुए पोलो का फिर वहां जाना सम्भव था।

खाकान किसी भी जाति के व्यापारियों को देखकर प्रसन्न होता था, किन्तु योरूप के ईसाइयों को देखकर वह विशेष प्रसन्न होता। सबसे पहले तो वह यह जानता था कि ईसाई मुसलमानों के दुश्मन हैं और सदियों से उनके विरुद्ध धर्म-युद्ध कर रहे हैं। क्योंकि मंगोल लोगों ने मिस्र में स्थापित इस्लामी शक्ति का आधा ही विनाश किया था, इसलिए ईसाई योरूप से मैत्री सम्बन्ध की नीति अच्छी थी। दूसरे, मंगोल लोग जब विजयों के लिए निकले थे तो उनका धर्म आदिम रीति का-सा था। खाकान ने सोचा कि सम्भवतः ईसाई धर्म उनके उपयुक्त हो।

अब यह समझा जा सकता है कि पोलो लोगों का सुरक्षित चीन तक यात्रा करना कैसे संभव हुआ, और कैसे उन्होंने वहां स्वागत पाया, और योरूप निवासियों के लिए वह कैसी नयी और विचित्र यात्रा थी। वेनिस के निवासी होने के कारण उन्हें और भी आसानी हुई। वेनिस इटली का कोई साधारण नगर नहीं था, बल्कि एक प्रजातन्त्र की राजधानी भी था। इटली का उत्तरी भाग उन दिनों जिन प्रजातन्त्रों में विभाजित था, उनमें वह सबसे धनी था। उसके अधिकार क्षेत्र में लोम्बार्ड का मैदान, एड्रियाटिक सागर का डालमेशियन तट और बहुत से यूनानी द्वीप सम्मिलित थे। कुस्तुन्तुनिया पर उसका बड़ा प्रभाव था और एशिया माइनर और कृष्णसागर के तट पर उसके कार्य-संस्थान थे। वास्तव में, वेनिस का शहर उन पूर्वी तिजारती चीज़ों की मंडी था जिन्हें इस्लामी रियासतें अपने व्यापारियों को विभिन्न निकट-पूर्वी व्यापारिक बन्दरगाहों पर बेचा करती थीं। वेनिस के व्यापारी इसीलिए पूर्व के लोगों के व्यवहार से परिचित थे और निकट-पूर्व की भाषाएं जानते थे। जब मंगोलों ने चीन के लिए मार्ग तैयार किए तो वेनिस निवासी उन मार्गों से होकर दूर पूर्व की यात्रा करने में, औरों से अधिक समर्थ थे। इससे यह

स्पष्ट हो जाता है कि पोलो लोगों ने जो यात्राएं कीं वह उनके लिए क्यों स्वाभाविक थीं। उनकी ख्याति इस बात पर निर्भर करती है कि वे चीन पहुंचने वाले मध्ययुगीन यात्री थे, और मार्को की ख्याति इस बात पर है कि वह एशिया का आंखों देखा वर्णन देने वाला पहला योरूप निवासी था। उनकी सफलताओं का मूल्यांकन करने से पहले यह स्मरण रखना चाहिए कि उनके समकालीन कौन थे। सन् १२६० में दांते पैदा भी नहीं हुआ था, और मध्ययुग की हस्तियों में से सबसे विचित्र, फ्रांस का राजा, सेंट लुई जीवित था। योरूप गरीब, अज्ञान और छितरा बसा हुआ था। मार्को पोलो की पुस्तक ने प्रकाश की बाढ़ छोड़ दी। उसके प्रकाशन के बाद की शताब्दी में इटली में कला कौशल तथा विद्या की जागृति का जो युग आया, वह पुराने यूनान और रोम के जीवन और दर्शन के भूले ज्ञान की पुनः प्राप्ति ही नहीं थी, किन्तु पूर्वी जगत् के सारे पांडित्य का परिचायक भी था। विद्या के पुनरुद्धार के इस दूसरे स्वरूप में, मार्को पोलो की पुस्तक ने किसी अन्य से अधिक योगदान किया।

अध्याय दूसरा

मार्को पोलो की यात्रा की प्रेरक घटनाएं

मार्को पोलो का अपने पिता और चचा की पहली चीन-यात्रा का विवरण बहुत संक्षिप्त है, किन्तु उसमें उसकी अपनी यात्रा को समझने के लिए आवश्यक विवरण हैं। जैसा मैंने कहा है कि १२६० में उसके भाई कुस्तुन्तुनिया में थे। निकोलो पोलो का एक मकान क्रीमिया स्थित सूडाक में था जो एक व्यापारिक अड्डा था और जहां दक्षिणी रूस पर आधिपत्य जमाने वाले मंगोल अपने व्यापार का माल लाये। पोलो लोगों ने अपने व्यापार के सामान्य क्रम में सूडाक जाने का निश्चय किया और कृष्णसागर पार कर उस बन्दरगाह पर पहुंचे। वे रुपया या सामान तो नहीं ले गये, किन्तु जवाहरात ले गये थे, जो हल्के होते हैं और छिपाने में अधिक आसान होते हैं। पर चूंकि, सूडाक में व्यापार मन्दा था, इसलिए स्टेपी का मैदान पार कर वे वोल्गा पर स्थित सराय चले गये। यहां से निकट ही वोल्गा कैस्पियन सागर में गिरती है। यह बरकाखां की राजधानी थी। बरकाखां ने चंगेज़ कुटुंब के सदस्य अपने भाई बातू—जिसने केवल बाईस वर्ष पहले पोलैण्ड और हंगरी को लूटा था—से उत्तराधिकार प्राप्त किया था और जिसे दक्षिणी रूस जागीर में मिला था। किन्तु इस बीच में ही मंगोल बदल गये थे। बरकाखां अब पश्चिम के साथ व्यापार करना चाहता था। उसने पोलो लोगों के रत्नों का ढेर खरीद लिया, जिससे उन्हें सौ फीसदी मुनाफा मिला।

तब उनका इरादा उसी राह से लौटने का था, जिधर से वे आये थे। किन्तु महान् मंगोल शांति, स्थानीय रूप से भंग हो गयी। खाकान कुबलाई के अधीन होने के नाते, बरकाखां को उस जागीर के सरदार के साथ अच्छे सम्बन्ध रखने चाहिए थे, जिसका मुख्य केन्द्र फारस था। उस जागीर का वह सरदार, चंगेज परिवार का एक अन्य सदस्य हलाकू था। किन्तु बरकाखां और हलाकू दोनों झगड़ पड़े, जो कि चंगेज़ खां की मरते समय की इच्छा की गम्भीर अवहेलना थी। उसने अपने वंशजों को चेतावनी दे दी थी कि अगर उनमें आपस में फूट पड़ी तो मंगोल साम्राज्य ज्यादा दिनों न टिकेगा। जिस स्टेपी मैदान के रास्ते से पोलो लोग सराय आये थे, उस पर हलाकू ने छापा मार कर टुकड़ियां भेज दीं। इसलिए वे घर न लौट सके और उन्होंने कैस्पियन सागर के सिरे के गिर्द उस तीसरे अधीनस्थ

खान की हद में घुमने का निश्चय किया जो बुखारा में रहता था। यह अफगानिस्तान के उत्तर में था और उसका नाम बरक था। वहां पहुंच कर उन्होंने ज्यादा व्यापार किया और फारस के रास्ते होकर भूमध्यसागर लौटने की योजना बनायी। चूंकि हलाकू और बरकाखां में झगड़ा तब भी चल रहा था इसलिए उस ओर के रास्ते भी अरक्षित थे। बुखारा एक मनोरम नगर था, उसकी जलवायु भी अच्छी थी और वातावरण भी सुन्दर था। फिर पोलो लोग धनी थे, उन्हें कोई वापिस जाने की जल्दी न थी। इसलिए एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष बीत गये और वे वहीं बने रहे।

तब १२६५ में एक दिन हलाकू के दरबार से फारस में मंगोल राजदूत आये। वे सिल्क मार्ग से अथवा उसकी उत्तरी शाखा से जो बुखारा होकर जाती है, चीन जा रहे थे, और पोलो लोगों से मिलकर ताज्जुब में पड़ गये, क्योंकि सामान्यतः कोई योरूप निवासी उन हिस्सों में नहीं आता था। वहां से चलने से पहले उनमें जान-पहिचान हो गयी और राजदूतों ने पोलो लोगों को साथ चलने का न्यौता दिया, और कहा—

"तुम चीन में बहुत अच्छा व्यापार कर सकते हो और खाकान पश्चिम से परदेसियों को चाहते हैं।"

पोलो लोगों ने सोचा पीकिंग का बहुत दूर का सफर था और राजदूतों के साथ जाने का मतलब अपने लोगों से साफ बिछुड़ कर इन लोगों के ऊपर पूरी तौर से अपने को छोड़ देना था। फिर उन्होंने सोचा चार बरस से ज्यादा तो वे मंगोल राज्य में रह ही आए थे और वे वहां की भाषा भी बोल लेते थे और अभी भी कुस्तुन्तुनिया से चीन की आधी दूरी पर ही तो थे। फिर जैसा राजदूत कहते हैं, अगर खाकान ने उनका वैसा ही सत्कार किया तो शायद वे और धन जमा कर लें। संक्षेप में यूं कहें कि उन्होंने जाने का ही निश्चय किया। सफर में उन्हें एक साल लग गया। उनका रास्ता तुरफान और हामी के नखलिस्तानों और उनसे भी आगे था, जहां सिल्कमार्ग की उत्तरी शाखा दक्षिणी शाखा से सहस्र बुद्धों की गुफाओं, तुन हुआंग के पास मिलती है। वहां से वे पीली नदी की ओर होकर तब पीकिंग गये, जो कि मंगोल भाषा में खानबलिग या खान का नगर कहलाता था।

मार्को पोलो अपने पिता और चचा के पीकिंग निवास का, इससे आगे और कोई विवरण नहीं देता कि क्या खाकान कुबलाई ने उनका सद्भावपूर्वक स्वागत किया और उनसे पश्चिमी संसार के विषय में प्रश्न किये? एक साल वहां रहने

के बाद उन्होंने लौटने की आज्ञा मांगी, और तब कुबलाई ने उनसे कहा कि वह चाहता है कि कुछ ईसाई पादरी उसके दरबार में भेज दिये जायें। वास्तव में उसने इन को पोप के पास भेजने के लिए अपना राजदूत बनाया और अपने अमीरों में से एक को इनके साथ जाने की आज्ञा दी। उन्हें पोप के नाम पादरियों को भेजने के लिए एक पत्र दिया और उसके लिए पवित्र समाधि से थोड़ा तेल भी लाने के लिए उनसे कहा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उसने उन्हें सोने की एक पटिया दी, जो एक तरह का पासपोर्ट था या पासपोर्ट से भी कहीं बड़ी चीज थी। यह एक फुट लम्बी और तीन इंच चौड़ी सोने की पट्टी थी, जिस पर इस अभिप्राय के शब्द खुदे थे : "उस अविनाशी प्रभु की शक्ति से खान का नाम पवित्र रहे। जो व्यक्ति उसका आदर न करे वह मौत के घाट उतार दिया जाय।" जिन लोगों के पास ऐसी पटियां रहती थीं वे विस्तृत मंगोल राज्य में उन्हें कहीं भी दिखा सकते थे, और उनको दिखाने मात्र से स्थानीय शासकों या किसी व्यक्ति से, भोजन, घोड़े और अन्य सहायता पाने के लिए निश्चित रहते।

निःसन्देह उनकी वापसी की यात्रा कठिनाइयों और साहसिक कार्यों से भरी थी, क्योंकि उनका साथी, अमीर, बीमार पड़ गया और उसे उन्हें पीछे छोड़ देना पड़ा। उस यात्रा में तीन बरस से कम नहीं लगे। लगता है कि बुखारा पहुंच कर वे फारस और सीरिया होकर भूमध्यसागर के उत्तरी-पूर्वी कोने में उस जगह पहुंचे जो लायस नाम से विख्यात है। वहां से वे फिलस्तीन तट से उतर कर अकरे पहुंचे जो धर्म-युद्ध करने वालों द्वारा किलेबन्द नगर था और जिस में वे लोग अब भी रहते थे। वहां पहुंच कर उन्हें पता लगा कि पोप, क्लिमेंट, चतुर्थ की मृत्यु हो गयी है और उनका उत्तराधिकारी अभी नियुक्त नहीं हुआ। इस पर वे चर्च के महत्वपूर्ण अधिकारी लीगेट थियोबाल्ड से मिले[1], जो अकरे में रहता था। इस व्यक्ति ने उन्हें बताया कि रोम के दरबार में मतभेद के कारण नये पोप के चुनाव में कुछ समय लग जायगा। इसी के अनुसार इन भाइयों ने निश्चय किया कि वे अपने घर वेनिस जायं और जब तक चुनाव की घोषणा न हो जाय वहीं रह कर प्रतीक्षा करें। जैसा मैंने कहा है कि निकोलो ने देखा कि उसकी

---

[1]यह निश्चित नहीं है कि गिरजाघर के जिस अधिकारी से दोनों पोलो १२६९ में मिले थे, वह थियोबाल्ड ही था, किन्तु १२७१ में तीनों पोलो निश्चय ही उससे मिले थे।

पत्नी मर चुकी थी और उसका बेटा मार्को पन्द्रह साल का होशियार युवक हो चुका था।

पोप की गद्दी दो साल तक खाली रही और इस तरह से ये भाई खाकान के आदेशों का पालन न कर सके, कि वे चिट्ठी देकर मिशनरी पादरियों को ठीक कर लेते। उन्होंने सोचा कि सबसे अच्छा यही रहेगा कि अकरे वापस चलकर थियोबाल्ड से सलाह की जाय। मार्को को साथ लेकर उन्होंने १२७१ में वेनिस से विदा ली। लीगेट ने कहा कि वे जो कुछ सफाई देंगे उसके अनुमोदन में वह उन्हें खुशी से खाकान के नाम पत्र देगा। उसने उन्हें सलाह दी कि वे कम से कम पवित्र समाधि से तेल तो ले ही लें।

अतः वे अकरे से यरूशलम गये। पवित्र समाधि के गिरजे में एक दिया जलता था, जो कहा जाता है कि ईसामसीह के दफनाने के बाद से दैवी चमत्कार से जल रहा था। उसमें से थोड़ी मात्रा में तेल मोल लिया जा सकता था। उसमें से उन्होंने एक बोतल खरीदी और अकरे लौट गये।

थियोबाल्ड से विदा लेकर वे नवम्बर १२७१ में, निश्चय ही मार्को को साथ लिये चीन की वापसी यात्रा पर चल पड़े। किन्तु अभी वे लायस से आगे भी न बढ़ पाये थे कि उन्हें शुभ संवाद मिला कि जिस लीगेट थियोबाल्ड से वे इतनी अधिक बातचीत कर चुके थे, वह दसवें ग्रेगरी के रूप में पोप चुन लिया गया था। जल्दी ही अकरे लौट कर उन्होंने उसे अपना सम्मान प्रदर्शित किया। थियोबाल्ड अब खाकान के पास ले जाने के लिए उन्हें दो मिशनरी पादरी दे सकता था, फिर उसने उन्हें उपयुक्त सन्देशों और उपहारों के साथ एक नया पत्र भी दिया। पादरियों में से एक विलियम त्रिपोली का, सुप्रसिद्ध विद्वान था और उसने कई पुस्तकें लिखीं थीं। यह लिख देना रोचक है कि हमारे राजकुमार एडवर्ड, जो बाद में प्रथम एडवर्ड हुए, उन दिनों तीर्थयात्रा पर अकरे में थे और लीगेट थियोबाल्ड के निकट मित्रों में से थे। पोप चुने जाने तक थियोबाल्ड उनके अधिकारी मंडल के सदस्य थे।

इस दल ने अब नये रूप से प्रस्थान प्रारम्भ किया और पहले की तरह जहाज से लायस गया जहां से फारस होकर पूर्व को रास्ता शुरू होता था। किन्तु अब मिस्र और मंगोल लोगों में जो लड़ाई चल रही थी, इससे इन्हें दूसरी रुकावट का सामना करना पड़ा। जब मंगोलों ने ईराक पर आक्रमण किया और खलीफा को मौत के घाट उतार दिया, तो उनका इरादा उत्तर की ओर बढ़ कर इस्लामी राज्य के नये केन्द्र मिस्र को जीतने का था। मिस्र का राजवंश उन दिनों बहुत

प्रबल था और मामलूक या गुलाम वंश के नाम से विख्यात था, क्योंकि इसके सुलतान पहले गुलाम थे, जो अपनी योग्यताओं और सामरिक उपलब्धियों से राजशक्ति को छीनने में समर्थ हुए थे। इन लोगों में सबसे विलक्षण बीबर्स था। उसने न केवल मंगोलों द्वारा दक्षिणी सीरिया की लूटपाट और मिस्र के आक्रमण को रोका, बल्कि स्वयं फारसी क्षेत्र पर शासन करने वाले इलखान हलाकू के राज्य पर हमला बोल दिया। इस हमले के समय तीनों पोल चीन जा रहे थे। इस हमले की गड़बड़ी के कारण लायस से फारस होकर यात्रा करना खतरनाक हो गया था। सुलतान बीबर्स उस क्षेत्र में बड़ी तेजी से बढ़ रहा था। उसकी फुर्ती की बड़ी ख्याति थी, यह कहा जाता था कि उसने एक ही सप्ताह में एक बार से अधिक दमिश्क और काहिरा में टेनिस खेली थी। दोनों पादरी डर गये और उन्होंने लायस छोड़ने से इन्कार कर दिया और पोलो लोग उन्हें वापस भेजने पर लाचार हो गये। किन्तु यदि उन्हें खाकान का सद्भाव बनाये रखना था तो इतने दिन रुक जाने के बाद खुद खतरा झेलने के लिए उन्हें लाचार होना पड़ा और वे कार्यक्रम के अनुसार लायस से चल पड़े। नक्शे में उनका मार्ग दिखाया गया है। कृष्णसागर से फारस की खाड़ी जाने वाले मुख्य मार्ग को पकड़ने के लिए उन्हें पहले काकेशिया प्रदेश में इजेरम जाना था। उस नगर में दाहिने घूम कर उन्होंने तबरेज तक यात्रा की और वहां से किरमान गये जहां एक दोराहा था, एक तो दक्षिण को फारस की खड़ी पर स्थित होर्मुज को जाता था और दूसरा उत्तर को सिल्कमार्क की निचली शाखा की ओर।

युवा मार्को को चलते हुए जिन चीजों में कौतूहल होता, उन्हें वह बड़े ध्यान से देखता और आस-पड़ोस के स्थानों के बारे में उसे जो कुछ बताया जाता, वह भी सुनता। उदाहरण के लिए वह अरारात पर्वत का जिक्र करता है, जहां नूह का जहाज पहले धरती से लगा था, उसे बताया गया कि "दूर से दिखाई देने वाली बड़ी काली चीज जो दूर से ही बरफ के बीच दिखाई पड़ती है, वह जहाज है और वह अब भी चोटी पर है जहां अभी तक कोई चढ़ नहीं सका।" यह विश्वास बहुत पुराना है कि जहाज अरारात पर्वत पर ज्यों का त्यों रह गया था। यहूदी इतिहासवेत्ता जोजेफस का भी यही मत है। सन् १८२६ में, जब तक प्रोफेसर पैरट ने १६,००० फीट ऊंची चोटी पर चढ़ कर यह नहीं दिखा दिया कि चोटी पर वर्फ के सिवा कुछ नहीं, तब तक स्थानीय निवासियों का भी यही मत रहा।

दूसरी बात जिसमें मार्को पोलो को कौतूहल हुआ वह सड़क के उत्तरी क्षेत्र में

फौव्वारे की तरह का एक तेल का कुआं था, जिस में से इतनी बहुतायात से तेल निकलता कि सौ जहाज एक साथ लादे जा सकते थे। उसका कहना है, "यह तेल खाने के लिए तो नहीं किन्तु जलाने में ठीक रहता है और जिन ऊंटों को खुजली हो जाती है उन्हें भी लगाया जाता है।" यूरोपीय साहित्य में यहीं हम पहले-पहल बाकू के उन विशाल तेल के क्षेत्रों का वर्णन पाते हैं जो आधुनिक जगत के लिए इतने महत्वपूर्ण बन गये हैं।

वे ज्यों-ज्यों उस सड़क पर बढ़ते गये, पोलो लोगों ने अन्तिम खलीफा अल मुस्तसिर बिल्लाह (जो खुदा से मदद चाहता है), तथा सोलह बरस पहले, उस समय के खाकान के नायब, मंगू के रूप में, हुलाकू द्वारा राजधानी बगदाद के ध्वंस की कहानियां सुनीं। 'अरेबियन नाइट्स' (अलिफलैला) के कारण हमारा सुपरिचित बगदाद सदियों से अब्बासी खलीफाओं का निवास स्थान रहा। वहां जो खजाना जमा था वह बेशुमार था, वह सोने और जवाहारात का संसार में सबसे बड़ा भंडार था। मार्को कहता है, कि हुलाकू जब खजाने में घुसा, तो वह अचम्भे में आ गया, किन्तु उस दौलत का सदुपयोग न करने के लिए उसे खलीफा से नफरत हो गयी। इस्लामी जगत के उस स्थानच्युत पोप (खलीफा) से उसने पूछा,

"तुमने अपने बचाव के लिए काफी बड़ी फौज न रखने की बेवकूफी क्यों की?

उस अभागे के पास जवाब देने के लिए एक शब्द भी न था। हुलाकू ने अपनी बात जारी रखी,

"मैं साबित कर दूंगा कि सोना इसके अलावा और किसी काम का नहीं, कि उस से चीजें खरीदी जा सकती हैं।"

खलीफा सोने के साथ खजाने में बन्द कर दिया गया। जब उसे भूख लगी तो हुलाकू ने ताना मारा :

"अपना सोना खाओ, जिसे तुमने इतनी सावधानी से जमा करके रखा है।"

मार्को पोलो ने जो कहानी सुनी वह यह थी कि खलीफा सोने से घिरा ही रह कर भूख से मर गया। दूसरे लोगों ने बताया कि हुलाकू ने सोने को गला कर और उसके गले में उंडेल कर उसे खिलाया। किन्तु इतिहासज्ञ यह विश्वास करते हैं कि वह एक बड़े कालीन में लपेट दिया गया और उसके बोझ और दबाव के नीचे उसे कुचल दिया गया, या उससे छोटे कालीन में लपेट कर उसे घोड़ों से कुचलवा दिया गया। बगदाद के खलीफा पांच सौ वर्षों तक शानदार और रोमानी व्यक्ति रहे। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि मगोलों द्वारा उनकी

पराजय के इतने शीघ्र बाद तबरेज़ मार्ग से आने के कारण मार्को पोलो उनके पतन की कहानी में इतनी उत्कटता से उत्सुक था। पर हमें यह याद रखना है कि अपनी किताब लिखने के समय तक वह मंगोलों का बड़ा मित्र हो गया था और मुसलमानों पर उनकी विजयों ने उसे मुग्ध कर दिया था, केवल इस लिए ही नहीं कि वह मंगोलों का प्रशंसक था किन्तु इसलिए भी कि मुसलमान ईसाइयों के वंशागत शत्रु थे। उनसे धर्मयुद्ध करने वालों द्वारा यरूशलम दो बार छीन लिया गया था, किन्तु पोलो जब अकरे में ही था तो उसके कुछ ही समय पहले यरूशलम पुनः मुसलमानों ने वापिस ले लिया था तथापि फिर भी उन्होंने पवित्र स्थानों की सार-सम्भाल रखी, और समाधि के चिराग़ को जलता रखा था।

मार्को पोलो किसी दृश्य का वर्णन करने से, कहानी अधिक अच्छी तरह कहता है—तबरेज़, जिसने उस क्षेत्र का सबसे शानदार शहर होने के नाते, बग़दाद की जगह ले ली थी—के बारे में वह इतना ही कह पाता है :

"नगर सब तरह के मनोरम बड़े-बड़े फलों से भरे सुन्दर बागों से घिरा है।" (फारस का बाग़ जितना रमणीय होता है उससे भी अधिक रमणीय दिखाई पड़ता है क्योंकि वह मरुस्थलीय भूदृश्य के बीच स्थित होता है।)

इब्नबतूता, (एक यात्री) का वर्णन—जो चालीस बरस बाद तबरेज़ से होकर गया था—बहुत अधिक सजीव है। वह कहता है,

"मैं जौहरियों के बाजार से होकर टहलता हुआ निकला, तो मूल्यवान रत्नों की चमक दमक से मेरी आंखें चौंधिया गयीं। खूबसूरत गुलाम आलीशान कपड़े पहने और रेशम में लिपटे अच्छे से अच्छे जवाहारत मंगोल महिलाओं के आगे रखते, और वे इन्हें खुले हाथों खरीदतीं।"

इस तरह के दृश्य की कल्पना पोलो शायद ही कर पाता।

और आगे चलकर वे सावाह पहुंचे। यहां पोलो से बाइबिल के तीन मैजाई विद्वानों का किस्सा बताया गया। मार्गदर्शकों ने उसे एक चौकोर इमारत दिखाई और उसे उसके भीतर ले जाकर तीन समाधियां भी दिखायीं, जिनमें लेप किए हुए तीन शव दिखायी पड़ते थे, इन शवों के बाल भी अच्छी हालत में थे और दाढ़ी भी। उन्होंने बताया,

"ये तीन बादशाह, मैजाई हैं जो शिशु क्राइस्ट के लिए उपहार लाये थे।"

पोमो अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने और जानने का प्रयत्न किया किन्तु जिन लोगों से उसने पूछा उनकी अनभिज्ञता के कारण वह निराश हो गया। वह उनसे

इतनी ही सूचना प्राप्त कर सका कि यह "गैस्पर", "मेल्शियोर" और "वल्थाजार" नाम के तीन बादशाह थे, और बहुत समय पहले यहां गाड़ दिये गये थे। पर कुछ दूर आगे बढ़ कर उसने उनके बारे में एक अनोखी कहानी सुनी। जब वे बेथहम में अपने उपहार भेंट कर चुके तो शिशु क्राइस्ट ने बदले में उन्हें एक बन्द छोटी मंजूषा दी। जब वे वापस घर लौट रहे थे तो अपने कौतूहल का संवरण करने में असमर्थ होकर उन्होंने उस छोटी सी मंजूषा को खोल डाला किन्तु उसमें सिर्फ एक पत्थर मिला। निराश हो कर उन्होंने उस पत्थर को कुएं में फेंक दिया। उनके ऐसा करते ही कुएं में आग लग गयी। तब उनकी समझ में आया कि पत्थर पावन पदार्थ था, जिसमें कुछ दैवी शक्ति थी और उन्होंने अपने साथ उस आग में से ही कुछ आग ले जाने का यत्न किया। फिर बाद में पावन अग्नि की भांति पूजते हुए उसे उन्होंने अपने मन्दिरों में प्रज्वलित भी रखा। जोरास्ट्र के फ़ारसी मत में निस्संदेह अग्नि-पूजा की प्रथा थी और इसी घटना से पोलो अग्नि पूजा की उत्पत्ति भी बतलाता है। तीन बादशाहों की कथा से मुग्ध होने वाला वह अन्तिम वेनिसवासी ही नहीं था। प्रायः उन सभी कलाकारों ने जो बाद में वेनिस का गौरव बने, "शिशु को अपने उपहार भेंट करते हुए इन तीन बादशाहों" का चित्र बनाया। जिन नामों से वे सामान्यतः जाने जाते हैं, इनके अतिरिक्त उनको और भी अनेक नाम दिये गये। इस प्रकार की सीरियाई पुस्तकों में वे अरुफान, हुरमान, और तक्षेप तथा हिब्रू पुस्तकों में, मैगलोथ, गलगलाथ, सारासिया और अतोर, सतोर तथा पेतातोरस के नाम से विख्यात हैं। आजकल के कलाकार अब भी उनके चित्र बनाते हैं यद्यपि उन्हें उनकी पूरी कहानी और उनके ऐन्द्रजालिक नामों का पता नहीं है।

सावाह से आगे, रास्ता, फारस के उस भाग में से होकर जाता है जो अपने घोड़ों के लिए प्रसिद्ध है। यह घोड़े निस्संदेह अरबी नस्ल के थे। पोलो घोड़ों का बड़ा शौकीन था और अपनी यात्राओं में उसने काफी सवारी की। वह फारस के इस भाग में अच्छे अरबी घोड़े का ठीक-ठीक दाम बताते हुए एक सौ नब्बे पौंड कहता है। तब और अब मुद्रा के मूल्य का अन्तर देखते हुए यह बहुत ऊंचे दाम हैं। ऐसा लगता है कि उन दिनों फ्रांस में अव्वल दर्जे के घोड़े का दाम साठ पौण्ड था। निरन्तर मेहनत और तेज रफ़्तार के लिए अरबी घोड़ों की अपूर्व प्रसिद्धि रही। अन्य लेखकों द्वारा ऐसे जानवरों की प्रमाणित कहानियां हैं, जो एक दिन में नब्बे मील जा सकते थे और हफ्ते भर तक इसी तरह चलते रहने में समर्थ थे। गर्म देशों में, जो घोड़े पर कभी

पंचास मील चले हैं, वह जानते हैं कि इसके अर्थ क्या होते हैं। सबसे प्रसिद्ध सांडनी सवार भी इस रफ्तार से रेगिस्तान पार करने में कभी समर्थ नहीं हुए

पोलो लोग खुद भी लगभग बीस मील प्रतिदिन की यात्रा करते थे। दाहिनें बायें सूखे पहाड़ थे, किन्तु बीच में उपजाऊ मैदान था, जिसके बीच-बीच में खजूर के पेड़ों के जंगल थे। इन जंगलों में तीतर और बटेर थे और कभी-कभी जंगली गधे तक दिखाई दे जाते थे। यह लगता है कि वेनिस वाले बाजों से कुछ शिकार कर सके थे। इस तरह वक्त गुजारते हुए वे बिना किसी घटना के किरमान पहुंच गये। रास्ते पर आक्रमणकारियों या लुटेरों का कोई चिन्ह नहीं था। पादरी लोग बेकार ही घबरा गये थे, वास्तव में उस क्षेत्र का मार्ग बिलकुल निरापद था।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं किरमान में रास्ता उत्तर दक्षिण शाखाओं में बंटा हुआ था और ऐसा ही वर्णन निकोलो और मैफ़ियो ने अपनी पहली यात्रा में भी किया था। इस अवसर पर सिल्क मार्ग पकड़ने के बजाय पोलो लोगों का विचार फारस की खाड़ी पर स्थित होर्मुज से होकर समुद्री रास्ते से चीन पहुंचने का था। इसके अनुसार वे किरमान से दाहिनी ओर मुड़ गये और दो सौ मील दूर होर्मुज को चल पड़े। इस यात्रा में उन्हें बड़े बीहड़ भूखण्डों से होकर जाना पड़ा। किरमान से चलने के बाद उन्हें दस हजार फीट का एक दर्रा चढ़ना पड़ा जहां भीषण ठंड थी। उसके बाद उन्हें लम्बे ढलान का मैदान मिला जो बहुत गर्म और घना बसा हुआ था। वहां उन्होंने पहली बार कूबड़वाले बैल देखे (स्पष्टतः भारत के कूबड़वाले बैलों की तरह)। सारे गांव गारे की दीवारों के बने थे। यह मैदान किरमान के मंगोल शासक द्वारा अच्छी तरह आरक्षित नहीं था और उस क्षेत्र में लुटेरों का प्रबल दल स्वच्छन्द घूमता था।

मार्को पोलो की किताब[1] में उल्लिखित उन बहुत ही थोड़ी अप्रत्याशित घटनाओं में से एक यह भी है कि पोलो लोग इन लुटेरों से बाल-बाल बच गये। क्या घटित हुआ यह समझने के लिए हमें मानना होगा कि पोलो लोग अपने निजी जानवरों, नौकरों और रक्षकों के साथ एक बड़े कारवां के हिस्से की भांति यात्रा कर रहे थे। रास्ते में एक जगह ऐसी भयंकर आंधी आयी कि उससे बिलकुल अन्धेरा हो गया। डाकुओं ने धुंधल की ओट में आक्रमण किया। पोलो लोग और उनके दल के अन्य लोग जो संख्या में सात थे, समीप के कोनोसाल्मी नाम के दीवारों

---

[1]इस परिच्छेद के अन्त में नोट देखिए।

से घिरे गांव में घुस जाने में सफल हुए। बाकी का सारा कारवां लुटेरों ने पकड़ लिया। उसके कुछ आदमी गुलाम बना कर बेच दिये गये और कुछ मार डाले गये। अपनी यात्रा के शुरू में कुछ बड़ी अद्भुत चीजें देखने के कारण मार्को को यह विश्वास हो गया था कि इन लुटेरों के पास मंत्रबल से आंधी बुलाने की शक्ति है और वे अपना आक्रमण छिपाने के लिए सदा यही करते हैं। दूसरे लेखकों ने इस आंधी को जादुई कोहरा भी कहा है, जिसे सूखा कोहरा कहना अधिक उपयुक्त रहेगा, क्योंकि इसके कण धूलिमय होते थे। ये लेखक लिखते हैं कि सन् १७६२ में सिंध और कच्छ की सेनाओं के बीच एक युद्ध में ऐसा ही सूखा कोहरा छा गया था, जिस से दिन का प्रकाश भी लगभग छः घण्टे के लिए धुंधल से भर गया, और इसी बीच सेनाएं जटिल रूप से मिल गयीं। जब कुहरा निकल गया और हर पक्ष के सैनिक ने अपने को घिरा देखा तो दोनों सेनाएं आतंक में पीछे हट गयीं। लोगों में यह विश्वास व्याप्त था कि ऐसा कुहरा जादू का चमत्कार है। इसका कारण शायद यही था कि पूर्वी सेनाओं के साथ रहने वाले जादूगर यह दावा करते थे कि ऐसे कुहरे को वह किसी समय बुला सकते हैं।

इस भयप्रद अनुभव के बाद पोलो लोगों ने होर्मुज की ओर अपनी यात्रा जारी रखी। तीन दिन चलने के बाद वे एक दूसरे दर्रे पर पहुंचे जो बन्दरगाह को पहुंचता था। यह मैदान वह था जो पहाड़ पर से आ रही इन नदियों के पानी द्वारा सींचा जाता था जिन्हें ये लोग पार करके आए थे, और जिस पर जगह-जगह खजूर तथा दूसरे फलों के पेड़ थे। उस जमाने में होर्मुज मुख्यस्थल भाग पर स्थित था, उस द्वीप में नहीं जहां सोलहवीं शती में पुर्तगालियों ने अपनी गद्दी बनायी थी। पोलो लिखता है, "यह अतुल व्यापारीय नगर था और भारत और चीन का समुद्री मार्ग यहीं समाप्त होता था।" किन्तु ऐसा लगता है कि जब पोल लोगों ने बन्दरगाह पर जहाजों की जांच की तो जितने आकार की वे अपेक्षा कर रहे थे, उससे उन्हें छोटा पाया, और वे इन जहाजों के द्वारा समुद्र यात्रा करने से डर गये। अतः उन्होंने समुद्र से होकर चीन जाने का इरादा छोड़ दिया और किरमान वापस लौटने का निश्चय किया, कि वहां पहुंच कर बायीं शाखा पकड़ें जिस से सिल्क मार्ग पर पहुंच जायं। बीस बरस बाद उनके योरप लौटने पर उन्हें समुद्री मार्ग से आना था, किन्तु उस समय तक वे चीन के रईस हो चुके थे और खाकान ने उन्हें बड़े और आरामदेह जहाज दिये थे।

होर्मुज में उन्हें असह्य गर्मी का सामना करना पड़ा, जिसका परिचय शायद उस हर व्यक्ति को है, जो पहले विश्वयुद्ध में फारस की खाड़ी के युद्ध में सम्मिलित हुआ था। मार्को उस मरुभूमि की भयंकर हवा का थोड़ा सा वर्णन देता है। "गर्मी में हवा अक्सर रेतीले मैदान के चारों ओर से होकर चलती है, और वह इतनी दुर्वह होती है कि यदि हम फौरन गर्दन तक पानी में न बैठ जाएं तो वह हमें खतम कर दे।" वह आगे लिखता है कि जब वे लोग होर्मुज में थे तो किरमान के शासक ने अपने अधीन प्रदेश पर बकाया कर वसूल करने लोगों को वहां भेजा। कर वसूल करने वाले एक दिन सवेरे ही रेगिस्तान की इस गर्म हवा में फंस गये और सब का ही दम घुट गया। इस दुर्घटना का हाल सुन कर होर्मुज के अधिकारियों ने उनके शरीरों को गाड़ने के लिए टुकड़ी भेजी, किन्तु उन्होंने देखा कि वे लाशें सूख कर ऐसी भुरभुरी हो गयी थीं कि उनका कोई अंग या सिर बिस्कुट की तरह बिना टूटे उठाया ही नहीं जा सकता था। बाद के यात्रियों ने पोलो द्वारा लिखित हवाओं के इस वर्णन की पुष्टि की है वास्तव में दूसरे रेगिस्तानों में इनका चलना भी सर्वविदित है और बहुत भयंकर होने पर यात्री का कुछ ही क्षणों में ये दम घोट देती हैं, और बाद में उसके शरीर को लकड़ी की तरह सुखा भी देती हैं।

किन्तु पोलो लोग होर्मुज से किरमान बिना किसी खतरे का सामना किए लौट आये और उस नगर में खैरियत से पहुंच गए।

चीन के मार्ग पर नोट

यद्यपि मंगोलों ने चीन से भूमध्यसागर को सिल्क मार्ग से होकर खुश्की का रास्ता खोल दिया था, वे फारस की खाड़ी पर स्थित होर्मुज बन्दरगाह से आगे समुद्री मार्ग खोलने में समर्थ न हुए, क्योंकि मुसलमान लोग—जिनको वे पूरी तरह वश में नहीं कर पाये थे—मिस्र पर अधिकार किए हुए थे और इस लिए भूमध्यसागर को लालसागर से होकर जाना पड़ता था।

अध्याय तीन

फारस होकर यात्रा

किरमान से उत्तर की ओर एक बीहड़ रेगिस्तान था, जो कभी सपाट रेगिस्तान कहा जाता था। उसमें मीठे पानी और हरियाली का नितान्त अभाव था। यहां तक कि जंगली जानवर भी दिखायी नहीं पड़ते थे। क्योंकि उसमें उनके खाने के लिए कुछ भी न था। यह आरपार सौ मील का था और पोलो लोग अपने साथ पानी लिए उसकी जलती रेत पर घिसटते हुए कुबनान पहुंचे। यह एक बड़ा नगर था, जहां खान से धातु निकालने का काम होता था। कुबनान छोड़कर वे फिर पहले की तरह के एक और अधिक सूखे और कष्टकर रेगिस्तान में पहुंचे। आठ दिन चलने के बाद वे फारस की उत्तरी सीमा पर स्थित तावस नगर आये। रेगिस्तान उनके पीछे रह गया था और अब वे सुन्दर लोगों से आबाद शीतोष्ण प्रदेश में थे।

जैसा कि हम देखते आये हैं, मार्को पोलो सदैव दुर्लभ और असाधारण की खोज में रहता था। वह जिन दूरवर्ती प्रदेशों में यात्रा कर रहा था वे फारस और अफगानिस्तान के बीच में थे और महान् सिकन्दर के भारत आक्रमण की याद वहां अभी तक ताजा थी। मध्ययुग में प्राचीन इतिहास भुला दिया गया था और उसका स्थान उपाख्यानों ने ले लिया था। सिकन्दर की जीवनियों के कितने ही उपाख्यान लिखे गये थे, क्योंकि वह प्राचीनयुग का सबसे उत्कृष्ट व्यक्ति समझा जाता था। जब वह भारत पर आक्रमण कर रहा था तो कहते हैं कि वह एक ऐसे स्थान पर आया जहां एक दिव्य वृक्ष था। लोग कहते थे कि उस पेड़ के नीचे खड़े होकर जिस प्रश्न का उत्तर चाहो उसे मन में सोचने से वह वृक्ष स्वयं उसका उत्तर देता था। वह वृक्ष के नीचे आया और मौन प्रश्न किया : "क्या मैं संसार का राजा होकर सकुशल मकदूनिया लौट जाऊंगा?" वृक्ष से भारतीय भाषा में उत्तर मिला : "तुम संसार के राजा तो हो जाओगे किन्तु फिर मकदूनिया कभी न देखोगे।" मार्को पोलो के युग में यही कहानी प्रचलित थी। अतः उसकी उत्तेजना की कोई भी कल्पना कर सकता है। जब तावस के लोगों ने उसे बताया कि वही वृक्ष जिसने सिकन्दर से इतनी सच्ची भविष्यवाणी की थी, पन्द्रह शताब्दी बाद, अभी भी उत्तर की ओर एक मैदान में

विशाल आकार के रूप में देखा जा सकता है। किन्तु वह उसे देख न पाया, क्योंकि वह उस रास्ते से बहुत दूर था। निस्संदेह उस स्थान पर चिनार का एक विशाल और प्राचीन वृक्ष था, जिसके साथ सिकन्दर का उपाख्यान लोगों ने जोड़ दिया था।

तावस निवासियों ने उसे पहाड़ के एक वृद्ध व्यक्ति के विषय में बताया। पोल लोगों के समसामयिकों में से सम्भवतः सबसे असाधारण और विशिष्ट यह व्यक्ति कैस्पियन के दक्षिण में स्थित एक बड़े दुर्ग अलामुत (गरुड़ का घोंसला) में रहता था। लोगों का कहना था कि उसके दुर्ग के पास एक निर्जन घाटी थी, जिस में केवल एक ही द्वार से प्रवेश किया जा सकता है, और वह द्वार दीवार में बना था।

वृद्ध व्यक्ति ने घाटी का निर्माण फलों के वृक्ष, फूल और स्वच्छ जल की धाराओं वाले उद्यान के रूप में किया था। जगह-जगह मनोहर मंडप थे, विस्मयजनक रीति से नक्काशी किए हुए और मुलम्मे के काम वाले। जिनकी दीवारों पर चित्र टंगे थे, ये मंडप कालीन और दीपकों से सुसज्जित थे। प्रत्येक मंडप में नाचने, गाने और बजाने में प्रवीण तरुणियां नियुक्त थीं, और सेवक सुस्वादु भोजन और मदिरा लिये तैयार खड़े रहते थे। वृद्ध व्यक्ति का उद्देश्य उसे यथासम्भव स्वर्गतुल्य बनाने का था। पर स्वयं अपने आनन्द के लिए नहीं वरन् राजनीतिक कारणों से। वह इस्माइली नाम के मुसलमानों के एक धर्मद्रोही सम्प्रदाय का प्रधान था। इस सम्प्रदाय की स्थापना दो शताब्दी पहले हुई थी। इस हिसाब से वह एक एक तरह का पोप या खलीफा था और उसके अनुयायी उसे खुदा का प्रतिनिधि मानते थे। अलामुत के अलावा उनके पास वैसे ही अन्य अत्यन्त दृढ़ दुर्ग भी थे जैसे सलीबी युद्ध करने वालों के पास फिलस्तीन में थे। किन्तु एक कट्टर मुसलमानी देश में वे लोग जैसा जीवन व्यतीत कर रहे थे, उससे उनकी स्थिति संकटापन्न हो गयी थी। क्योंकि इस्माइली छोटा सा अल्पसंख्यक सम्प्रदाय था। अपने को अधिक शक्तिसम्पन्न करने के लिए ही उन्होंने अपना स्वर्ग बसाया था।

इस सबका स्पष्टीकरण विचित्र है। अपनी मर्जी का अनुभव कराने के लिए वे हत्या कराते थे। यदि उनकी मांगें पूरी नहीं होतीं, या उन्हें किसी राजा या राजकुमार पर अपने विरुद्ध षड्यन्त्र करने का संदेह होता, तो वे विशेषरूप से प्रशिक्षित और निष्ठावान हत्यारों को नियुक्त करते और ये हत्यारे सामान्यतः अपराधी व्यक्तियों का बड़ी सफाई से काम तमाम कर देते क्योंकि वे बेधड़क थे,

भौर अपने को किसी भी खतरे में डालने से झिझकते न थे। उदाहरणत: वे मस्जिद में छिपकर घुस जाते भौर नमाज़ के वक्त सारी भीड़ के सामने अपने शिकार को ठिकाने लगा देते। हत्यारों को धर्मान्धता की उपयुक्त तीव्रता तक पहुंचाने के लिए वे स्वर्ग का उपयोग करते।

जिन लोगों का वे हत्यारे-दूतों के रूप में उपयोग करते वे सीधे-सादे पहाड़ी लोग होते थे। पहले वह उन लोगों को स्वर्ग के आनन्दों के बारे में बताते और यह बताते कि खुदा के बड़े इमाम के नाते वे जिसे चाहें उसे जन्नत बख्शने की ताकत उनमें है। जब ऐसा अवसर आता कि उन्हें कोई हत्या करानी होती तो वे कुछ चुने हुए कट्टर तरुण भक्तों को बेहोश करने वाली भांग की बूटी, से तैयार हशीश पिला देते। मूर्च्छावस्था में उन्हें सुन्दर घाटी में ले जाया जाता और जागने पर वे अपने को जन्नत में समझते, क्योंकि उसके आनन्द बिलकुल वैसे ही होते जैसे उनको बताये गए थे। वे युवक जब वहां काफी दिनों तक पूरे तौर पर आनन्द उठा लेते तो वे फिर उन्हें हशीश पिलवा देते और उन्हें उठवा कर अपने दुर्ग में मंगा लेते।

जब वे होश में आते तो स्वाभाविक था कि अपने को जन्नत में न पाकर वे दुखी हो जाते। तब वृद्ध व्यक्ति उनसे कहता :

"यदि तुम अमुक धर्म स्थान पर जा कर अमुक व्यक्ति की हत्या कर दो, तो जीवित बचो या न बचो, मेरे देवदूत तुम्हें फिर स्वर्ग पहुंचा देंगे।"

उनकी निष्ठापूर्ण सेवा को निश्चित करने के लिए यह पर्याप्त होता। कितना ही दुस्साहिसिक काम क्यों न हो उसे सदैव उत्साही स्वेच्छासेवी व्यक्ति मिल जाते। उसके यह तरीके इतने सफल थे कि आसपड़ोस के शासक उससे बहुत डरे रहते।

मार्को पोलो आगे वर्णन करता है कि मंगोलो ने जब फ़ारस प्रदेश को जीता तो उनका किस प्रकार पर्वत के इस वृद्ध पुरुष से सामना हुआ। उसने अपने को अलामुत की गढ़ी में बन्द कर लिया था, किन्तु दुर्धर्ष हुलाकू उसका और उसके सम्प्रदाय का उन्मूलन करने का निश्चय किये था, और उसके दुर्ग और उसके स्वर्ग का बड़ी कठिनाई के बाद सन् १२५६ में अर्थात् मार्को की पूर्व की यात्रा के पंद्रह वर्ष पहले नाश करने में वह सफल हुआ था।

पर्वत के वृद्ध पुरुष की यह कहानी कल्पनामात्र नहीं है। वह उस युग का सुप्रसिद्ध व्यक्ति था, जिसके नाम से लोग थर्राते थे और बहुत से अन्य इतिहासकारों ने भी उसका वर्णन किया है। वह (१०९० से १२५६ तक की इस्माइली

धर्माध्यक्षों की परम्परा में से) प्रसिद्ध व्यक्तियों के समूह की हत्या करवाने में सफल हुआ। इस सूची में फारस के शाह, मिस्र के वजीरे-आज़म, बगदाद के दो खलीफा, और त्रिपोली के काउन्ट रेमंड, और यरूशलम के बादशाह कोनरड (धर्म युद्ध के सुप्रसिद्ध सेनानी) शामिल हैं। वृद्ध पुरुष के अधीनस्थ कर्मचारियों में एक व्यक्ति ने उसके हर काम की नकल की थी। वह दमिश्क के पास लेबनान पर्वत पर रहता था। वह पर्वत के वृद्ध पुरुष की इसी उपाधि से या कभी-कभी सीरिया के वृद्ध पुरुष के नाम से प्रसिद्ध था। धर्मयुद्ध के सेनानी शैम्पेन के काउंट हेनरी एक बार इस व्यक्ति से मिले थे। काउंट हेनरी को घुमा कर दुर्ग दिखाया गया और उन्होंने सफेद कपड़े पहने दो युवकों को एक मीनार के सिरे पर बैठे देखकर कुछ कहा। इस्माइली इमाम उनकी ओर घूमकर बोला,

"मुझे विस्मय है कि तुम्हारा कोई ऐसा निष्ठावान् प्रजाजन होगा जैसा मेरा है?"

और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसने दोनों युवकों को इशारा किया। वे फौरन मीनार पर से कूद पड़े और वीरगति पा गए। यह स्मरण रखना रोचक होगा कि उन पोलो लोगों के नगर छोड़ने के कुछ ही समय बाद, अकरे में १२७२ में हमारे एडवर्ड प्रथम जब गद्दी के उत्तराधिकारी थे तो इस समय वे इस्माइली हत्यारों द्वारा मारे जाने से बाल-बाल बचे थे। वृद्ध पुरुष का एक अन्य असाधारण कार्य अंग्रेजी भाषा को (हत्यारे के लिए) नया शब्द असैसिन देना था, जिसकी उत्पत्ति अरबी हश्शशीन अथवा हशीश खाने वाले से है।

यद्यपि इस परिशिष्ट का पोलो लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी इसे प्रसंग को छोड़ देना असम्भव है।

हलाकू द्वारा इस्माइलियों के अभाव के बाद यह सम्प्रदाय छिप कर काम करने लगा और गुप्तरूप से अपने इमाम या धर्मगुरु का चुनाव करता रहा। समय बीतता गया और एक इस्माइली धर्म प्रचारक भारत गया जिसने बम्बई प्रदेश में बहुत से हिन्दुओं का धर्म परिवर्तित किया; इन्होंने बाद में खोजा नाम धारण किया। ये लोग फारस में इमाम को चन्दा भेजते रहे। १८४० में इमाम का नाम आगा खां था। उसने किरमान में अपने को स्वतन्त्र सम्राट् घोषित करने की कोशिश की, किन्तु हरा दिया गया और वह भारत भाग गया, जहां खोजा लोगों ने अपने धर्मप्रधान को अपने बीच रहने के लिए आया

देख कर खुशी से उसका स्वागत किया और इसे असंगत नहीं समझा। बाद में वह ऐंग्लोइंडियन समाज में बड़ा सामाजिक व्यक्ति और बम्बई की घुड़दौड़ क्लब का प्रधान संरक्षक भी बन गया था। अगर उसके उत्तराधिकारी, वर्तमान आगा खां को हूब-हू में देखा जाय तो पता चलेगा कि वह अपने को इस्माइलियों का प्रधान लिखता है। यह तथ्य कि पर्वत के वृद्ध पुरुष के वंशज इमाम रहते हुए इंग्लैण्ड की घुड़दौड़ में सबसे ऊंची तीन बाजी जीत लें, ऐसा विरोधाभास नहीं है, जैसा कि लगता है, क्योंकि यह असंदिग्ध है कि इस्माइलियों के मध्ययुगीन धर्माध्यक्ष संसार भर में सर्वोत्कृष्ट अश्वदेश के केन्द्र में रहने के कारण घोड़ों की नस्ल के अच्छे पारखी भी थे।

अध्याय चार

सिल्क मार्ग

किन्तु अब हम अपनी यात्रा की ओर मुड़े, जैसा कि मार्को पोलो वृद्ध पुरुष के विवरण के अन्त में लिखता है। हमने यात्रियों को तावस में छोड़ा था। वहां से उन्होंने अफ़गानिस्तान पार करके और हैरात होकर बल्ख को जाते हुए बिना किसी घटना के उत्तर पूर्व की दिशा की ओर मुंह किया।

बल्ख सदियों से, व्यापार मार्गों पर सुप्रसिद्ध संगमस्थल था। एक रास्ता काबुल और पेशावर होकर भारत को जाता था, दूसरा, ढाई सौ मील ठीक उत्तर की ओर समरकन्द जाने का भी था। या उत्तर पश्चिम में करीब-करीब उतनी ही दूरी पर बुखारा को : जैसा कि मैं कह चुका हूं, दोनों ज्येष्ठ पोल लोगों ने सिल्क मार्ग की उत्तरी शाखा में बुखारा से प्रवेश किया था। अब सवाल यह था कि उन तीनों को वही रास्ता फिर पकड़ना चाहिए या अधिक दक्षिणी मार्ग, जो कि बल्ख से सीधे पामीर पर्वत पार कर काशगर और यारकन्द जाता था। चूंकि वे बल्ख में थे इसलिए दक्षिण की ओर का रास्ता अधिक छोटा था। उन्होंने उसी को पकड़ने का निश्चय किया, हालांकि बल्ख और काशगर के बीच पामीर की पर्वतीय दीवार पार करना बहुत कठिन था।

जिस लम्बे मार्ग पर उन्होंने भूमध्यसागर से यात्रा की, उस पर उन्हें बहुत कम मंगोल दिखायी पड़े थे, यद्यपि पूरे समय वे मंगोल शासन के क्षेत्र में ही रहे। विभिन्न देशों के निवासी वैसे ही रहते थे, जैसे वे विजय से पहले रहा करते थे। यह सन्देहजनक है कि चोटी के कुछ लोग और सशस्त्र आधिपत्य सेना के अतिरिक्त शासनाधिकारी नस्ल से मंगोल थे। गांवों में और सड़कों पर फारस के लोग आर्मीनियन, अरब और यहूदी अपने सामान्य कपड़े पहने, स्वाभाविक कार्य करते फिरते थे। फिर भी मंगोल शासन की छाप कुछ तो रही ही होगी। पोलो लोग स्वयं उस शासन के चिह्न थे, वे खाकान की सोने की पटिया लिए चलते थे और उसके नाम पर किसी भी व्यक्ति से खाद्य सामग्री, नये घोड़े, सामान लादने के जानवर और सुरक्षा के सामान, तथा अन्य प्रत्येक सुविधा की मांग कर सकते थे। मंगोल-विजय का दूसरा चिह्न, खंडहर थे। बल्ख अभी भी अधिकतर

संडहर था। चंगेज खां ने १२२२ में उसका ध्वंस किया था और अब, पचास वर्ष बाद, उस नरसंहार में से जो निवासी बच रहे थे, वे धीरे-धीरे फिर लौट आये किन्तु मुख्य भवनों की मरम्मत अभी तक नहीं हुई थी। वह अपनी मस्जिदों और अपने महलों के लिए विख्यात था। इसके इतिहास का विस्तार उस समय तक पन्द्रह सौ वर्ष था जब वह सिन्कदर महान् द्वारा संस्थापित यूनानी राज्यों के नितांत पूर्व में स्थित बैक्ट्रिया की राजधानी रह चुका था। यथार्थ में वहां सिकन्दर की अभी भी चर्चा थी, क्योंकि मार्को पोलो उस किंवदन्ती का वर्णन करता है कि इस औपख्यानिक मकदूनियावासी का विवाह बल्ख में फारस के शाह दारियस की बेटी रुक्साना से हुआ था। वहां के नागरिकों में बचे-खुचे अभागे लोग उस कहानी में अभी भी अनुरक्त थे जिस के कारण खंडहर की क्रूर वास्तविकता कुछ कम होती लगती थी, और मार्को भी, कुबलाई खां और मंगोलों के पराक्रम की सराहना के बावजूद इसका वर्णन करके यह संकेत करना चाहता है कि उसे इस बात पर गर्व था कि कोई यूरोपीय विजेता पहले कभी पूर्व में इतनी दूर तक नहीं आ पाया था। यह भी उल्लेखनीय है कि न ही कोई अन्य यूरोपीय इतनी सफलता प्राप्त कर पाया था, यहां तक कि महान रोम साम्राज्य फरात पर ही पहुंच कर रुक गया था। आजकल सिकन्दर के कारनामे हमें प्रभावित नहीं करते, क्योंकि हम देख चुके हैं कि सारा एशिया हमारे अधीन है। किन्तु तेरहवीं शताब्दी में, विशेषत: मंगोलों के आक्रमण और इन पूर्वीय लोगों द्वारा यूरोप के एक भाग का विध्वंस करने के बाद, सिकन्दर की ख्याति चोटी पर थी। यद्यपि आक्रमणों में रुकावट आ गयी थी और मंगोल लोग स्थिर होते से लग रहे थे, किन्तु यह डर बना ही रहता था कि वे फिर न आक्रमण कर दें। इसलिए यह सोचना बड़ा अच्छा लगता था कि कभी कोई यूरोपीय, बल्ख तक की दूरी तक न केवल विजय करने, बल्कि स्टेपी मैदान तक अपना राज्य, जमाने में भी सफल हुआ। ये विचार मार्को पोलो के मन में थे, क्योंकि, यद्यपि वह बहुत कुछ पूर्वी हो चुका था, पर फिर भी वह असली यूरोपीय था, जिसका अन्त में मंगोलो से मन भर गया और जो वेनिस लौटने के लिए आतुर हो उठा था।

यूनानी सभ्यता के चरमोत्कर्ष का प्रतीक होने के अतिरिक्त बल्ख ऐसी जगह थी, जिससे आगे के खंड में भौगोलिक परिवर्तन शुरू हो जाता था। पर्वतों का जटिल पुंज, जो संसार की छत कहलाता है और जिसमें पामीर और हिन्दुकुश सम्मिलित हैं—उसके पूर्व में ऊंचा उठा हुआ है। उन्हें पार करना उस किसी भी जोखिम के काम से बड़ा था, जिसका सामना ये यात्री अब

तक कर चुके थे। किन्तु पहाड़ों में उन्हें वदख्शां नामक पठार मिला जो रमणीक स्थान था। पोलो लिखता है, "पठार के ऊपर, दिन भर की कड़ी मेहनत के बाद ही पहुंचा जा सकता है, और वहां पहुंच कर घास और पेड़ों से भरा एक चौड़ा मैदान देखने को मिलता है।" इस उद्यान-के-से मैदान में से होकर ट्राउट मछलियों से भरी झिलमलाते पानी की धाराएं बहती हैं। हवा ऐसी शुद्ध थी कि घाटी में रहने वाले लोग, पठार को आरोग्यगृह मानते थे, और वहां एक बार जाने से बुखार अच्छा हो जाता था। पोलो आगे लिखता है, "मुझे अपने अनुभव से यह बात और भी प्रामाणिक लगी। क्योंकि उन भागों में रहते हुए मैं लगभग साल भर तक बीमार रहा, किन्तु लोगों के कहने के अनुसार पठार पर जाकर तुरन्त स्वस्थ हो गया।"

ये तथाकथित बातें "**ट्रैवेल्स**" या "**बुक ग्राफ सर मार्को पोलो**" में दी गई कुछ थोड़ी ही व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों में से हैं और अनिश्चित हैं। हम यह मान लें कि मार्को पोलो की तबियत कुछ दिनों ठीक न रही हो और इस तरह के पहाड़ पर जाकर वायु परिवर्तन के कारण वह ठीक भी हो गया हो, पर यह नहीं कहा जा सकता कि कितने दिनों तक उसकी बीमारी ने उसे रोक रखा। वास्तविकता यह है कि न तो ठीक-ठीक रास्ता और न उसे पार करने का सही समय **पुस्तक** से निकाला जा सकता है। कहा जाता है कि चीन की पूरी यात्रा में साढ़े तीन बरस लगे। किन्तु तीनों पोल कहां रुके रहे या उनकी इतनी धीमी प्रगति का क्या कारण था, यह **पुस्तक** में नहीं दिया गया।

ज्येष्ठ पोलो लोगों ने बुखारा से पीकिंग तक यात्रा करने में एक वर्ष लगाया था। जो यात्रा वे अब आरम्भ कर रहे थे वह भी उतनी ही दूरी की थी। यह फासला लगभग तीन हजार मील का था। दस मील प्रतिदिन की औसत गति और हफ्ते में एक दिन के विश्राम के हिसाब से यह यात्रा लगभग साल भर की बनती है। हमें यहां बीसवीं शताब्दी में एक दिन में दस मील बहुत नहीं लगता, किन्तु अभी भी बैलगाड़ी ऊंट या लद्दू घोड़े पर एशिया के रास्तों पर अधिक-से-अधिक औसत हो सकता है। मंगोल साम्राज्य में फासले इतने अधिक थे कि बिना डाक ले जाने वाले घोड़ों के नियमित डाकघरों के अधीन भागों पर केन्द्र का नियन्त्रण असम्भव हो जाता साधारण संदेशवाहक एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र तक पच्चीस मील तय करता था, किन्तु द्रुतगामी संदेशवाहक थोड़ी-थोड़ी देर बाद घोड़ा बदलते हुए चौबीस घण्टे में चार सौ मील का धावा

मार सकता था । यदि हम यह कल्पना कर सकें कि यह गति पीकिंग से बल्ख तक बराबर रखी गयी हो तो यह दूरी एक सप्ताह में पूरी कर ली जाती होगी। किन्तु मेरा निश्चित मत है कि सबसे अधिक व्यग्ररूप से आवश्यक सन्देश भी महीने भर से कुछ कम ही समय में पहुंचता होगा। सम्भवतः बीच-बीच में पोलो लोगों ने ऐसे सन्देशवाहकों को तेजी से जाते हुए देखा हो । यह दृश्य ऐसा रहा होगा, जिस से उन्हें लगा होगा कि वे कुबलाई के सम्पर्क में ही हैं। वास्तव में यात्रा की प्रगति के बारे में कुबलाई को खबर कर दी गयी थी, क्योंकि उसके अधिकारी जिन्हें उसने इसी अभिप्राय से भेजा था, उनसे पीकिंग से चालीस मंजिल (कम से कम चार सौ मील) पर ही मिले थे । यह स्मरण रखते हुए कि वे चीन लौटने के लिए कितने उत्सुक थे, हम यह कल्पना कर सकते हैं कि यदि उन्हें यात्रा में ठीक तीन साल लग गये तो उन्होंने इसका कारण अपनी धीमी प्रगति बताया होगा, ताकि वह उनसे चिढ़ न जाय।

किन्तु जैसा मैंने पहले कहा, इस तरह की कुछ भी बात मूलपाठ में नहीं दी गई। वह उनके भ्रमण का व्यवस्थित विवरण भी नहीं है। किन्तु जिस मार्ग से वे गये, उस रास्ते में आने वाली सभी मतलब की बातों के वे नोट जरूर हैं । पुस्तक का उद्देश्य व्यक्तिगत कार्यों का ग्रन्थ बनाना नहीं था, किन्तु चुने हुए उन तथ्यों का संग्रह करना था, जिन्हें पोलो ने महत्वपूर्ण समझा, क्योंकि वे उसके समय के यूरोप निवासियों को मालूम न थे और जो उसके विचार में यूरोप निवासियों को जानने चाहिए थे। संक्षेप में, उसका उद्देश्य भौगोलिक था, चरित्रात्मक नहीं, और उसका अभिप्राय मनोरंजन से अधिक शिक्षा देना था। फिर भी उसका विवरण मनोरंजन करता है क्योंकि वह चित्ताकर्षक है। अब मैं कुछ उन मनोरंजक बातों के विवरणों को चुनूंगा, जिनका निरीक्षण उसने बल्ख और पीकिंग के बीच किया।

बदख्शां और उसके मनोरम पहाड़ी प्रदेशों को छोड़ने के बाद यात्री लोगों ने और अधिक ऊंचे पहाड़ों के क्षेत्र में प्रवेश किया। पहले तो रास्ता, वहां की बड़ी और प्रसिद्ध नदी आक्सस के ऊपरी बहाव के साथ-साथ चला । धीरे-धीरे चढ़ाव ढालू होता गया और एक पखवारा चलने के बाद वे बहुत ही ऊंचे पामीर के पठार पर पहुंच गये जो "संसार में सबसे ऊंची जगह कही जाती है।" उसके ऊपर जमी हुई झील सिरीकोल है जिस पश्चिम दिशा से आक्सस निकलती है। यहीं पर पोलो ने पहाड़ों पर रहने वाली वह जंगली भेड़ देखी जिसके सींग मोड़ पर साढ़े चार फीट लम्बे होते हैं। यह भेड़ अब पोलो के नाम पर ही ओविस पोली के नाम से विख्यात है।

इस पठार की ऊंचाई १५,६०० फीट कही जाती है और इसके समीप की चोटियां १६,००० फीट ऊंची हैं। इसके पार एक पखवारा चलने के बाद मार्को लिखता है कि वे खाना ठीक से नहीं पका सके। लगता था कि आग की कुछ गर्मी ही खत्म हो गयी हो। वह वास्तविक कारण नहीं जानता था—कि ज्यों-ज्यों ऊंचाई बढ़ती जाती है, पानी नीचे तापक्रम पर उबलता है और ज्यादा ऊंचाई पर पहुंचने के बाद, उबलने पर भी चावल या मांस को साधारण रीति के हिसाब से गलाया नहीं जा सकता।

इस आतिथ्यहीन निर्जन प्रदेश को पारकर "सुन्दर उद्यानों और अंगूरों के बगीचों और बहुतायत से कपास के इलाके वाले" ताशकंद में उतरना सुखपूर्ण था। ताशकन्द अन्तिम पश्चिमी प्रान्त सिक्यांग में स्थित था। अब काशगर चीन में सम्मिलित है। यात्री आगे बढ़ रहे थे। यहां वे चपटे मैदान के पास दक्षिण पूर्व को मुड़े और यारकन्द तक उन्होंने डेढ़ सौ मील का फासला पार किया। मार्को लिखता है कि वहां के निवासी घेघा से पीड़ित थे और उसका कारण "पीने के पानी में किसी विकार" की उपस्थिति थी। इस समझदारी की कल्पना को उसके बहुत ही थोड़े समकालीन लोग सोच पाते। हाल ही के यात्रियों की पुस्तकों से जैसा पता चला है कि उस प्रदेश के निवासियों को अभी भी घेघा होता है। वास्तव में संसार का वह भाग पोलो के समय से कम ही बदला है। 'टाइम्स' के सम्वाददाता पीटर फ्लेमिंग ने इला मेलार्ट के साथ १९३५ में पीकिंग से काशगर तक उस मार्ग से यात्रा की थी जिसका अन्तिम भाग वही था जो हमारे लेखक ने पकड़ा था। उनमें से प्रत्येक ने यात्रा पर एक-एक पुस्तक प्रकाशित की और चूंकि वे पोलो से कहीं अधिक जानकारी देते हैं, इसलिए उनकी पुस्तकें उसकी पूरक हैं और पुस्तकों में दिए गए चित्रों के कारण हमें यह समझना आसान हो जाता है, कि उसकी यात्रा कैसी रही होगी। उन्होंने यह फासला छः महीने में पार किया। काशगर से वे दक्खिन को मुड़े और मिटाका दर्रा पार करके काश्मीर में उतरे। चूंकि पोलो लोग भी मिटाका दर्रे के पास से गुजरे थे, इसलिए मार्को ने भी काश्मीर के बारे में कुछ वर्णन दिया है। यह वर्णन इतना सही है कि कुछ लोग सोचते हैं कि सम्भवतः वह वहां की राजधानी श्रीनगर गया होगा और वहां कुछ दिनों रहा होगा। किन्तु पुस्तक में ऐसा कुछ नहीं कहा गया है, इसलिए यह कल्पनामात्र है।

यारकन्द से कारवां का रास्ता नखलिस्तानों से आगे उजाड़ बालू का मैदान है। इधर के मुख्य स्थान खोतान, किरिया, चा-चान और लोप हैं जो लगभग

हजार मील में फैले हुए हैं। इन स्थानों के विषय में पोलो के नोट बहुत संक्षिप्त से हैं वह उनका पुराना इतिहास नहीं जानता। सिल्क मार्ग की दक्षिणी शाखा पर ये स्थान मुख्य पड़ाव के रूप में सदियों से प्रसिद्ध रहे हैं। इस मार्ग से न केवल चीन का रेशम पश्चिम की ओर जाया करता था किन्तु बुद्धधर्म, नेस्टोरियस का ईसाई मत और यूनानी कला का प्रभाव भी इसी मार्ग से पूर्व को पहुंचा। इन स्थानों पर ईसाई और बौद्ध धर्म के मठ थे तथा ये उच्च कोटि की सभ्यता के केन्द्र भी थे। जैसा मैंने पहले कहा है, पोलो को इसका ज्ञान नहीं था। समय बदल गया था, नखलिस्तान अब श्रीसम्पन्न नहीं रह गये थे। इन पर स्टेपी मैदानों के खानाबदोशों ने बार-बार लूट मार की थी। रास्ता बार-बार बन्द होता रहता था और अक्सर सदियों तक बन्द पड़ा रहता। यद्यपि अब वह विजयी मंगोलों, के अधीन फिर खुल गया था, किन्तु पुराने वैभव को फिर से लाने के लिए इसे खुले अधिक दिन नहीं हुए थे। इसके अतिरिक्त वहां के निवासियों का कत्लेआम हो चुका था, वे गुलाम बना डाले गये थे, और उनकी संस्कृति का ऐसा विनाश हो चुका था कि उसकी फिर से स्थापना नहीं हो सकती थी।

खोतान और चा-चान के बीच का प्रदेश अपनी वज्रमणि की खानों के लिए सदा से प्रसिद्ध रहा है। पोलो लोगों ने वज्रमणि के विषय में कभी नहीं सुना था और वे उसे सूर्यकान्तमणि और कैलसिडनाश्म बताते हैं। किन्तु इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने उसी रत्न की चर्चा की है, जिसे चीनी बहुत मूल्यवान् मानते थे। ये रत्न जलमार्ग में पड़े पत्थर की शिलाओं में पाये जाते हैं, उनमें कुछ सफेद कुछ हरे, प्रायः पन्ने की तरह सुन्दर, कुछ पीले, कुछ सिन्दूरी और कुछ घोर काले तक होते हैं।

लगता है, लोप का नखलिस्तान, लोपनोर झील के निकट होगा। उसके परे गोबी रेगिस्तान की एक भुजा थी जो स्टेपी मैदान के उत्तर और पूर्व में फैली थी। यह टुकड़ा पार करने में एक महीना लगना सम्भव था। नखलिस्तानों के बीच यात्रा करते समय रसद और पानी काफी मात्रा में मिलते थे, इनमें निवास करनेवाले लोग नहीं थे, शिकार नहीं था, हरियाली नहीं थी, किन्तु प्रतिदिन के कूच के अन्त में केवल छोटे कुएं मिलते थे।

इस दुर्धर्ष मरुभूमि में जाने से पहले यात्री लोग आराम करने तथा अपने को ताजा करने के लिए और अपने जानवरों को ठीक-ठाक कराने लोप में एक सप्ताह रुका करते थे। रेत को पार करने के विषय में पोलो जो कुछ कहता

है वह अविश्वसनीय लग सकता है किन्तु उस प्रदेश के अन्य लोगों ने भी उसका उल्लेख किया है। वह लिखता है : "इस रेगिस्तान के बारे में एक असाधारण बात कही गयी है कि यदि यात्री लोग रात को चलते रहते हैं और उनमें कोई पीछे रह जाता है, तो जब वह अपने साथियों को पकड़ने की कोशिश करता है तब वह भूत-प्रेतों की बातचीत सुनता है और उन्हें अपने साथी समझ लेता है। कभी-कभी भूत-प्रेत उसे नाम लेकर पुकारते हैं और तब यात्री प्रायः भटक जाता है और अपने गिरोह को कभी नहीं पाता। ऐसे भटके यात्री मार्ग की मुख्य लीक से कुछ दूर अलग घुड़सवारों के दल के लोगों की गुनगुनाहट और पैरों की भी आवाज सुनते हैं, और इसे अपने साथी समझ कर आवाज़ का पीछा करते हैं और सवेरे देखते हैं कि यह सब भ्रम था और वे पूरी तरह भटक गये हैं। दिन के वक्त भी भूत-प्रेतों की बात, और कभी-कभी वाद्यन्त्रों की, विशेषतः, नगाड़े की, और शस्त्रों के टकराने की आवाज़ सुनायी पड़ती है।"

यह विश्वास बहुत पुराना था कि गोबी रेगिस्तान में भूत-प्रेत रहते हैं और वे यात्रियों की नकल उड़ाते हैं। पांचवीं शती का चीनी यात्री फा-ह्यान अपनी पुस्तक **यात्रा** में लिखता है : "गोबी में बहुत से दुष्ट दैत्य रहते हैं। उसमें गर्म हवाएं भी हैं जो सारे सामने पड़ने वालों को मार डालती हैं। कहीं पशु पक्षी नहीं दिखायी पड़ते और जहां तक नजर जा सकती है सारा रास्ता उन आदमियों की विरंजित हड्डियों से आच्छादित है, जिन्होंने उसे पार करने का यत्न किया।" सातवीं शती के अधिक प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन-त्सांग ने भी चमचमाते शस्त्रों से सुसज्जित और झण्डे फहराते सैनिकों को प्रयाण करते; जगह बदलते; अदृश्य होते; और फिर प्रकट होते देखा।

इस भ्रम का स्पष्टीकरण दो तरह से हो सकता है। मरुभूमि की निर्जनता और सूनापन, अपनी दिशा का ज्ञान खो देने की आशंका, मानव अस्थियों का दृश्य, प्यास और थकान—ये सब यात्रियों के मन को कमजोर कर देते थे और ऐसी चीजों को देखने और सुनने की ओर प्रवृत्त कर देते थे जो वहां नहीं होती थीं। इसके अतिरिक्त कुछ दृश्य और आवाजें विचित्र प्रकार की होती थीं। हम जानते हैं कि मरीचिका, केवल जल की ही नहीं किन्तु मनुष्यों का भी आभास देती है। यहां तक कि आधुनिक यात्रिओं ने गीत और नगाड़े की आवाज़ सुनने की बात कही है। लगता है कि यह आवाज़ बालू के हटने से उत्पन्न होती है। हवा जब किसी दिशा में चलती है तो बालू टीलों की सतह पर से तेजी से

सरकती है, जिससे कुछ स्थितियों म नगाड़ा बजने जैसी आवाज होने लगती है। मरुभूमि के कुछ भागों का तो नाम ही "गाने वाले बालू के प्रदेश" रखा गया है।

गोबी मरुभूमि पर तीस दिन चलने के बाद ये यात्री तुन हुआंग पहुंचे। यह वह स्थान है जिसके पास सिल्क मार्ग की उत्तरी शाखा दक्षिण से मिलती है। यह स्थान सहस्त्र बुद्धों की गुफा के कारण प्रसिद्ध है, जो इस स्थान से लगभग आठ मील आगे, स्थित है। मध्य युगों में यह महान बौद्ध केन्द्र था। गुफाओं के अन्दर चीन भर में सब से बड़ी पत्थर की मूर्त्तियां हैं, उनमें से कुछ सौ फीट से भी ऊंची हैं। मार्को पोलो यह नहीं बताता कि वह इन गुफाओं में गया था या नहीं, किन्तु यह जरूर लिखता है कि यहां के निवासी कुछ नेस्टोरियस ईसाइयों के साथ ही बौद्ध थे, और यह स्थान मन्दिरों से भरा था, जिनमें लकड़ी की मूर्त्तियां, पक्की मिट्टी की मूर्त्तियां, पत्थर और कांसे की मूर्त्तियां थीं। बौद्धों में शवदाह की प्रथा के बारे में भी वह लिखता है, और यह वर्णन करता है कि किस भांति मनुष्यों, घोड़ों और ऊंटों की कागज की आकृतियां शव के साथ इस भाव से जलायी जाती थीं कि वे दूसरे लोक में मृत व्यक्ति के काम आयेंगी चीनियों में यह प्रथा बहुत दिनों से चली आती थी और इस प्रकार की उनकी एक और प्रथा भी थी, जिसके अनुसार आदमी और पशुओं की मिट्टी की आकृतियां मृतव्यक्ति के साथ गाड़ दी जाती थीं। हम सबने इस देश में निजी संग्रहों के "तांग" घोड़ों को—जोकि अब बहुत अधिक हैं, देखा। चीन में जब रेलवे बननी आरम्भ हुई तो प्राचीन कब्रिस्तानों से होकर रास्ते खोदे गये और यह आकृतियां मिलीं, तथापि बहुत दिन हुए, लोग उनके बारे में भूल चुके थे।

तुन हुआंग से, चीन को जानेवाला कारवां का मार्ग सु-चाउ, कान-चाउ, जो महान दीवार के छोर पर है और लान-चाउ होकर दक्षिणपूर्व को मुड़ जाता है। यह प्राचीन काल से चीनी नगर थे, क्योंकि वे पीली नदी के बड़े मोड़ पर चीनी भूमि की सीमा पर स्थित थे, लान-चाउ उस नदी पर स्थित था। वहां से यात्रियों ने पुरानी राजधानी चांग-आन, और इस प्रकार होनान होकर पीकिंग का सामान्य मार्ग नहीं पकड़ा किन्तु पीली नदी के किनारे-किनारे स्टेपी मैदान की सीमा पर मोड़ के सिरे होते हुए फिर उत्तर की ओर मुड़े। वहीं कहीं निकट के स्थान में खाकान कुबलाई के भेजे संदेश वाहकों से इनकी भेंट हुई और वे इन्हें खाकान के प्रिय ग्रीष्मनिवास शांग-तू ले गये, जो पीकिंग से लगभग तीन सौ मील उत्तर में और महान दीवार के बाहर स्थित है।

कुबलाई ने दरबार में इनका स्वागत किया। उन्हें वापस अपने देश में देखकर

वह बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने काउ-टाउ रीति से उसका अभिवादन किया इस रीति के अभिवादन में बहुत अधिक झुकना पड़ता है। बाद में इस रीति को योरूपीय, विशेषत: ब्रिटिश लोगों ने अत्यन्त हीन माना, क्योंकि उसमें दोनों घुटनों के बल झुकना ही नहीं पड़ता था, मस्तक से कई बार जमीन भी छूनी पड़ती थी। इस प्रकार जब वे अपना सम्मान प्रकट कर चुके तो कुबलाई ने उन्हें खड़े होने का आदेश दिया और उनसे प्रश्न किये। उनकी यात्रा कैसी रही ? "और उसने उनसे जो कुछ करने को कहा था, क्या उन्होंने वह किया ? उत्तर में उन्होंने पोप की चिट्ठी और अधिकार पत्र और पवित्र समाधि से लाया हुआ तेल आदि पेश किये। यद्यपि वे पादरी को न ला सके थे किन्तु वह बहुत प्रसन्न दीखा। और यह युवक कौन है ?" उसने मुस्कराते हुए पूछा। निकोलो पोलो ने उत्तर दिया,

"राजन्, यह मेरा पुत्र और आपका निष्ठावान् सेवक है।"

"उसका भी स्वागत है।" सम्राट् ने कहा।

इस अनुकम्पाशील स्वागत के बाद उन्हें दरबार के प्रत्येक व्यक्ति से सम्मान मिला।

अध्याय पांच

मंगोल

मैंने बहुत पहले कहा है कि अपनी चीन की यात्रा में मार्को, मंगोल लोगों को एक जाति के रूप में नहीं देख सका होगा, क्योंकि वे स्टेपी-मैदानों पर होकर यात्रा नहीं कर रहा था, जहां ये लोग इर्द-गिर्द घोड़ों और पशुओं को चराते हुए अपने नमदे के तम्बुओं में रहा करते थे। खेतिहर न होने के कारण वे पड़ाव डालकर रहते थे, गांवों में नहीं, क्योंकि उन्हें निरन्तर नयी घास के लिए फिरना पड़ता था। उनका एकमात्र नगर स्टेपी-मैदानों में सैकड़ों मील अन्दर, गोबी से दूर, बहुत अधिक दूर, स्थित कराकोरम था, और वह भी नगर की अपेक्षा शिविर ही अधिक था। इस स्थायी शिविर के प्रशासन का काम बहुत बड़ा था। चवालीस साल की उम्र में सन् १२६० में, जब कुबलाई खाकान हुआ तो उसने कराकोरम छोड़ दिया और पीकिंग में निवास करने लगा। सिर्फ इस तथ्य के कारण कि उसने ऐसा किया, वह सच्चा मंगोल नहीं रह गया था और उसने चीनी सभ्यता ग्रहण कर ली। उसे उन अनेक बर्बर विजेताओं में से मानना चाहिए जिन्होंने चीन पर, या उसके एक भाग पर, शासन किया। ऐसे विजेताओं ने यद्यपि काफी कुछ चीनी रहन-सहन अपनाया पर फिर भी उन्होंने कुछ सीमा तक अपना असली रहन-सहन भी पकड़े रखा। हमने देखा है कि पोलो लोगों ने पीकिंग में नहीं, किन्तु महान दीवार के बाहर, शांग-तू में भी उसे किस तरह से छुट्टी मनाते हुए देखा। असली चीनी सम्राटों के ग्रीष्म महल इतनी दूर उजाड़ में कभी नहीं रहे। किन्तु मंगोल होने के नाते कुबलाई खुली जगहें पसन्द करता था। वह तमाम साल पीकिंग नहीं रह सकता था। इसे शिकार करना और बाज़ पकड़ना बहुत अच्छा लगता था। और इसलिए उसने उत्तरी मैदानों के समीप एक ग्रीष्म निवास बनाया था। लन्दन से जितनी दूर हाईलैंड्स हैं पीकिंग से उतनी ही दूर असली मंगोल प्रदेश के सीमान्त पर शांग-तू था। इससे मार्को पोलो यह देख सका कि मंगोल स्टेपी पर किस प्रकार रहते हैं। वहां बसने वाली सभी जातियों का जीवनक्रम प्रायः एक समान ही था, और चिरकाल से उनमें कोई परिवर्तन नहीं आया था। केवल इतना जरूर था कि पृथ्वी का इतना अधिक भाग जीत कर मंगोल लोग सामान्य खानाबदोशों से कहीं अधिक धनी हो गए थे।

मार्को उन लोगों के अड्डों का विवरण देता है और अब मैं उनका वैसे ही वर्णन

करूंगा, जिस रीति से उसने उनके बारे में बताया है। वह कराकोरम न जा सका होगा, क्योंकि वह उत्तर-पश्चिम की ओर सात सौ मील दूर स्थित था। और वास्तव में वह उसका वर्णन करने का प्रयत्न ही नहीं करता। वह कैसा था इसका कुछ आभास देने को मैं रूब्रुक़िम का उल्लेख करूंगा। रूब्रुक़िम एक ईसाई साधु था जो वहां १२५३ में पोप के धर्मोपदेश पर गया। वह बड़ा विलक्षण व्यक्ति था और उसकी पुस्तक[1] **जर्नी टू द ईस्टर्न पार्ट्स ऑफ दि वर्ल्ड"**, मार्को की पुस्तक से अधिक जोशीली किताब है, यद्यपि विद्वानों के अतिरिक्त और लोगों को उसका कम ही पता है। कराकोरम के विषय में वह लिखता है: "अगर खाकान का अपना महल अलग कर दिया जाय तो वह उतना भी अच्छा नहीं है जितना सेंट डेनिस का बरो, और जहां तक महल की बात है तो सेंट डेनिस का मठ ऐसे दस महलों के बराबर है।" वह आगे बताता है कि वहां केवल दो गलियां थीं, और जो लोग उनमें रहते थे वे मंगोल नहीं थे, बल्कि फ़ारस और चीन के विदेशी व्यापारी थे और विभिन्न राष्ट्रीयता के सरकारी विभागों के अधिकारी सचिव थे। ईसाइयों का एक मामूली गिरजा था और एक मुस्लिम मस्जिद भी थी। नगर की दीवार गारे की थी और उसके चार फाटक थे, जिनमें से प्रत्येक गेट के साथ बाजार शुरू होता था। जब रूब्रुक़िस वहां था तब कुबलाई का भाई मंगू, खाकान था। मंगू वही व्यक्ति था, जिसने हलाकू को बगदाद के विरुद्ध भेजा और अन्तिम खलीफा को उसका सोना ही भोजन रूप में खिलाया यद्यपि वह संसार का सबसे शक्तिशाली बादशाह था, तथापि उसने राजधानी में कोई स्थायी निवास नहीं रखा। तथ्य यह था कि वह शायद ही कभी आवास बनाकर रहता। वर्ष में एक बार वह शराब की दावत करता, जिससे उसके अतिथि धुत हालत में घर ले जाये जाते थे। शेष वर्ष भी वह अपनी घुड़सवार सेना के साथ या जिप्सियों की तरह अपने कारवां में घूमता फिरता था।

जैसा मैंने कहा है कुबलाई ने यह सब बदल दिया। पीकिंग में चीनी शैली का स्थायी महल बना कर उसने पड़ाव से पड़ाव बदलते रहने की प्रथा समाप्त कर दी।

कुबलाई के हटने के समय तक कराकोरम यद्यपि मंगोलों की राजधानी रहा किन्तु वास्तव में वह डिपो, सरकारी खजाना और गोदाम, राजदूतों के मिलने का स्थान और खाकान की मृत्यु के अवसर पर उत्तराधिकारी चुनने के लिए जहां उसका कुटुम्ब जमा होता रहा—उससे अधिक और कुछ न था। मंगोल लोग खुद विस्तृत मैदानों में बाहर रहा करते थे। उनके घर नमदे से ढके जालीदार काम वाले तम्बू

[1]संसार के पूर्वी प्रदेशों की यात्रा।

थे, पोलो उनका भी वर्णन करता है। जब वे नयी चरागाहों को प्रयाण करते तो तम्बुओं को पूरा का पूरा छकड़ों पर लाद लेते थे। ये छकड़े कभी-कभी तो इतने बड़े होते कि इनके पहियों की लीक बीस-बीस फीट चौड़ी होती और उनमें बीस-बीस बैल लगते। उन्हें देखने से ऐसा लगता जैसे खानाबदोशों का पूरा शिविर प्रयाण कर रहा हो। चूंकि ये लोग खेती नहीं करते थे, इसलिए वे उसी दूध और मांस पर निर्वाह करते, जो उन्हें अपने पशुओं से मिलता था। वे घोड़ी का दूध अधिक पसन्द करते थे किन्तु उसे तब तक नहीं पीते थे, जब तक चार दिन तक खमीर उठा कर उसे जोरों से मथ कर कुमिज़ नाम की शराब न बना लिया जाता। इसके विषय में रूब्रुक़िस ने कहा है, "इसे पी लेने से मनुष्य अन्दर से बड़ा आराम अनुभव करता है।" यद्यपि बच्चे इसे पिया करते थे किन्तु यह मदिरा तेज़ हो सकती थी—इतनी तेज़ कि मंगू के अतिथि शराब में धुत होकर घर पहुंचते। मामलूक बीबर्स—जिसकी टेनिस का मैंने जिक्र किया है—कुमिज़ में हुए शराब के दौर में भाग लेने के बाद ही मर गया।

मार्को पोलो आगे कहता है कि सीधे-सादे मंगोलों ने कपड़ों की जीत के बाद ही मिली दौलत का उपयोग किया। अधिक सम्पन्न लोग चाहे पशुपालकों का जीवन व्यतीत करते थे, और हमेशा यात्रा पर रहते, या पड़ाव डाले रहते, पर फिर भी वे "सोने और रेशम की चीज़ें" पहनते थे। बड़े रईसी ढंग से उनके रेशमी कपड़ों का अस्तर बेशकीमती सेबल और एरमीन तथा दोरंगे पोत और लोमड़ी की खाल का होता।" किन्तु वे उन्हें कभी धोते न थे, उनमें एक अन्धविश्वास था कि नदी के पानी में धुलाई करने से उसमें रहने वाले देवता अप्रसन्न हो जायेंगे। जीवन भर वे कभी धुलाई नहीं करते थे, और मध्यकालीन योरूपीय लोग भी उनको बहुत गन्दा समझते थे। मंगोल सिपाही की अतीव पुष्टता के विषय में मार्को बहुत कुछ कहता है। मैंने पहले वर्णन किया है कि उनकी शारीरिक शक्ति ने ही उन्हें संसार का सबसे बड़ा अर्धांश जीतने में सहायता दी, और इसी सम्बन्ध में वह लिखता है, "कि किन्हीं अति आवश्यक स्थितियों में वे लोग दस दिन तक बिना एक बार भी खाना पकाये घुड़सवारी करते रहते थे। अपनी शारीरिक शक्ति बनाए रखने के लिए वे अपने घोड़े की कोई नस खोल कर खून की धार को अपने मुंह में छोड़ देते।" उनके घोड़े बिना दाने के चलते रहते और अपने अगले सुमों से बर्फ के नीचे की घास खोदकर निकाल लेते। पोलो कहता है कि असली मंगोल इस तरह के होते थे। किन्तु जो लोग विजित देशों, फारस और चीन, में चले आये थे, वे जल्दी ही अपने जातीय गुणों को खो बैठे। वे अब नहाते भी थे, सभी तरह के मूल्यवान भोजन करने लगे थे, और कोई इतना ज्यादा व्यायाम भी न करते थे।

अध्याय छः

ग्रीष्म-प्रासाद में

सन् १२७५ में पोलो लोग जब शांग-तू के ग्रीष्म महल पहुंचे, उस समय कुबलाई पन्द्रह वर्ष तक सम्राट रह चुका था और उसकी आयु उनसठ वर्ष की हो गई थी। यद्यपि उसने चीनी सभ्यता अपना ली थी, तथापि उसने अपनी मंगोल जाति की बहुतेरी विशेषताओं को बनाये रखा था, विशेष रूप से जब तक वह दौरे पर बाहर जाता, खेलते हुए और आखेट करते हुए बाह्य जीवन बिताता, जिसे मार्को ने एक योरूपीय, महान यात्री तथा क्रियाशील व्यक्ति के नाते समझा और कहीं अधिक सराहा, जितना कि वह शायद उच्च कोटि की सांस्कृतिक, साहित्यिक, कलात्मक और आनुष्ठानिक शैली को भी न सराह पाता, जो सामान्यतः उन दिनों चीनी दरबार की एक खास विशेपता थी। सही बात तो यह है कि अपनी पुस्तक में वह कला, साहित्य और दर्शन के विषय में बहुत ही कम कहता है। वास्तव में चीनी संस्कृति पर कोई मत स्थिर करने में वह समर्थ नहीं था। उसने चीनियों की प्रशंसा महान हस्तशिल्पियों के रूप में की है। उनकी शानशौक़त और विलासप्रियता ने उसे आश्चर्य-चकित कर दिया था। किन्तु उसका आदर्श पुरुष कुबलाई था और उसकी पुस्तक चीन पर मंगोलों के प्रभुत्व के विषय में है। उनके विषय में योरूप का अनुभव था कि वे हत्यारे और निर्दयी आक्रांता थे। वह उनका वर्णन खिलाड़ियों और जागीरदारों के रूप में करता है। अनेक कारणों में से यह भी एक कारण है कि उसके योरूपीय पाठकों ने उसका विश्वास करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने या उनके पिताओं ने स्टेपी-मैदानों के भयानक घुड़सवारों को देखा था। और इन्हीं घुड़सवारों का, विजय के कारण खुशमिजाज हो जाना—जैसा कि पोलो ने लिखा है—विश्वास करना बड़ा कठिन हो जाता है।

अब हम अपने लेखक के दृष्टिकोण से शांग-तू पर दृष्टिपात करें। किन्तु पहले मैं यह उल्लेख कर दूं कि शांग-तू वैसा ही था जो कॉलरिज की कविता में जनाडू है। इस कविता का आरम्भ है : "इन जनाडू डिड कुबला खां", इस कविता को, उसने मार्को पोलो की पुस्तक पढ़ कर और जो कुछ पढ़ा उसका स्वप्न देख कर लिखा। जैसा हम आगे देखेंगे, शांग-तू में विचित्र-सी घटनाएं होती रहीं। अपने स्वप्न के विषय में लिखते हुए कवि इन्द्रजाल के विषय में सीधे नहीं लिखता, किन्तु वह स्वप्न से

रूपान्तरित होकर कविता के वातावरण में आ जाता है।

शांग-तू में एक भीतरी घेरा था, जिसमें महलों के विभिन्न भवन थे, और एक बाहरी घेरा था। ये सब एक उपवन से घिरे हुए थे। जिसकी परिधि सोलह मील थी। पोलो कहता है कि महल संगमर्मर का था, जो मनुष्यों और पशुओं, वन्य पशुओं और पक्षियों, पेड़ और फलों की, आकृतियों से चित्रित था। ये सब इतने बढ़िया तरीके के बनाये गये थे कि आदमी उन्हें प्रसन्नता और आश्चर्य से देखता रह जाता। अब जहां लम्बी-लम्बी घास-पात बहुतायत से उग आयी है उस स्थान पर १८७२ में खुदाई करने पर इस उल्लेख की पुष्टि हो जाती है, क्योंकि महल के भवनों की नींव में, जिनका अब भी पता लगाया जा सकता है, संगमर्मर के शेर, ड्रैगन तथा अन्य मूर्तियों के टुकड़े मिले हैं। हम यह मान लें कि कुबलाई के लिए महल चीनी वास्तुकारों ने बनाया था और उसकी शैली पूर्णतया चीनी थी क्योंकि मंगोलों की अपनी कोई वास्तु-विद्या तो थी नहीं। इस प्रकार हम आसानी से, मंडपों के समूहों, चबूतरों, दालानों, विचित्र जानवरों की आकृतियों, नक्काशीदार खंभों, छतों, जिनके किनारे के खपरैल पर दैत्यों की प्रतिकृतियां हों और भीतर पर्दे और लटकते हुए स्क्रोल जिन पर फूल और पक्षी अंकित हों, की कल्पना कर सकते हैं।

उपवन का एक भाग अलंकृत उद्यान था, जिसमें फव्वारें, जलधाराएं और घास के मैदान धरती के ऊंचे-नीचे स्तर के हिसाब से बने थे। और एक भाग मृगदाव था। बाज और शिकरे के शिकार के शौक के कारण कुबलाई ऐसी-ऐसी चिड़ियां पाले रहता जो छोटे हिरन तक को गिरा दें। बड़े हिरनों के लिए वह चीते रखता था, और पोलो कहता है कि उसने एक बार उसे, चीते को अपने पीछे जीन पर बिठाये, घोड़े पर जाते देखा था। उद्यान के बीच में एक बांस का महल था, मनोरम मण्डप, बाहर से तमाम मुलम्मा किया हुआ और भीतर से बड़े परिश्रम से सजाया हुआ। उसकी छत खंभों पर टिकी थी, जिनके शीर्ष पर ड्रैगन बने थे। छत खपरों की न थी, किन्तु लाख का काम किए हुए बांसों की थी। वह इतना हल्का और हवादार था कि उसे असली रेशम के बने रस्सों से बांधकर सहारों पर रखा जाता था। उद्यान में लम्बे चौड़े अस्तबल भी थे, क्योंकि कुबलाई अपने लिए खास नस्ल के दस हजार सफ़ेद घोड़ों की घुड़साल रखता था। घोड़ियों का दूध वह कुमिज़ के रूप में पीता था।

मंगोल लोग सर्वोच्च ईश्वर में और उसके अधीनस्थ दूतों में विश्वास करते थे। ऐसा ही ईसाई और बौद्ध दोनों का विश्वास था, किन्तु उनकी धार्मिक रीतियां उन प्रतिष्ठित गिरजा घरों से अधिक सरल और संक्षिप्त होती थीं। कुबलाई ने सोचा

कि मंगोल धार्मिक विश्वासों का भी, या तो ईसाई धर्म या बौद्ध धर्म या दोनों में ही समावेश किया जा सकता है। जब उसने ज्येष्ठ पोलो लोगों से पादरी लाने को कहा, तो यह विचार तब भी उसके दिमाग में था। उसने एक तरह का बौद्धधर्म तो पहले ही प्रचलित कर दिया था, मार्को भी बौद्ध साधुओं की कुछ विचित्र कहानियां कहता है।

जिन बौद्ध साधुओं को कुबलाई लाया था वे तिब्बती और कश्मीर के थे। उन देशों में बौद्ध धर्म (उस समय काश्मीर में बहुत से बौद्ध थे) में बहुत कुछ जंत्र-तंत्र का भी समावेश था। और बौद्ध साधु, जिन्हें मार्को ने शांग-तू में और बाद में पीकिंग में देखा था, इस कला में निपुण थे। वह एक दृश्य का वर्णन करता है, जिसे उसने वहां देखा।

वहां की सामान्य प्रथा के अनुसार, कुबलाई एक दावत में मंच पर अपनी मेज पर बैठा था। हाल के बीच में, करीब दस गज दूर बर्तन आदि रखने की एक अलमारी थी जिस पर उसके पीने के प्याले, कुमिज़ से भरे तैयार रखे रहते, और जब उसने प्याला मांगा तो नौकर ले आया। कुछ तिब्बती या कश्मीरी बौद्ध साधु भी मौजूद थे। उन्होंने दावा किया कि बर्तन रखने की अलमारी से खाकान की मेज़ तक बिना छुए या शराब छलकाए वे प्यालों को हवा में चला सकते हैं। इसके बाद कुछ मंत्र पढ़े गये। पोलो इसे जादू कहता है, पर यह नहीं बताता कि इसका स्वरूप क्या था। ऐसे अनुष्ठानों के साथ सामान्यतः गीत और नगाड़ा बजता रहता, जिसके बीच जादू करने वाले तन्मय हो जाते थे। और किसी एक क्षण में वह चमत्कार घटित हो जाता। पोलो इस तरह के सारे विवरण छोड़ देता है और कुछ ही आगे सिर्फ यही कहता है कि उसने रहस्यात्मक ढंग से प्यालों को हवा में होकर बर्तन रखने की अलमारी से शाही मेज पर जाते देखा। वह लिखता है, "मैं आपसे झूठ नहीं बोल रहा हूं। जो कुछ वर्णन मैंने किया है, वह बिलकुल सही है।" इसके बाद वह कहता है : "यूरोप में भी कुछ लोग जादू जानते हैं, जो न केवल मेरे कथन की पुष्टि करेंगे, बल्कि बिल्कुल ऐसा कर भी सकते हैं।" स्पष्टीकरण साथ है, मार्को की व्याख्या बड़ी साधारण है कि ऐसे लोग अपनी सहायता के लिए प्रेत भी बुला सकते हैं।

आधुनिक आलोचकों की सामान्यतः यह धारणा है कि मार्को पोलो ने अपनी पुस्तक में वही लिखा है जिसे उसने सच समझा। फिर भी हम यह तो मान ही सकते हैं कि उसने प्यालों को हवा में चलते देखा, अथवा यह विश्वास कर लिया कि वह उन्हें सचमुच हवा में चलते देख रहा था। जैसा कि कुबलाई तथा अन्य कथित उपस्थित

लोगों ने भी देखा। पर वास्तव में क्या हुआ उसका निर्णय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। उस विशेष प्रकार के जादू की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन काल की है। चीनी इतिहासकार पान कू की रचनाओं में मुझे ऐसे ही तरह के जादू का उल्लेख मिला है। दूसरी शती ई० पू० कालीन सम्राट् वू के विषय में पहली शती ई० पू० में लिखते हुए वह वर्णन करता है कि शान्तुंग के एक जादूगर ने सम्राट को यह विश्वास दिलाने के लिए कि उसके वश में जादू है, शतरंज के मोहरों को बिना छुए ही चला दिया था, फ़ायर ओडोरिक ने जो पोलो लोगों के चीन छोड़ने के तुरंत बाद ही वहां गया था, लिखा है कि "बाजीगर बढ़िया शराब से भरे सोने के प्यालों को हवा में उड़ा देते हैं और जो लोग उन्हें पीना चाहें वे उनके ओठों के सामने पहुंच जाते हैं।" यह उल्लिखित है कि एक योरूपीय जादूगर सिज़ारे माल्तेसियो ने फ्रांस के नवें चार्ल्स की उपस्थिति में "बिना चुम्बक या किसी अन्य सम्बद्ध वस्तु के चांदी के प्यालों को मेज़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक की सीमा में चला दिया। जैसूइट देलारियो भी, जो इसका उल्लेख करता है, पोलो की ही भांति इसे प्रेत से सम्बद्ध बताता है। यहां तक कि १८७५ के समय में यात्री आर० वी० शा० ने लांचाओ के एक बौद्ध श्रमण के विषय में लिखा कि उसके बारे में तो यहां तक कहा जाता था कि उसमें, दूरी से प्याले और तश्तरियां खींचने की शक्ति थी, जिससे कि चीजें हवा में उड़ कर उसके हाथों में आ जातीं।"

अब कुछ लोग शायद यह समझें कि यह हाथ की सफाई होगी, निस्संदेह बड़े निपुण हाथों की सफाई तो है ही और इतनी कुशल सफाई कि कोई भांप न सका कि यह कैसे हुआ। किन्तु इससे बड़ी कठिनाइयां उठ खड़ी होती हैं। उन दिनों हाथ की सफाई का बोलबाला था, पर इस क्रिया को कभी हाथ की सफाई नहीं माना गया, न यह क्रिया हाथ की सफाई के ढंग पर ही की जाती थी। मेरा अपना विचार है कि यह किसी आध्यात्मिक माध्यम द्वारा होने वाला चमत्कारिक व्यापार होगा। आधुनिक काल के महान आध्यात्मिक माध्यमों के उल्लेखों में हवा में उड़ने वाली ठोस चीजों के विषय में निरन्तर सन्दर्भ रहता है। पोलो जिस अचंभे का वर्णन करता है, वह भी हवा में उड़ने की ही बात है, जिसके बहुतेरे वर्णन पूर्वी देशों से मिलते रहे हैं। एक तरह के हवा में उड़ने की रस्सी के एक प्रकार के खेल के विषय में भी यही कहा जाता है। यह याद रखना दिलचस्प होगा कि महान अरबी यात्री इब्नबतूता जो पोलो लोगों के, करीब साठ वर्ष बाद चीन गया था, अपने भ्रमण के वर्णन में कहता है कि उसने किस प्रकार हांग-चाउ के वाइसराय के दरबार में रस्सी का खेल देखा। (इस महान नगर का वर्णन बाद में आयेगा) यह खेल दिल को

दहलाने वाला था, क्योंकि एक लड़का बिलकुल नज़र से न सिर्फ ग्रोझल होकर रस्सी पर चढ़ गया, बल्कि उसके पीछे छुरी लिए एक ग्रादमी चढ़ा ग्रौर तुरन्त लड़के के खून टपकाते हाथ, पैर ग्रौर ग्रन्त में सिर ग्रासमान से गिरे। इब्नबतूता लिखता है : "इस सबसे मुझे हद से ज्यादा ग्रचंभा हुग्रा ग्रौर मुझे दिल की धड़कन का दौरा हो गया। वैसे ही जैसे एक बार पहले हिन्दुस्तान के सुल्तान की उपस्थिति में, जब वहां भी कुछ इसी तरह का खेल दिखाया गया था, तो मुझे दिल का दौरा पड़ गया था। लेकिन सुल्तान ने वहां मुझे दिल की एक दवा दी जिससे दौरा ठीक हो गया।" बतूता के ग्ररबी साथी ने समझा कि यह सब भ्रम था। उसने कहा, "मैं विश्वास नहीं करता कि हम लोगों ने जो चीज़ें देखीं वह वास्तव में ही देखी हैं।"

कुबलाई यह नहीं समझता था कि उड़ने वाले प्याले भ्रम थे। निकालो ग्रौर मैफियो पोलो जब ग्रपनी प्रथम यात्रा के बाद योरुप लौटने वाले थे तो उस समय कुबलाई के साथ हुए एक वार्तालाप से यह बात स्पष्ट हो जाती है। यह लगता है कि ईस्टर के ग्रवसर पर वह उन नेस्टर मतावलम्बी ईसाइयों को बुलवा लेता था जो राजधानी में रहते थे ग्रौर उनको ग्रपने साथ बाइबिल लाने को कह देता। उसकी ग्रादत तब बाइबिल को चूमने की थी जब कि उन ईसाइयों के ग्रधीनस्थ लोग उस पर सुगंध लगाते थे। वह यहूदी, मुसलमानों ग्रौर बौद्धों के प्रमुख पर्वों पर भी इसी तरह करता। वह कहा करता, "संसार भर में चार महापुरुषों की पूजा होती है—ईसा, मोहम्मद, मूसा ग्रौर बुद्ध। मैं चारों को नमस्कार करता हूं, जिससे चारों में से जो भी स्वर्ग का ग्रध्यक्ष हो, वह मुझे ग्रपनी सहायता दे।" किन्तु कहा जाता है कि उसका झुकाव ईसाई धर्म की ग्रोर ग्रधिक था, क्योंकि उसका विचार था कि जो ग्राचरण यह धर्म सिखाता है वही श्रेष्ठ है, राजनीति के लिए उत्तम है, क्योंकि लोग जितने ग्रधिक चरित्रवान् होंगे, राज्य उतना ही ग्रधिक टिकाऊ होगा।

ज्येष्ठ पोलो लोगों को, पादरी लाने के लिए यूरोप भेजने से पहले जब उसने दरबार में बुलाया तो उन्होंने उससे यह पूछने का साहस कर ही लिया कि जब उसका झुकाव ईसाई धर्म की ग्रोर है, तो वह ईसाई क्यों नहीं हो जाता। उसने जो उत्तर दिया उससे पता चलता है कि वह बौद्ध साधुग्रों के करतबों से बहुत ग्रधिक प्रभावित था। ये ऐसे करतब थे जिन्हें वह न तो बाजीगर के खेल समझता था, ग्रौर न भ्रम ही, किन्तु उन्हें बुद्ध से प्राप्त ग्राध्यात्मिक दैवी शक्ति द्वारा की गयी सच्ची घटनाएं मानता था। वह कहता था "यहां जो ईसाई हैं वे, वह नहीं कर सकते जो बौद्ध साधु करते हैं। जब मैं मेज़ पर बैठता हूं, तो शराब या दूसरे तरल पदार्थों से भरे

प्याले किसी के बिना छुए ही हाल के बीच से मेरे पास चले आते हैं, और मैं उनसे शराब पीता हूं। ईसाई लोग यह करने में या दूसरे ऐसे चमत्कार करने में असमर्थ हैं, जैसे मौसम पर नियंत्रण रखना या भविष्य बता देना। ऐसी हालत में मेरे देवता ईसाई हो जाने पर मुझे मूर्ख समझेंगे।" और उसने एक विशेष बात और जोड़ दी, जिसने उसका यह विश्वास और अधिक प्रकट किया कि बौद्ध साधुओं में दैवी शक्ति थी। वह कहता है : "अगर मैं ईसाई हो जाऊं, तो साधु क्रुद्ध हो जायेंगे और अपने आध्यात्मिक करतब से मुझे मार भी सकते हैं।"

वह पोलो लोगों से ईसाई साधु क्यों मंगाना चाहता था, यह अब स्पष्ट है। उसने सोचा, संभवतः पवित्र पोप के भेजे हुए साधुओं में दैवी शक्ति हो। यदि ऐसा हुआ, और वे अपनी शक्ति से यदि बौद्ध साधुओं के प्यालों के करतब को रोक सकेंगे, तो उसे निश्चय हो जायेगा कि ईसामसीह स्वर्ग के चारों पैगम्बरों में से श्रेष्ठ हैं। इससे वह भी अपने ईसाई बन जाने का औचित्य सिद्ध कर सकेगा, और उसके देवता इस प्रक्रिया से विश्वास प्राप्त कर यह मान लेंगे कि उसने ठीक किया है। यहां एक सुझाव है कि वह बौद्ध लोगों के जादू के करतबों से डर गया था और ईसाइयों को अपने बचाव के लिए चाहता था। इसके अतिरिक्त, मंगोल होने के नाते वह यूरोप के पादरियों और तिब्बत के साधुओं के बीच दैवी करतबों का मुकाबला भी देखना चाहता होगा। इतना अधिक समय बीत चुका है कि हम अब यह पूरी तरह से नहीं जान सकते कि उसके मन में क्या था, और न यह ठीक-जान सकते हैं कि कौन से राजनीतिक अथवा प्रशासकीय कारणों ने उसे इधर प्रवृत्त किया होगा। किन्तु इससे कम-से-कम हमें एक व्यावहारिक मनुष्य की झलक जरूर मिल जाती है जो दैवी कौशल में विश्वस्त होकर उन लोगों का पक्ष लेना चाहता था जो उस विद्या के विशेष जानकार थे। पोलो लोगों के और उसके अपने दृष्टिकोण में अन्तर यह था कि वह विश्वास करता था कि यह करतब चारों पैगम्बरों द्वारा प्रेरित है और इटेलियन समझता था वह शैतान की प्रेरणा से किए गए हैं।

अध्याय सात

पीकिंग का प्रासाद

मैंने पाठक को सचेत कर दिया है कि वह मार्को से उसके अनुभवों और साहसिक यात्राओं के विस्तृत विवरण की अपेक्षा न करे। संभवतः यह जानना आपको दिलचस्प लगे कि किस प्रकार कुबलाई ने ज्येष्ठ पोलो लोगों को चीन और वेनिस के बीच के अनन्त मरुस्थलों को पार कर लौट आने की वफादारी के लिए पुरस्कृत किया। उन्हें क्या काम दिया गया अथवा किस बात के उन्हें वचन दिये गये? उन्हें रहने को कैसा स्थान मिला? किन्तु मूल पाठ में इस प्रकार के व्यक्तिगत प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है, और लेखक जो कुछ विचित्र वर्णन कृपापूर्वक देता है, उनको ही मनोयोग से पढ़कर, जैसा कुछ है उसमें सन्तोष कर लेना चाहिए।

सबसे पहले हम इसे लें कि मार्को पोलो ने प्रसिद्ध कुबलाई के व्यक्तित्व के बारे में क्या कहा है। वह लिखता है कि उसका रंग ललछौंहा सफ़ेद था, कपोल की हड्डियां गुलाबी आभा लिये हाथी दांत की सी पीली थीं। यह स्टेपी के मंगोलों की विशेषता है। उसकी आंखें बहुत सुन्दर और काले रंग की थीं और चेहरे पर तीखा नाक बड़ा फबता था। उसका कद मझोला था और हाथ पांव गोल सुडौल थे। इस पुस्तक में दिए हुए चित्र से तुलना कर यह वर्णन बढ़ाया जा सकता है। यह कल्पना की जाती है कि यह चित्र सामने बैठ कर बनाया गया होगा। इस चित्र में आंखें छोटी चौकन्नी और वेधक हैं। ऐसा लगता है मानो वह किसी प्रत्यक्ष बात को, बड़े ध्यान से देख रहा हो। तस्वीर में कान इतना बड़ा दिखाया गया है कि मानो इंगित कर रहा हो कि वह सुन रहा है। यह ऐसी हल्की-सी अभिव्यक्ति दी गयी है कि जिससे उसकी दृष्टि की एकाग्रता में वृद्धि हो जाती है। दृष्टि में वेधकता के सिवा एक चमक भी है और ऐसे लगता है कि वह अभी मुस्करा देगा या मजाक कर बैठेगा। उसके चेहरे का निचला भाग उग्र है। उसका जबड़ा बड़ा भारी है और घनी काली मूछों के नीचे मुंह ऐसा लगता है जैसे वह आदेश देने का यंत्र हो।

मार्को में इस व्यक्ति के लिए असीम अनुराग था। वह लिखता है कि "वह दुनिया में इस समय का अथवा किसी भी समय का सबसे बड़ा शासक है।" जहां तक सेना, भूमि या खज़ाने का सवाल है इसका प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि उसके अधीन ऐसी सेनाएं थीं जिन्होंने संसार के पहले जीते जा चुके भाग से कहीं अधिक

बड़े भाग को जीता था। कुबलाई बड़ा शाह खर्च था। किन्तु संभवतः वह चीन के भूतपूर्व सम्राटों अथवा उसके बाद आने वाले उन लोगों से अधिक नहीं था जो उस उज्ज्वल सिंहासन पर बैठ चुके थे। लेकिन वह शाहखर्ची योरुप के सम्राटों से कहीं अधिक थी। मार्को उसे एक व्यक्ति के नाते भी किसी शासक से बड़ा मानता था, यद्यपि उसके वीर, न्यायी और उदार होने के अतिरिक्त उसकी मानसिक और नैतिक विशिष्टताएं क्या थीं यह वह नहीं बताता। कुबलाई के विषय में उसके अन्य समकालीन लोगों ने भी कुछ कम उत्साह से नहीं लिखा है। फारसी का इतिहासकार वसिफ़ लिखता है : "उसके शानदार कारनामे; उसके विधि नियम; उसके निर्णय; उसका न्याय; उसके दिमाग की बारीकी और विशालता; उसके निर्णय की शुद्धता; शासक रूप में उसकी महान् शक्ति इतिहास में वर्णित रोम के सीज़रों से भी अधिक बढ़ी चढ़ी है।" उसके वंश के पतन के बाद सरकारी चीनी इतिहासकारों ने उसका इतिहास संकलित किया है। यद्यपि चीनी इतिहास-कारों ने स्वयं चीनी होने के नाते, कुबलाई को जिसने उन्हें परास्त कर अपने अधीन कर लिया था, बर्बर माना है, तथापि उन्होंने यह भी कहा है कि "कुबलाई को निश्चय ही संसार के सबसे बड़े शासकों में माना जायेगा। बड़ी सूझ-बूझ से अपने अफसरों का चुनाव करना तथा उनको सही आदेश देना ये उसकी सफलता के मुख्य कारण थे। उसने साहित्य का संवर्धन किया और उसके आचार्यों की रक्षा की। वह अपनी प्रजा को वास्तव में प्यार करता था।" मार्को पोलो ने कुबलाई की संस्कृति के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया। इस तथ्य को इस बात से समझा जा सकता है—जैसा कि मैंने पहले कहा—कि चूंकि मार्को में ही संस्कृति की कमी थी। इसलिए वह उसे समझ न सका था।

कुबलाई का नियम था कि वह अपना शांग-तू का ग्रीष्म प्रासाद २८ अगस्त को छोड़ कर पीकिंग चला जाता था। हम बड़े आराम से मान सकते हैं कि पोलो लोग उसके साथ जाते थे। मार्को लिखता है कि चलने के दिन खाक़ान के विशाल अश्व-दल में से सफेद घोड़ियों का दूध तमाम धरती पर ऐसे छिड़का रहता था, मानो वह धरती की देवियों को श्रद्धांजलि अर्पित की गई हो। ये घोड़ियां हजारों की तादाद में थीं, चूंकि उनका दूध केवल कुबलाई की मेज़ के लिए सुरक्षित रहता था, इसलिए उन्हें पीकिंग साथ ही ले जाया जाता था, और वे भी देशान्तर जाने वाले राजा के अनुचर वर्ग के आदमियों और जानवरों के उस बड़े भारी समूह का एक भाग बनी रहती थीं। ऐसा लगता है शायद कुबलाई लकड़ी के बड़े भारी एक कमरे में यात्रा करता था जो चार हाथियों की पीठों पर अटका रहता था। ऐसा ही वह युद्धक्षेत्र में और

बहुधा शिकार करते हुए भी किया करता था, क्योंकि उसकी आयु लगभग साठ वर्ष की हो गई थी और वह पुराने गठिया का रोगी था। पोलो उसके साथ रहने वाले मंगोल अफसरों की एक झलक देता है, और कहता है कि हर एक के ऊपर छत्र लगा रहता था। यह विशिष्टता का बहुत प्राचीन लक्षण था जो भारतीय इतिहास के आरम्भ से चला आता है।

अपने बाद के अन्य साथियों की भांति पीकिंग को देखकर पोलो अचम्भे में पड़ गया। कुबलाई के समय का पीकिंग उसी जगह पर है जहां आजकल का नगर है, और वह उसी आकार का है, यद्यपि उत्तर की ओर वह थोड़ा आगे बढ़ा हुआ था और दक्षिण की ओर इतना नहीं था। पोलो, नगर निर्माण-व्यवस्था की खास-खास बातों का वर्णन करता है। केन्द्र—अन्तर्महा या बैंजनी निषिद्ध नगर जैसा कि चीनी उसे कहा करते थे—वह स्थान था जहां शाही महल, हाल, मंडप, पुस्तकालय, कार्यालय, खजाने और उद्यान स्थित थे। यह भीतरी नगर एक दीवार से घिरा हुआ था और उसके चारों ओर राजधानी का वह भाग था जो राजसी ठाठ से अलग था। दोनों की निर्माण व्यवस्था योरूपीय नगरों से बिलकुल भिन्न थी। क्योंकि जैसे पोलो बताता है, कि दर्शकों को उलझन में डाल देने वाली भूलभुलैयां की सी घुमावदार तंग सड़कों के स्थान पर पीकिंग की सड़कें चौड़ी और सीधी थीं और वे शतरंज की तरह एक दूसरे के या तो समानान्तर थीं या समकोण पर थीं। वह बड़े-बड़े घरों के प्रशस्त आंगन और उनसे लगे प्रशस्त बागों का उल्लेख करता है। यह सब चौबीस मील के घेरे में था। नगर के भीतरी और बाहरी दोनों भागों की दीवारें तीस फीट ऊंची थीं और नींव तीस फीट मोटी थीं। विशाल फाटकों और उनमें से हरेक के ऊपर बने स्तम्भों, लम्बे चौड़े सिंहासन कक्ष और आसपास की भूमि से कुछ फीट ऊंची उनकी पहली मंजिल, राजमहल की छत की सोने जैसी चटक वाली पीली टाइलें, और उनके भीतरी भाग को अलंकृत करने वाली नक्काशी और चित्रों का पोलो वर्णन करता है। वह भीतरी महल के उत्तरी फाटक के बाहर की पहाड़ी की भी चर्चा करता है, जो बाद में कोयले की पहाड़ी के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह एक बनावटी टीला है जिस पर अनुवर्ती राजवंश के अन्तिम सम्राट मिंग ने उस समय फांसी लगा ली थी और जब स्टेपी मैदानों के बर्बरों के दूसरे दल ने पीकिंग पर अधिकार कर लिया था।

महल के भीतरी जीवन के बारे में भी कुछ मनोरंजक तथ्य दिये गये हैं। खाक़ान के चार बीवियां थीं। हरेक का अपना नाम और अपनी अलग उपाधि थी और अपना एक अच्छा खासा शानदार दरबार भी होता था। जिसमें तीन सौ बांदियां

रहती थीं । तमाम अनुचरों, रसोइयों, सन्देशवाहकों बालभृत्यों, खोजों और दासियों को मिलाकर इन चारों सम्राज्ञियों के दराबारों में चालीस हजार व्यक्ति थे । साम्राज्ञियों के अतिरिक्त खाक़ान के असंख्य रखेलियां थीं । इन स्त्रियों का वेतन और पद नियमों द्वारा व्यवस्थित था और यह चारों मुख्य पत्नियों से नीच रहती थीं ।

शाही संरक्षकों की सेना चार सेनाध्यक्षों के अधीन दस हजार घुड़सवारों की थी । जिसमें से एक चौथाई, तीन दिन काम पर जाती थीं । पोलो यह बताने पर खास जोर देता है कि खाकान इस सेना को राज्य के कारण रखता था, न कि अपने घरबार की रक्षा के लिए, क्योंकि वह किसी से भी डरता नहीं था ।

इसके बाद महल में एक दावत का जिक्र है । ऐसे अवसरों पर खाक़ान की मेज एक बड़े हाल के उत्तरी सिरे पर रहती थी । इस हाल में छः हजार अभ्यागत बैठ सकते थे । वह ऊंचे आसन पर लगी मेज पर बैठता और सौभाग्य की दिशा दक्षिण की ओर मुंह किये रहता था । चारों साम्राज्ञियों में से बड़ी उसके पार्श्व में बैठती और दाहिनी ओर सारा शाही क़बीला, उसके बेटे, भतीजे, भाई और चचा रहा करते थे । उनकी सारी मेजें थोड़ी नीची होतीं । उसके सामने और भी नीची सतह पर अमीर उमरा रहते । उसके बाद फ़ौजी अफ़सर और सिपाही मेजों के बजाय क़ालीनों पर रहते । हाल के बाहर भीड़ को खड़ी रह कर झांकने दिया जाता ।

ऐसी दावत केवल पुरुषों की ही नहीं होती थी, जैसा कि भारत में या असली चीनी दरबार में होता था, कि उच्चपदस्थों की स्त्रियां इनमें नहीं आतीं थीं और स्त्रियों के नाम पर केवल नाचने और गाने वाली स्त्रियां ही रहतीं—कुबलाई की दावत में साम्राज्ञी के अतिरिक्त प्रत्येक अमीर उमरा की पत्नी भी मौजूद रहती, यद्यपि वे उसी मेज पर नहीं बैठतीं थीं, जिस पर आदमी बैठा करते थे ।

खाक़ान की मेज के पास, आकृतियां खुदी हुई एक आलमारी रखी रहती, जिस पर स्वर्ण पात्रों में काफी मात्रा में शराब रखी रहती थी । प्रत्येक दो मेहमानों के मध्य में शराब की एक बड़ी सुराही रहती जिससे वे अपने सोने के प्याले भरते रहते । मद्य के अतिरिक्त उफना हुआ घोड़ी का दूध भी रखा जाता था और खानसामे यह देखने को टहलते रहते कि जिसको जो जरूरत थी, वह उसे मिल गया है या नहीं ।

खाक़ान के पास जो सेवक खड़े रहते, उनकी नाक और उनके मुंह, रेशमी रूमाल से ढके रहते, ताकि उनकी सांसें शाही खाने या शराब को गन्दा न कर दें । जब कभी वह पीने के लिए शराब का प्याला उठाता तो विभिन्न वाद्य यंत्र एक खास

धुन बजाते। यह अमीर उमरा को सम्मान में झुकने के लिए संकेत होता और वह उस वक्त तक इसी हालत में रहते जब तक उसका पीना समाप्त न हो जाता।

पोलो लिखता है : "मैं उसके विशिष्ट भोजन के विषय में कुछ न कहूंगा क्योंकि आप आसानी से सोच सकते हैं कि वहां हर तरह की तमाम चीजों की बहुतायत थी।" वहां जो मनोरंजन सामान्य थे, यथा अभिनेता, बाजीगर, नट और गायक, इनमें से कुछ के करतब खूब खुलकर हंसाने वाले होते थे। कुछ ऐसे भी प्रभावोत्पादक अवसर हुआ करते जब जंजीर में बंधा हुआ पालतू शेर हाल में लाया जाता, और इस बात के लिए वह प्रशिक्षित होता था कि वह खाक़ान को नमस्कार करे और उसके पैरों पर लोटे। उस समय उसकी जंजीर खोल दी जाती थी और वह अपने मालिक की कुर्सी की बग़ल में कुत्ते की तरह चुपचाप बैठा रहता।

वर्ष में दो प्रमुख भोज खाक़ान के जन्मदिवस २८ सितम्बर, और नव वर्ष के दिन हुआ करते थे। नव वर्ष का दिन फरवरी के पहले सप्ताह में पड़ता था। इन दोनों भोजों से पहले दरबार हुआ करता था, जिस समय सभी अधीन राजा खाक़ान को भेंट दिया करते थे। अमीर उमरा बड़े चटकीले कपड़े पहनते। जरदोजी का एक जोड़ा, जिसमें जवाहरात टंके रहते थे दस हजार पौंड की कीमत तक का होगा। दरबार के अवसर पर खाक़ान अपने पांच हजार हाथियों की नुमायश करता। प्रत्येक हाथी पर कारचोबी की झूल रहती और वह भोज में उपयोग की जाने वाली तश्तरी का एक सन्दूक लादे रहता। बहुत बड़ी तादाद में भोजन और पेय से लदे ऊंट निकाले जाते। इन पर भी कीमती झूलें पड़ी रहती थीं।

यद्यपि नव वर्ष के भोज में सफेद पोशाक पहनने का नियम था। किन्तु शेष तेरह भोजों में से प्रत्येक भोज के अवसर पर विभिन्न रंग का उपयोग होता था। बहुत दिनों तक पूर्व में यह प्रथा थी कि राजा सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप राजसी पोशाक दिया करता था। खाक़ान ने बारह हजार या उसके तेरह गुनी राजसी पोशाकें बख्शी होंगी, क्योंकि इस प्रकार से पुरस्कृत होने वाला प्रत्येक व्यक्ति तेरह पोशाकें पाता। प्रत्येक पोशाक का रंग भिन्न होता था। इसके अतिरिक्त मुलायम चमड़े के सवारी के जूते और सुनहरी पेटी भी पुरस्कार में दी जाती थी। पोलो कहता है कि इसमें जबर्दस्त खर्च होता था, किन्तु सारे विशाल समूह का एक रंग के कपड़ों में होने का आश्चर्यजनक प्रभाव इस व्यय के अनुरूप था। मेहमानों को भी सर्वोत्कृष्ट आचरण करना पड़ता। फर्श गन्दा करना मना था और प्रत्येक व्यक्ति अपना छोटा सा उगालदान साथ लेकर चलता। कीचड़ में सने जूते को दरवाजे के बाहर उतार कर सफेद चमड़े का साफ जूता पहनने की आज्ञा थी।

हमारे लेखक द्वारा खाक़ान के महत्व का यह वर्णन उन अवसरों का है जब जनता वहां भोजन करने को निमंत्रित की जाती थी ।

उस समय के किसी भी शाही दरबार में राजा और रानी ऊंचे आसन पर और अमीर उमरा उनसे नीचे भोजन करते थे, उनसे नीचे शेष जनता उन्हें केवल देखती रहती । परन्तु पीकिंग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी इतने बड़े पैमाने पर मनोरंजन न होता होगा ।

मार्को पोलो के कार्यशील जीवन का प्रारम्भ

अपनी पुस्तक के १५वें अध्याय में मार्को संक्षेप में लिखता है, कि दोनों ज्येष्ठ पोलो द्वारा शुरू किए गए किसी व्यावसायिक उद्योग में पिता का सहकारी बनने के स्थान पर उसने कैसे खाक़ान की नौकरी शुरू की। इन तमाम शताब्दियों में जो यूरोपीय यात्री एशिया में यात्रा करने आते थे, उन्हें पूर्वीय राजा अपने अधीन नौकरी करने का सुझाव देते, किन्तु सामान्यतः यह नौकरियां डाक्टर या सैनिक की ही होतीं। निस्संदेह चीन अपवाद था। चीनी सम्राट् यरोप निवासियों को रखने में चौकन्ने रहते थे। यद्यपि कभी-कभी उन्होंने ऐसा किया भी। किन्तु खाक़ान चीनी सम्राट् न होकर चीन का सम्राट था, और चीन उसके राज्य का एक छोटा-सा भाग था। डैन्यूब तक फैले हुए राज्य का सम्राट् होने के नाते वह सब राष्ट्रों के लोगों को अपनी सेवा में रखता था। उच्च शासकीय अथवा सचिवोपयुक्त कार्यभार संभालने योग्य कुछ ही मंगोल उच्च शिक्षित थे, और चीनी अधिकारियों को रखने में कुबलाई डरता था। अतः चीनी इतिहास में यह संयोग था कि उपयुक्त योग्यताएं होने पर विदेशियों के लिए वहां अच्छी सरकारी नौकरी पाना आसान था।

दरबार में आ जाने पर मार्को, मंगोल भाषा के अभ्यास में लग गया। वह जब उसमें कुशल हो गया तो उसने दूसरी भाषाएं भी सीखीं। वह बताता है कि उसने कई भाषाएं बोलनी सीखीं और वह चार लिखित लिपियां पढ़ सकता था। वे कौन कौन-सी थीं यह उसने नहीं बताया, किन्तु उनमें अरबी या फारसी, उइगर और तिब्बती हो सकती हैं। वह शायद थोड़ी-सी चीनी बोल सकता था। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने उसकी स्वरूप लिपि में भी कुशलता प्राप्त कर ली थी। यह कहा गया है कि पोलो चूंकि अमीर उमरा के बीच दरबार में रहते थे इसलिए कुबलाई की नज़र में वे हरदम रहते। इसी कारण मार्को के अध्ययन की ओर खाक़ान का ध्यान आकर्षित हुआ। भाषाविद् होने की प्रतिभा से सम्पन्न होने के अतिरिक्त मार्को स्वभाव से ही विवेकशील और निरीक्षक था और ये दोनों योग्यताएं ही राजनीतिक नौकरी के लिए अच्छी थीं। कुबलाई योग्य विदेशियों की खोज में था। उसने १२७७ में उसे "प्रिवी काउन्सिल" से सम्बद्ध दूसरे दर्जे का कमिश्नर

बना कर उसकी योग्यताओं को अपनी मान्यता प्रदान की। यह घटना उसके पीकिंग आने के दो बरस बाद की है। "प्रिवी काउन्सिल" का यह पद उसके व्यापार में लगे रहने में बाधक नहीं था, क्योंकि सभी अधिकारी इस तरह से अतिरिक्त धन उपार्जित करते थे, उल्टे इस पद ने उसे सरकारी अधिकारी बना दिया था, जिसके महत्व के कारण उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गयी थी और धन प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य संभावनाएं भी उसके सामने आईं। वास्तव में अपनी नयी नौकरी के कारण अगर उसे खाक़ान के राज्य की विस्तृत यात्राएं न करनी पड़तीं तो शायद वह एशिया का वर्णन न लिख पाता।

मंगोल विजेताओं के बीच चीन का प्रशासन कैसा था, इसके उदाहरणस्वरूप वह अहमद नाम के एक व्यक्ति के बारे में लिखता है। अहमद खाक़ान का प्रिय मंत्री था, धर्म से मुसलमान और जाति से किसी एक प्रकार का तुर्क था। वह बुखारा प्रदेश का रहने वाला था, जहां ज्येष्ठ पोलो लोग, अपनी पहली विदेश यात्रा पर काफी अरसे तक रहे थे। पहले वह एक रानी का वित्तीय सलाहकार था। कुबलाई से उस रानी ने उसकी सिफारिश की थी और वह राजा की कृपादृष्टि में बहुत शीघ्र ऊंचा हो गया। खाक़ान का विश्वास पूरी तरह से प्राप्त कर उसने उसका दुरुपयोग आरम्भ कर दिया। पोलो लिखता है कि "शक्ति या ओहदे में कोई भी व्यक्ति इतना ऊंचा नहीं था जो उसके भय से मुक्त हो। जिस किसी को वह महा अपराध से आरोपित कर खाक़ान के पास भेजता वह अभियुक्त अपने बचाव के लिए गवाह तक पेश नहीं कर सकता था। क्योंकि सर्वशक्तिमान मंत्री की इच्छा के विरुद्ध किसी भी गवाह को गवाही देने की हिम्मत नहीं होती थी। इस प्रकार बहुत से निरपराध व्यक्तियों को ही मृत्युदण्ड दे दिया जाता था।" खाकान उसके विरुद्ध कोई शिकायत न सुनता था। वह उसके अनुरोधों को भी बहुत कम अस्वीकार करता, यहां तक कि लोगों द्वारा यह समझा जाता कि अहमद उसकी इच्छा को शक्तिहीन करने के लिए जादू कर देता था।

"प्रिवी काउन्सिल" में पोलो की नियुक्ति हो जाने के कुछ ही समय बाद अहमद की हत्या करने के लिए एक षड्यंत्र रचा गया। इसके नेता वांग-चू और चांग-ई नाम के दो चीनी थे। पोलो के वक्तव्य से पता चलता है कि वह उनके दृष्टिकोण को समझता था कि उच्चपदों पर विदेशियों को रखना बहुत बुरा है और अगर वे बुरा व्यवहार करें तो उनका समर्थन नहीं करना चाहिए। जब ऐसा घटित हुआ तो मंगोल आधिपत्य घोर लज्जा की बात हो गयी। जब हम इस बात की ओर ध्यान देते हैं कि पोलो में अपने स्वामी कुबलाई के लिए कितना आदर था और

वह खुद भी सरकारी नौकरी में लगा विदेशी था तब उसका इस तथ्य के प्रति केवल इतना संकेत भी करना विशिष्ट है।

जब कुबलाई शांग-तू के अपने ग्रीष्म प्रासाद में गया हुआ था तो वांग-चू और चांग-ई ने अपना सुयोग पाया। ऐसे अवसरों पर कुबलाई अपने उत्तराधिकारी कुमार चिकम को अपने प्रतिनिधि रूप में छोड़ जाता था। एक दिन कुमार पीकिंग से बाहर शिकार या ऐसे ही किसी काम से गया था। तभी दोनों चीनी देशभक्तों ने यह चाल गढ़ी। यह बहाना करके कि कुमार चिकम अचानक लौट आये हैं, उन्होंने उनके नाम से अहमद को तुरंत महल से बुलवाने का आदेश भेज दिया। आदेश पाकर अहमद को आश्चर्य हुआ और उसे यकीन न आया, क्योंकि उन लोगों से उसने कुमार के लौटने के बारे में कुछ भी नहीं सुना था, जिनका काम उसे हर खबर देते रहना था। फिर भी इस आज्ञा का पालन न करने का उसका साहस न हुआ क्योंकि कुमार अपने पिता की तरह उसका मित्र नहीं था। यद्यपि आधी रात थी पर फिर भी वह महल की ओर चल पड़ा। फाटक पर नियुक्त शाही रक्षकों की टुकड़ी के मंगोल कप्तान ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि मंत्री इतनी रात गए राजकीय आवास में प्रवेश करने की इच्छा प्रकट करे। अहमद ने समझाया, "चिकम ने मुझे बुलवाया है।"

कप्तान ने आश्चर्य से कहा, "चिकम ? वह तो यहां नहीं है।"

दूसरे व्यक्ति ने कहा, "वह अचानक लौट आये हैं।"

कप्तान बोला, "बिना मेरे जाने, असम्भव !"

फिर भी अहमद ने अन्दर चले जाना ठीक समझा। कप्तान न जाने क्या सोच कर कुछ सिपाहियों के साथ उसके पीछे हो चला। अहमद को वांग-चू के आदमी मिले और वे उसे एक निजी कक्ष में ले गये। वहां उसने उच्चासन पर एक आदमी को बैठा देखा। कम रोशनी में उसने उसे कुमार चिकम ही समझ लिया। उसने उसका सिजदा किया और आदेश की प्रतीक्षा करने लगा। जब वह सिजदे में झुका था तो चांग-ई ने यकायक झपट कर उसका सिर उड़ा दिया। रक्षकों का कप्तान दरवाजे पर रुक गया था। जब उसने इस घटना को देखा तो उसने एक तीर छोड़ा जिसने वांग-चू को बेध दिया और उसका प्राणान्त कर दिया। चांग-ई गिरफ्तार कर लिया गया। अहमद की हत्या की खबर जब कुबलाई को दी गयी तो उसने जांच करने और अपराधी को दण्ड देने का आदेश दिया। चांग-ई और दूसरे मुखिया लोगों को प्राणदण्ड दिया गया। बाद में ग्रीष्म प्रासाद से लौटने पर कुबलाई ने षड्यंत्र के मूल की बारीकी से जांच करवाई और पहली बार यह जाना

कि अहमद कितना बदमाश था। यहां यह महत्वपूर्ण बात है कि मार्को पोलो उन व्यक्तियों में से एक था जिससे उसने इस विषय पर सवाल जवाब किया। चीनी इतिहास में पोलो को "प्रिवी काउन्सिल" का निर्णायक कहा गया है। जिस स्पष्टता से उसने साहसपूर्वक खाक़ान को यह बताया था कि अहमद ने किस प्रकार उसके विश्वास का घृणित रूप से दुरुपयोग किया है, पोलो की इसके लिए विशेष प्रशंसा की गई। कुबलाई की आंखें खुल गयीं और उसने अपनी भूलें सुधारने की कोशिश की। उसके आदेश से अहमद का शव खोद निकाला गया। और उसका सिर दीवार पर लटका दिया गया तथा शरीर कुत्तों के आगे फेंक दिया गया। उसके बेटे और पूरे परिवार का नाश कर दिया गया और उसका अतुल धन जब्त करके राजा के खजाने में डाल दिया गया। भ्रष्टाचार के अभियोग में कुल मिला कर सात सौ चौदह आदमियों को किसी न किसी तरह की सजा दी गयी। इस अवसर पर खाक़ान की कठोरता बहुत कुछ उस भय के कारण भी थी जो मार्को के सभी सच बातें बता देने से उसे हुआ था। उसे पता चला कि विजित चीन पर शासन करना कितना कठिन है। शासन केवल न्याय से किया जा सकता था, जबकि उसके कृपापात्र के अन्याय बहुत ही संकटपूर्ण थे। वह चीनियों का विश्वास खो बैठता और उसके बड़े भीषण परिणाम होते, विशेष रूप से आर्थिक क्षेत्र में। इससे बहुव्यापी विद्रोह भी संभव था।

मार्को को इस मामले में प्रशंसनीय सफलता मिली। बाद में उसे जो अधिक विश्वसनीय कार्य सौंपा गया वह इसी प्रारंभिक सफलता का परिणाम था।

अध्याय नौ

काग़ज़ी मुद्रा

पिछले अध्याय में इस बात पर हमारे लेखक की टिप्पणी है कि निरंकुश शासक के लिए यह निश्चित करना कितना कठिन है कि उसके अधिकारी उपयुक्त व्यवहार कर रहे हैं या नहीं। वैध चीनी सम्राट् निस्संदेह अधिकारियों द्वारा शासन करने वाले स्वेच्छाचारी शासक रहे। किन्तु उन्होंने चरों के द्वारा सार्वजनिक जांच करने की पद्धति का अविष्कार किया था। चर का काम सम्राट् के पास सीधे आकर यह बताना था कि सरकारी ग़लती हो रही थी। फिर दोषी व्यक्ति चाहे सम्राट् का प्रियपात्र ही क्यों न हो उसे दंड दिया जाता था। कुबलाई ने यद्यपि चीनी प्रशासन को उसकी राजकीय सेवा तथा उसके कानून और राजस्व विभाग के साथ ही हाथों में लिया था, पर चरों का उपयोग नहीं किया। कोई भी समझ सकता है, कि क्यों? चीनियों के सिवा किसी के लिए चर का काम करना असंभव होता, क्योंकि इस नियुक्ति के लिए लोगों के प्रति सहानुभूति और उनकी भावनाओं का ज्ञान आवश्यक था। किसी भी बाहरी व्यक्ति में—जो भिन्न भाषा बोलता हो और जिसके आचार भिन्न हों—यह गुण नहीं हो सकता था। किन्तु चीनी चर नियुक्त करना कुबलाई के लिए बड़े खतरे की बात थी, क्योंकि जनता के समर्थन से चरों को अप्रत्यक्ष रूप से बड़े से बड़े अधिकारियों से अधिक शक्ति प्राप्त होती थी। फिर भी निश्चित रूप से चर विभाग के अभाव के कारण ही उसे अहमद के दुर्व्यवहार के द्वारा जनता के विश्वास को खो देने के संकट का सामना करना पड़ा।

तथापि जितने समय तक मार्को पोलो चीन रहा, उसमें से काफी समय तक कुबलाई को अपने चीनी और अन्य प्रजाजनों का काफी हद तक विश्वास प्राप्त था। यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि वह कागज़ी मुद्रा का उपयोग कर सका। उसने और जो भी चीजें देखीं उनसे अधिक उसे बैंक के इन नोटों ने आश्चर्य में डाल दिया। वह उनका विवरण इस आलोचना के साथ शुरू करता है कि खाक़ान ने एक प्रकार से उस रहस्य को खोज निकाला था, जिसका चिरकाल से सारे रासायनिक पता लगा रहे थे। अर्थात् सोना बनाने की तरकीब। बैंक के नोट बनाने में उसका कुछ नहीं लगता था और उनसे वह मनमाना सोना खरीद सकता था।

पोलो कागजी मुद्रा के सिद्धान्त को बिलकुल नहीं समझता था। लगता है कि

उसे यह अनुभव नहीं हुआ कि बैंक-नोट सिक्का देने का इकरार ही है, और जितनी कीमत का नोट होता है, उसके एवज में उतनी कीमत का सिक्का सरकार के पास होना चाहिए, अन्यथा उसकी कीमत नहीं रह जाती। खाक़ान ने अपने भण्डार की बहुमूल्य धातुओं के ढेर के सहारे अपने इन नोटों को चलाया था। ऐसा करने में उसका उद्देश्य अपने को धनी करना नहीं था। क्योंकि नोटों से वह ऐसा कदापि कर भी नहीं सकता था। किन्तु इससे वह अपने अधीन सारे क्षेत्र में एक स्थिर और सर्वव्यापी मुद्रा चलाना चाहता था। इससे उसका अभिप्राय: व्यापार को सुविधा देना था, तथा इस प्रकार लोगों के सामान्य धन में वृद्धि करना था। खाक़ान के राजस्व को भी फायदा पहुंचा, क्योंकि वह लोगों की आय पर कर लगा सकता था।

पोलो को यह सब बड़े अचंभे की बात लगी, क्योंकि वह उसकी आर्थिक व्यवस्था को न समझ पाया था, किन्तु वह यह लिखता है कि यदि कोई भी खजाने में नोट को सोने या चांदी से भुनाना चाहता तो ऐसा कर सकता था। यद्यपि उसने यह प्रसंगवश ही लिखा है, तथापि यही ऐसा आधार था जिस पर पूरी व्यवस्था कायम थी। वह बताता है कि इससे बहुत सुविधा थी। जब व्यापारी लोग खाक़ान के राज्य के बाहर से सोने चांदी का व्यापार करने आते, तो वे खजाने चले जाते। वहां वे अपनी अमूल्य धातुओं का अनुमानित मूल्य स्वीकार कर लेते और उनके विनिमय में बैंक-नोट पाकर प्रसन्न होते। इधर-उधर ले जाने में यह नोट कहीं हलके रहते और अधिक आसानी से छिपाकर रखे जा सकते थे। ये नोट विभिन्न कीमतों के होते थे। इसलिए विभिन्न मूल्यों के विदेशी सिक्कों के बजाय इनसे खरीद करना कहीं आसान होता था।

यह सोचना पोलो की भूल है कि कुबलाई ने काग़ज़ी मुद्रा का आविष्कार किया। बात यह नहीं थी। क्योंकि चीन में नोट बहुत शताब्दियों से चल रहे थे। और उनका उपयोग स्टेपी मैदानों के लोगों ने भी किया, जिन्होंने मंगोलों के आक्रमण से पहले उत्तरी चीन को विजय किया था। एक दूसरे तथ्य का पोलो जिक्र नहीं करता, यद्यपि वह उसके सामने चीन रहते ही आया था। वह तथ्य यह था कि कुबलाई के नोटों का मूल्य गिरता रहता था, क्योंकि वह जारी किये हुए नोटों की संख्या और खजाने में सुरक्षित चांदी सोने के बीच सन्तुलन रखने में पूरी तरह निपुण नहीं था। कोई भी स्वेच्छाचारी शासक, चाहे वह कितना ही निरंकुश क्यों न हो, केवल मात्र अपने आदेश से अदायगी का करार कायम नहीं रख सकता, जब कि यह पता हो कि उसके पास ऐसी अदायगी के लिए साधन नहीं हैं। लगता है पोलो को विश्वास था कि इस प्रणाली का आधार जनता का विश्वास न होकर खाक़ान

के समादेश ही रहते थे। पर उसका वास्तविक आधार जनता का विश्वास ही था। तथ्य के अनुसार, पोलो लोगों के चीन छोड़ने के पांच वर्ष पहले, १२८७ में, ख़ाक़ान को नयी श्रेणी के नोट जारी करने पर विवश होना पड़ा था। पिछले नोटों का मूल्य इस हद तक गिर गया था कि एक नया नोट पुराने पांच नोटों के बराबर के मूल्य का होता था।

यह अजीब बात है कि व्यापारी होकर भी पोलो कागज़ी मुद्रा के सिद्धान्त को भली भांति समझ सकने में असमर्थ रहा। उन दिनों यद्यपि यूरोप में नोटों का प्रचलन नहीं था, किन्तु लगभग तीस वर्ष पहले सम्राट् फ्रेडरिक द्वितीय ने अदायगी के करार की मुहर छापकर चमड़े का नोट जारी किया था। इन नोटों का कुछ दिनों तक मुद्रा की भांति ही चलन रहा। किन्तु साधारण व्यापारी की दर्शनी हुंडी का चलन तो सदैव ही रहा और इससे उसे यह जानने का सूत्र मिल जाना चाहिए था कि मंगोल मुद्रा किस प्रकार चलती थी। जैसा कुछ है, इस विषय पर उसने जो कुछ लिखा है, उसमें उसने अपने स्वामी की अर्थ-व्यवस्था पर सरलतापूर्ण प्रशंसा ही की है और वह अपना अभिनन्दन इस वाक्य से समाप्त करता है : "आपने उन साधनों को तो सुन ही लिया है, जिनके द्वारा ख़ाक़ान के पास संभवतः संसार भर के सारे बादशाहों से सबसे अधिक दौलत होगी, और वास्तव में है भी।"

इस सम्बन्ध में वह एक तथ्य का उल्लेख नहीं करता है, जो शायद यूरोपीय लोगों के लिए असाधारण महत्व का होता। वह यह नहीं बताता कि नोटों पर लिखी इबारत, क्या छापे की थी? वास्तव में पुस्तक के किसी भाग में छपाई का उल्लेख नहीं, यद्यपि नवीं शताब्दी तक चीन में इसका पूरा-पूरा विकास हो चुका था। (ब्रिटिश म्यूज़ियम में एक चीनी छपी पुस्तक [हीरक सूत्र] दिखायी गयी है, जिसकी तिथि ८६८ ईस्वी है)। पोलो के समय तक चीन का सारा विशाल साहित्य छपा हुआ था। वह अपने पाठकों को इस क्रान्तिकारी आविष्कार (जो कि इंग्लिस्तान में दो सौ बरस बाद, १४७७ तक, प्रचलित नहीं हुआ था) की सूचना नहीं देता और यह बात, उसकी सांस्कृतिक विषयों में रुचि न होने का एक और प्रमाण है। यद्यपि मंगोल दरबार ऐसी जगह स्थित नहीं था, जहां अधिक पढ़ना-लिखना होता हो, किन्तु उसने छपाई के विषय में तो सुना ही होगा, चाहे उसने कभी चीनी किताब को उलटने-पलटने का तकल्लुफ न उठाया हो, पर प्रत्यक्षतः छापेखाने का महत्व बताना उससे बिलकुल छूट गया।

अध्याय दस

डाक के मार्ग

मार्को पोलो की पुस्तक के इस भाग का स्वरूप अब अधिक स्पष्ट हो रहा है। यह चीन के अधिकृत भागों का वैसा ही विवरण है, जैसे कोई आजकल अधिकृत जापान के बारे में लिखे। मंगोलों का चीन पर १२७६ से १३६८ तक अधिकार रहा। १२७६ वह साल था, जिसमें कुबलाई ने दक्षिण में चीनियों का प्रतिरोध तोड़ दिया। १३६८ में उसके वंशज चीन से निकाल बाहर कर दिए गए। चीन का मुख्य विवरण जो मध्यकालीन योरुप में मिलता था, वह ऐसा था, जिससे यह प्रतीत होता मानो चीन, विदेशी शक्ति के पूर्णतः अधीन हो। इसका परिणाम यह हुआ कि असली चीन क्या है और चीन निवासी कैसे हैं, इसका यूरोप को बहुत भ्रमपूर्ण आभास मिला। इसके बाद भी चार सौ पचास साल और लगे जब वास्तविक चीनी जीवन और उसकी संस्कृति को योरुप में समझा जाने लगा। तथापि मार्को पोलो की पुस्तक चीन पर लिखी गई किसी भी अन्य पुस्तक से इतनी अधिक प्रचलित हुई (और वास्तव में अभी भी है) कि आज भी बहुत से लोग उस देश को उसकी आंखों से ही देखते हैं।

इस महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम उसके विवरण के अगले विषय को देखें कि मंगोल शासन किस प्रकार चलता था।

जब रोमन लोगों ने ब्रिटेन को अपने विश्व साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया तो उसके नियंत्रण के लिए जो तरीके उन्होंने अपनाए उनमें से एक, सड़कों का निर्माण था, ताकि रोम का लन्दन और उससे भी आगे के स्थानों से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सके। एक सिरे से दूसरे सिरे तक की सड़कें कुबलाई के लिए भी उतनी ही आवश्यक थीं जितनी कि रोमन लोगों के लिए, क्योंकि उसे भी अपनी राजधानी पीकिंग का सम्बन्ध फ़ारस और रूस के दूरवर्ती प्रदेशों तथा चीन की भी बहुत-सी प्रान्तीय राजधानियों से जोड़ना था। मंगोलों की मार्ग प्रणाली, उस पर स्थित सरायें, फौजी चौकियां, डाक के घोड़े और थके घोड़ों के बदले नये घोड़े लेना इन सबका इतना अधिक विकास हुआ कि यह सारे शासन का ही एक महत्वपूर्ण विषय बन गया। इन मुख्य उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह भी था कि चीनियों तथा अन्य विजित राष्ट्रों को नियंत्रण में रखा जाए। पोलो इस विषय सम्बन्धी कुछ

मनोरंजक विवरण देता है। जैसा कि हम देख चुके हैं, उसने बहुत यात्रा की थी और वह रास्तों को अच्छी तरह से जानता था।

कुछ स्थानों पर, ये मुख्य मार्ग, पहिएदार गाड़ियों के लिए पक्के बने हुए थे। किन्तु सामान्यतः घुड़सवारों के लिए उनके अनुरूप मिट्टी की सड़कें थीं। सड़कों के दोनों ओर पेड़ लगे थे या रेगिस्तान में पत्थर के खंभे, जिससे कि यात्री अपने मार्ग से अंधेरे में भटक न जाए। हर पच्चीस मील पर सरकारी चौकी रहती थी, जो यात्रा करने वाले अफ़सरों और संदेशवाहकों के लिए सुरक्षित रहती थी। इस प्रशस्त इमारत में बढ़िया रेशमी विस्तर तथा अन्य आवश्यक चीजें भी रहती थीं। इसी विवरण में, पोलो और आगे कहता है : "कि अगर इन राहगुजरों में से कोई बादशाह आ जाए तो उसे बहुत अच्छा निवास मिलता था।" (यहां हमारा लेखक मुख्य चीन के समृद्ध और घने बसे भागों की ओर इंगित कर रहा है। एक देश से दूसरे देश को जाने वाली सड़कें-जैसे कि सिल्क मार्ग की सुनसान चौकियां—इतनी सुखदायक न होंगी)।

इनमें से प्रत्येक चौकी पर एक अस्तबल रहता था जिसमें सरकारी सन्देशवाहकों के लिए घोड़े तैयार रहते। जिन रास्तों पर शाही डाक बहुत चलती थी, उन पर चार सौ घोड़े तक सुरक्षित रखे जाते थे। दूरवर्ती सड़कों पर कम घोड़े रखे जाते थे और चौकियों के बीच की दूरी भी अधिक रहती थी। पोलो इन तमाम घोड़ों की संख्या तीन लाख देता है और चौकियों की दस हज़ार। और इस भय से कि शायद उसका विश्वास न किया जाये—क्योंकि मंगोल साम्राज्य की विस्तृत दूरियां उसके भूमध्यसागरीय पाठकों की कल्पना से परे की थीं—वह जोरों से कहता है : "यह सब व्यवस्था इतने आश्चर्यजनक पैमाने पर और इतनी व्ययसाध्य थी कि उसका वर्णन करना कठिन है।"

पीकिंग और प्रान्तीय शहरों के बीच सामान्य सन्देशों के लिए पच्चीस मील दूर तक के स्थान (या दो स्थान) का फासला वही सन्देशवाहक रोजाना तय करता था। पच्चीस मील के हिसाब से एक सन्देशवाहक लगभग दो महीने में दक्षिणी चीन पहुंचता है। और बरमा की सीमा पर युन्नान को साढ़े तीन महीनों में। किन्तु अति आवश्यक सन्देशों को पहुंचाने के लिए यह गति कोई इतनी तेज न थी। जरूरी सन्देशवाहकों के लिए निम्नलिखित व्यवस्था थी। चौकियों के मध्य सिर्फ तीन मील का फासला होता था, और उनके बीच भी छोटी चौकियां होती थीं, जिनमें सन्देशवाहक रहा करते थे। यह सन्देशवाहक जरूरी सन्देश ले जाते। प्रत्येक आदमी अगली चौकी तक तीन मील तय करता। यह फासला इतना ही होता कि

वह आधे घंटे में तय कर लेता था ताकि अगली चौकी पर पहुंच कर परवाना देने में देर न लगे, सन्देशवाहक की कमर में घंटियां लगी रहतीं। ज्यों ही घंटियां सुनायी पड़तीं चौकी का मुंशी दूसरे धावक को तैयार कर देता। इस तरह सरकारी परवाना महादेश के एक छोर से दूसरे छोर तक, धावकों की शृंखला द्वारा ले जाया जाता औसतन दिन रात दोनों में ही आठ मील प्रति घंटे का हिसाब रखा जाता, जिससे दक्षिणी चीन में सप्ताह भर तथा युन्नान में बारह दिन में पहुंचना संभव था। किन्तु ऐसे भी अवसर होते, जब इससे भी तेज़ गति की आवश्यकता होती, उदाहरणार्थ विद्रोह हो जाने की स्थिति में। मंगोलों ने इसके लिए भी व्यवस्था की, ताकि संदेश उतनी ही जल्दी पहुंचाया जाय, जितनी जल्दी मोटर द्वारा पहुंचाया जा सकता है। तीन मील की चौकियों पर धावकों के सिवा सवारों के साथ कुछ अच्छे घोड़े ज़ीन कसे तैयार रहते थे। परवाना एक चौकी से दूसरी चौकी तक इतनी तेज चाल से जाता जितना कि घोड़ा भाग सकता था। घुड़सवार घंटियां भी साथ लेकर चलते जिससे कि घोड़ा बदलने में देर न लगे। रात दिन आदमियों और घोड़ों के बदलते रहने से एक परवाना चौबीस घंटों में चार-सौ मील तक पहुंचा दिया जाता था। इसलिए उसे दक्षिणी चीन पहुंचने में साढ़े तीन दिन और युन्नान पहुंचने में छः दिन लगते। लगता है कि एक विशेष प्रकार के सवार (अत्यधिक आवश्यक संदेशों के लिए) भी थे जो हर तीन मील पर एक नये घोड़े पर कूद कर बराबर सवारी करते चले जाते थे। इस तरह का संदेशवाहक उन प्रसिद्ध तख्तियों को लिये रहता जिनका जिक्र पहले आ चुका है। इनके जोर पर रास्ते में वह खाक़ान के नाम पर जो चाहता पा सकता था। अगर उसका घोड़ा गिर पड़ता तो वह राह में मिलने वाले किसी भी व्यक्ति से, यहां तक कि बड़े भारी सरदार से भी, नया घोड़ा ले लेता। मार्को कहता है, इन लोगों का बड़ा सम्मान किया जाता था। संभवतः वे इन कामों को कभी न कर सकते, यदि वे मजबूत पट्टियों से अपना पेट, छाती, और सिर मजबूती से न बांधे रहे होते। इन सन्देशवाहकों की सहनशक्ति की तुलना किसी भी सर्वाधिक शक्तिशाली आधुनिक से नहीं की जा सकती। जिस किसी को भी घुड़सवारी का अनुभव हो, वह बता सकता है कि पच्चीस मील घोड़े की सवारी कितनी थका देने वाली होती है। पूर्व में साधारण यात्री के लिए यह फासला एक दिन की मंजिल माना जाता है। पचास मील चल लेना बड़ी बात होती है और बार-बार सवारी बदल कर भी सौ मील कर लेना औसत सवार की शक्ति से बाहर की चीज है। तब एक रात और दिन में चार सौ मील कैसे किया जा सकता है? इसका रहस्य स्टेपी मैदान के मंगोल सवार की थाती है। यह अधिकारपूर्वक कभी नहीं कहा गया कि रोमन लोगों ने अपनी

सड़कों और चौकियों को इतनी अच्छी तरह संगठित कर रखा था कि वे अपने परवाने इतनी जल्दी भेज सकते हों मानो उन्हें ले जाने के लिए उनके पास मोटरकार हो। फिर भी यह असाधारण बात है कि मशीनी सवारियों के आविष्कार से पहले, ज़रूरत पड़ने पर आदमी किस तरह से इतनी ही तेज़ी से ले जाने वाली कोई अन्य प्रणाली ढूंढ़ लेता था।

आगे के वर्णन से यह पता चलता है कि किस तरह अरब लोगों को दसवीं शताब्दी में हवाई जहाज़ का पूर्वाभास हो गया था। फ़ातिमा सम्प्रदाय के खलीफ़ा अज़ीज़ ने जो काहिरा में रहता था, बालबेक से ताज़ी चेरियों की इच्छा व्यक्त की। बालबेक रेगिस्तान के पार चार सौ मील उत्तर में था। वहां के वज़ीर को जब इसकी खबर मिली तो उसने छः सौ पत्रवाहक कबूतर जमा किए और हरएक के पैर में एक चेरी रखकर थैली बांध दी। चेरियां, काहिरा में बिलकुल अच्छी हालत में उसी दिन खलीफ़ा के भोजन के वक्त पर पहुंच गयीं।

अध्याय ग्यारह

धर्म और ज्योतिष

हमें यह समझाने के लिए तीन कारण दिये गये हैं कि किस तरह से खाकान, विशाल चीनी जनता को जो संख्या में लगभग छः करोड़ कही जाती थी, नियंत्रित करता था। मंगोलों की स्थायी घुड़सवार और तीरंदाज़ सेना विद्रोह दबाने के लिए पर्याप्त थी। सबसे ऊंचे पदों पर चीनी थे, जिससे कि खाकान के विरुद्ध षड्यंत्र का भय कम ही था। किसी भी स्थान पर कम से कम समय में कुमुक पहुंचाने के लिए, डाक की सड़कें उसकी सहायक थीं। किन्तु हमारा लेखक यह स्पष्ट कर देता है कि यद्यपि कुबलाई को अपनी शक्ति बनाए रखनी पड़ती थी। और सावधानी भी बरतनी पड़ती थी, तथापि वह इस बात को भी निरन्तर अनुभव करता था कि उसका शासन चीनियों के सद्भाव पर ही निर्भर करता है, और उनके साथ उसे अपनी प्रजा की भांति व्यवहार करना पड़ेगा, न कि उन्हें पराजित शत्रुओं की तरह समझ कर। चीन की विजय में बहुत लम्बा समय लगा। इस कार्य को चंगेज़ खां ने १२१२ में आरम्भ किया, और जैसा मैंने पहले कहा है, १२७६ में दक्षिण के आत्मसमर्पण के बाद ही इसे पूरा किया गया, जबकि वहां चीन का वैध सम्राट तब तक भी डटा रहा था। इन आक्रमणों के आरम्भ में मंगोलों ने ऐसे तरीके इस्तेमाल किये थे, कि उनसे यूरोप में बड़ा भय छाया रहता था। वे किसी को प्राणदण्ड से मुक्त नहीं करते थे और अगर एक बार कहने से ही, नगर-निवासी आत्मसमर्पण न कर देते तो उन सब की हत्या कर दी जाती थी। यह कहा जाता है कि उनके आक्रमण से पहले चीन की जनसंख्या दस करोड़ थी और चार करोड़ चीनी, मंगोलों के इस लम्बे संघर्ष में काम आये। कुबलाई ने देश की समृद्धि को पूर्ववत् करना चाहा। उसने चीनियों को बाहरी शत्रुओं के भय से मुक्ति; स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार; सहनशीलता और आन्तरिक सुरक्षा प्रदान की। उसका दरबार यद्यपि पुराने चीनी दरबार से अधिक बन्धनमुक्त और सरल था और उसके आखेट, निशानाबाजी तथा उसके शराब पीने के ढंग, चीनी दरबार के गंभीर, शास्त्रीय और धार्मिक वातावरण से भिन्न थे, तथापि वह चीनी शालीनता, सफाई सुविधा और आनुष्ठानिक दृष्टि से स्टेपी मैदान में स्थित कराकोरम में चंगेज़ खां के दरबार से, कहीं अधिक सभ्य था। इस परिष्कृत रुचि के अतिरिक्त जिसके कारण अप्रत्यक्ष रूप से चीनियों ने उसे स्वीकार किया था, पोलो

कुबलाई के विषय में लिखता है कि वह उन पर प्रत्यक्ष रूप से भी कृपा दृष्टि रखता था। मेरे विचार में संभवतः पीछे कहे हुए फ़ारसी इतिहासज्ञ की बात सही है। कुबलाई की मनोवृत्ति अपनी प्रजा को प्यार करने की थी। चीनियों के प्रति उसकी भावना, उसके प्रति चीनियों की भावनाओं से कहीं अधिक कोमल थी उनके विषय में वह जितना अधिक परिचित हुआ उतना ही अधिक वह उनकी प्रतिभा की सराहना किये बिना न रह सका। अतः अपने अंतःकरण से प्रेरित हो कर उसने उनके कल्याण के लिए रचनात्मक कदम उठाये।

यदि किसी भाग में वर्षा के अभाव से या टिड्डियों के आक्रमण या आंधियों के कारण खेती खराब हो जाए तो उस विभाग के अधिकारियों के सूचित करने पर वह "कर" माफ़ कर देता था। यदि महामारी के कारण खेती के पशु मर जाते तो खेतिहर लोग राज्य से पशुओं का अनुदान प्राप्त कर सकते थे। यदि फ़सल ऐसी खराब होती कि लोगों के भूखों मरने की आशंका होती तो सरकारी भंडार-घरों से निर्धारित कम दाम पर रसद और बीज बेचे जाते थे। यह भंडार-घर अच्छी फ़सल वाले वर्षों में अतिरिक्त अनाज खरीद कर भर दिये जाते थे। खेतिहर जनता का कल्याण करने वाली इन साधारण कार्यवाहियों के अतिरिक्त खाकान पीकिंग के ग़रीबों के प्रति बहुत दयालु था। बहुत ही ग़रीब लोगों की एक सूची रहती थी और इन्हें एक साल का खाना कपड़ा दे दिया जाता था। कोई भी ग़रीब आदमी महल के फाटक पर भी आ सकता था जहां कि तीस हजार लोगों को प्रतिदिन एक-एक रोटी दी जाती थी। पोलो कहता है कि बौद्ध पुजारियों ने—जन्हें खाकान तिब्बत और काश्मीर से लाया था—उसे विश्वास दिलाया था कि दान देना बुद्ध को बहुत प्रिय है। वास्तव में दान बहुत बड़ा बौद्धी गुण है। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, पोलो बुद्ध के जीवन की रूपरेखा जानता था। मेरा विचार है कि उसके द्वारा उल्लिखित महात्मा बुद्ध का वर्णन यूरोपीय भाषाओं में सबसे पहले का होगा। उसे पता था कि बुद्ध भारत में रहते थे और उन्होंने एक विशिष्ट धर्म की स्थापना की जिसके सिद्धान्तों में एक आत्मा का पुनर्जन्म होता था। किन्तु यह सब इतना स्पष्ट होने पर भी उसने यह नहीं अनुभव किया कि चीनियों के, दो अन्य धर्म भी थे, ताओवाद और कन्फ़्यूशी वाद। अथवा यदि उसे इस बात का कुछ भी आभास था, तो इस सब में अन्तर क्या है, यह उसे नहीं मालूम था। वास्तव में मूर्तिपूजक मंगोलों द्वारा ग्रहण किया गया बुद्ध धर्म, जिस धर्म का अनुसरण चीनी करते थे, इन दोनों का विवरण पोलो ने जैसा दिया है, वह ऐसे व्यक्ति का नहीं, जिसने जाँच पड़ताल कर अथवा पुस्तकों द्वारा इस विषय का अध्ययन करके लिखा हो। किन्तु वह विवरण ऐसे व्यक्ति

का लगता है जिसने अपने निरीक्षण के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले थे। इससे हमको आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि आज भी कितने ऐसे लोग हैं जो पूर्व की यात्राओं से लौट कर तीनों चीनी धर्मों का उपयुक्त विवरण दे सकें अथवा भारत के हिन्दू धर्म से उनका भेद बता सकें। पोलो और उसके समकालीन यूरोपीय लोगों के लिए ईसाई धर्म के सिवा वहां केवल दो परिचित धर्म थे, यहूदी और इस्लाम धर्म। हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, ताओवाद, और कन्फ्यूशीवाद सभी सामान्यतः एक ही वर्ग, मूर्तिपूजक, में रखे जाते थे। चीन में एक लम्बे समय तक रहने के बाद और खाकान के निमित्त पूर्व में उसने जो बड़ी-बड़ी यात्राएं कीं उनके बावजूद भी उसे कुछ चीजों का इससे अधिक स्पष्ट ज्ञान नहीं हुआ। यद्यपि, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, मुझे ऐसा लगता है कि पोलो, बुद्ध को एक विशेष प्रकार की मूर्तिपूजा का प्रवर्त्तक मानता था।

जितना उसने अपनी पुस्तक में लिखा है संभवत वह उससे भी अधिक जानता रहा हो और इसको कोई जितनी अधिक गहराई से जानने की कोशिश करता है, उतना ही उसे लगता है कि वह अज्ञानी, दुराग्रही जनता के लिए घृणापूर्वक लिख रहा है। उसने केवल मात्र साहस और अचंभे की बातों से वेनिस के नागरिकों का मनोरंजन नहीं करना चाहा, हालांकि उसका लक्ष्य उन्हें शिक्षित करना था। उसने जो महत्वपूर्ण समझा वह लिखा। तथापि ऐसी धारणा बनती है कि उसने इसलिए यह सब लिखा क्योंकि उसे पता था कि वह उन लोगों का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच सकेगा, जिनकी बुद्धि उसकी अपनी बुद्धि से नीचे स्तर की थी। अगर ऐसा है तो उसका मस्तिष्क उससे अधिक विकसित होगा जितना मैंने समझा है।

पीकिंग के ज्योतिषियों पर उसका नोट फिर यह सवाल खड़ा कर देता है। वह कहता है कि सरकार की ओर से नियुक्त ज्योतिषियों का एक दल था, जिसका काम पंचांग तैयार करना था। उनके पास एक वेध यन्त्र रहता था जिस पर ग्रहों के चिह्न, घंटे, और वर्ष भर के संक्रांति के चिह्न अंकित रहते थे। इस यंत्र की सहायता से वह पंचांग तैयार करते जिसमें यह लिखा रहता कि कब बुरे तूफानों, महामारियों और विद्रोहों की संभावना हो सकती है। पंचांग में यात्रा आरम्भ करने, अथवा अन्य महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ करने के शुभ मुहूर्त भी रहते।

किन्तु पोलो यह नहीं कहता कि पीकिंग की वेधशाला उन दिनों संसार भर में सबसे प्रसिद्ध थी। एक दूसरी वेधशाला और एक महाविद्यालय भी शांसी में स्थित पिंगयांग में थे। इस स्थान पर वह बाद में गया था। मंगोल लोग नक्षत्र विद्या और ज्योतिष में अनुरक्त हो गये थे (क्योंकि ज्योतिष विद्या नक्षत्र विद्या से अलग नहीं मानी जाती

थी)। वे लोग इसे खलीफ़ाओं को जीतने के बाद ही जान पाये थे। अरबों ने टालसी प्रणाली नामक यूनानी नक्षत्र विद्या सीख ली थी, और मंगोलों ने इसी को चीन में पेश किया था। यह मौजूदा चीनी प्रणाली से श्रेष्ठ थी और मंगोलों ने पीकिंग और पिंगयांग में जो यंत्र निर्मित किये वे भी उस समय अद्यतन थे।

सन् १३६८ में मंगोल राजवंश के पतन के बाद चीनियों ने अपने पूर्वाग्रह में आकर उन यंत्रों के मंगोलों से सम्बन्धित होने के कारण, उनकी उपेक्षा की और बहुत दिनों बाद उनका प्रयोग करना भूल गये। इसका परिणाम यह हुआ कि मिंग नक्षत्र विद्या—जो मंगोलों के शासन में काफी ऊंचे स्तर तक पहुंच गई थी,—ने अवनति की ओर अग्रसर होना शुरू कर दिया। १६०० में जेसुइट मिशनरी रिक्की को मंगोलों के ये वेध यंत्र और अन्य यंत्र मिले। उसे चीनियों को सिखाने के लिए नक्षत्र-विद्या का पर्याप्त ज्ञान था कि वे उसका प्रयोग कैसे करें। दो सौ पच्चीस वर्ष में जब से ये यंत्र लगाये गये थे—योरुपीय नक्षत्र विद्या मुश्किल से ही उन्नति कर पायी थी।

प्रसिद्ध पुस्तक में यह नहीं लिखा कि क्या कुबलाई ने वेध यंत्रों का समूह यूरोप में इनके जैसे ही किसी अन्य यंत्र की स्थापना हो जाने से बहुत पहले की लगवाया था या इस कारण नहीं लिखा कि पोलो अपने वेनिसवासी पाठकों को—स्पष्टत: इस प्रकार के कठिन और शुष्क (यद्यपि बहुत ही महत्वपूर्ण) विषय से उबाना नहीं चाहता था। अथवा वह स्वयं उसके विषय में कुछ नहीं समझता था? कोई निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि क्या मत स्थिर किया जाए।

अध्याय बारह

ऐस्बेटॉस और पत्थर का कोयला

पोलो को जो भी नयी चीज़ें देखने को मिलीं, उनके विषय में कुछ लिखने के लिये उसके सामने जो बड़ी भारी कठिनाई थी वह थी अज्ञानता! और इसी कारण जनता बड़े ज़ोरदार ढंग से अपना अविश्वास प्रगट करती। किसी चीज़ के तथ्य ग्रहण करने की उसमें प्रतिभा थी। अन्य मध्यकालीन यात्री तथ्य से अधिक कल्पना की उड़ान पसन्द करते थे। और जब उन्हें कुछ मनगढ़ंत कहानी बतायी जाती, तो वे उसे कोरे सत्य से अधिक उत्तेजक मानते। किन्तु पोलो को सहज सत्य ने, कल्पित कथा की अपेक्षा सदैव अधिक उत्तेजित किया। यह इस बात का संकेत है कि यद्यपि वह अध्येता नहीं था किन्तु उसमें एक अध्येता के अनुरूप आवश्यक गुण ज़रूर थे। किन्तु यह कल्पित कथा से अधिक असंभाव्य लगता है कि कुछ तथ्य उसके उपार्जित थे। उसके पाठक सामान्य कल्पित कथा पर विश्वास करने को तैयार थे। किन्तु जब कोई तथ्य मूर्खतापूर्ण कल्पना के समान होता तो वे बड़े होशियार बन कर उसे झूठ समझते। पोलो के लिए एक अन्य असुविधा थी कि वह लिख नहीं सकता था और उसकी बातचीत का शब्द संग्रह बहुत सीमित था। उसका सहकारी रुस्तीशेलो एक मुंशी से ज्यादा योग्य नहीं था। ऐसी परिस्थिति में यह परेशानी थी कि किसी असाधारण तथ्य के विषय में विश्वासोत्पादक विवरण कैसे लिखा जाए।

अब हम यह जांच करें कि वह अपने पाठकों को ऐस्वेस्टॉस और पत्थर के कोयले के बारे में किस तरह बताता है। ऐस्वेस्टॉस के बारे में यूरोपीय लोगों की पहले ही कुछ धारणाएं थीं और इससे उसकी कठिनाई और भी बढ़ गयी थी। इसका बड़े दुर्लभ पदार्थ के रूप में आयात होता था। बहुत ही थोड़े लोगों ने इसे देखा था और इसी तरह इसके अग्नि प्रतिरोधक गुण के विषय में भी बहुत थोड़े लोग जानते थे। उन्हें इसका अनुमान न था कि यह रेशेदार बनावट का न जलने वाला खनिज था। किन्तु वे इस कल्पित कथा से सन्तुष्ट थे कि यह सलमन्दर पशु के रोएं हैं। यद्यपि किसी ने भी सलमन्दर को एक झरने घोड़े के रूप में कभी नहीं देखा था। दोनों ही पशुओं के चित्र बनाये गये थे, उनकी मूर्तियां गढ़ी गयी थीं, और बहुत दिनों तक उसके विषय में

विश्वासपूर्वक लिखा गया था। यहां तक कि वे प्रतिदिन दिखायी पड़ने वाले पशुओं की भांति ही परिचित हो गये थे। जब मार्को पोलो चीन के उत्तर-पश्चिमी भाग में था—जहां कि सिल्क मार्ग मिलता है—तो उसकी भेंट अमीर जुल्फ़िकार नामक एक मुसलमान से हुई। यह तुर्की व्यापारी था जो किसी ज़माने में उन खानों का अध्यक्ष रह चुका था, जिनमें ऐस्बेस्टॉस पाया जाता था पोलो कहता है: "और मेरे रईस साथी ने मुझे ये तथ्य बताये।" कि किसी स्थान पर स्थित—जिनका कोई निश्चित उल्लेख नहीं किया गया—एक पहाड़ में लोहे की खान थी, जिसमें से ऐस्बेस्टॉस भी निकलता था। तब मार्को के शब्द हैं: "जिस कपड़े को हम सलमन्दर कहते हैं और जो आग में डालने से जल नहीं सकता, यहां बनता है।" वह आगे कहता है: "और आप यह जानें कि जिस सलमन्दर के बारे में मैं बता रहा हूं वह कोई पशु या सांप नहीं है, क्योंकि यह सच नहीं है कि ये कपड़े उस जानवर के बालों से बने हैं, जो आग में रहता है, जैसा कि लोग हमारे देश में कहते हैं। किन्तु यह धरती की नस है।" वह आगे यह बताता है "कि सलमन्दर की कहानी मूर्खता-पूर्ण है क्योंकि न तो कोई पशु और न कोई प्राणी आग में रह सकता है। वह ठीक-ठीक वर्णन करता है, कि किस प्रकार ऐस्बेस्टॉस बनाया जाता है। कच्ची धातु की नस तोड़ी जाती है, उससे फ़ालतू चीजें साफ की जाती हैं और उसके रेशे आपस में मरोड़ कर ऊन की तरह डोरे की शकल में बट दिये जाते हैं। यह तागा अच्छी तरह काता जाता है और कपड़े या तौलियों या लबादे के रूप में बुन दिया जाता है। इसे हम कहते हैं कि सलमन्दर का बना है। और जब तौलिये बन जाते हैं तो ये बिलकुल सफेद कतई नहीं होते। किन्तु जब उन्हें सफ़ेद करने की इच्छा होती है तो उन्हें आग में छोड़ देते हैं और सलमन्दर बनाने की बात की यही सचाई है। मैंने अपनी आंखों से उन्हें आग मे छोड़ते और बहुत सफ़ेद होकर निकलते देखा है, किन्तु उस सलमन्दर सांप के बारे में मैंने सारे पूर्व में कुछ नहीं सुना जिसे कहा जाता है कि वह आग में रहता है और इसके बारे में और जो सारी चीजें कही जाती हैं कि यह जानवर है, सब झूठ और कपोल कल्पित है।" वह इस वक्तव्य के साथ अपना विवरण समाप्त करता है कि जब-उसके पिता और चचा चीन की पहली यात्रा से लौटे तो खाकान ने उनके साथ पोप के लिए भेंट में ऐस्बेस्टॉस का एक तौलिया भेजा। पोलो कहता है कि यह तौलिया वैटिकन में उस रूमाल को लपेटने के काम आता था जिससे वैरो-निका के सन्त ने ईसामसीह के चेहरे का पसीना पोंछा था और जिस पर चमत्कार

से प्रभु का चित्र छप गया था। सन्त चरित्र के इस विचित्र विवरण पर पोलो के सम्पादकों में से एक, हेनरी कोर्दियेर कहता है कि उसने वैटिकन में जांच की थी और उसे बताया गया था कि यद्यपि ऐस्बेस्टॉस का इस प्रकार का तौलिया (या उसका भाग) वहां सुरक्षित है किन्तु सूची में, वह कुबलाई द्वारा भेंट किया गया न लिखा होकर अप्पियन मार्ग पर स्थित एक रोमन स्मारक में पाया गया था; यह लिखा है। यह कथा, यह स्पष्ट करने के लिए काफी है कि ऐस्बेस्टॉस कितनी दुर्लभ चीज थी और किस प्रकार उसे ईसाई गिरजे के सबसे विचित्र और सर्वाधिक प्रदर्शनीय स्मृति चिह्न की रक्षा करने के उपयुक्त समझा गया।

पत्थर के कोयले के सम्बन्ध में पोलो अपने को केवल वास्तविक विवरण तक ही सीमित रखता है। उसने इस बात को विश्वसनीय बनाने की कोशिश की, कि चीन में ऐसे पत्थर भी होते थे जो जला करते थे। इस बात को उस समय स्वीकार करना बहुत कठिन था जब कि दक्षिणी यूरोप में कोयले के उपयोग के बारे में लोगों को कुछ पता न था। वह कहता है कि सारे चीन में "एक प्रकार के बड़े काले पत्थर" पाये जाते थे, "जो पहाड़ों से एक लम्बी धारा में खोदे जाते हैं और लकड़ियों की तरह जलते हैं। अगर उन्हें शाम को आग पर रख दिया जाए और वह अच्छी तरह आग पकड़ लें, तो उनसे सारी रात ऐसी अच्छी आग जलती रहती थी कि उसका कुछ अंश सवेरे भी मिलता था।" चीनियों के कोयला इस्तेमाल करने का कारण वह यह बताता है "कि उनकी संख्या इतनी अधिक है कि अगर वे लकड़ी का उपयोग करें तो वह काफ़ी न होगी। उनमें सप्ताह में तीन बार और जाड़े में प्रतिदिन गरम जल से स्नान करने का रिवाज है। हर रईस आदमी के घर अपनी भट्टी होती है, और उसके लिए बहुत बड़ी तादाद में ईंधन की भी जरूरत होती है।" वह इस वक्तव्य से यह विवरण समाप्त करता है: "ये पत्थर मकान बनाने के काम में नहीं लाए जा सकते और सिवाय जलाने के उनका कोई अन्य प्रयोग नहीं है। इससे यह पता चलता है अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए उसे श्रम करना पड़ा था और फिर भी वह आश्वस्त नहीं हो पाया था कि क्या वह अपने विवरण को विश्वसनीय बना पाया है।

अध्याय तरह

कुबलाई का आखेट

पोलो बड़े उल्लास से खाकान के आखेट का वर्णन करता है। वह कहता है कि सितम्बर से फ़रवरी तक कुबलाई सदैव पीकिंग में रहता था और मार्च में दक्षिण-पूर्व की ओर बड़े अभियान पर जाता था। वह उस क्षेत्र में शिकार खेलता था जो पीकिंग और समुद्र के बीच मध्य में स्थित था और अनुमानतः जहां से विशाल प्राचीर आरंभ होती थी। (संयोग से पुस्तक में विशाल प्राचीर का कोई उल्लेख नहीं है। यह एक अजीब चूक है, क्योंकि यह ऐसा विषय था, जिसके बारे में यह सोचा जा सकता था कि इसमें पाठकों को दिलचस्पी होगी, और जैसा कि उसकी यात्राओं से स्पष्ट है पोलो ने निश्चय ही उसे अनेक अवसरों पर देखा होगा। क्योंकि वह उससे होकर गया था संभवतः भूल से वह इसका वर्णन करने से रह गया हो। हमें यह याद रखना है कि वह अपनी पुस्तक रुस्तीशेलो को बोल कर लिखा रहा था, शायद इसी बीच कुछ दिलचस्प तथ्यों की वह उपेक्षा कर गया होगा। (या उसे यह भय रहा होगा कि लोग उस पर हंसें ही न, क्योंकि कैले से कुस्तुन्तुनिया तक लम्बी दीवार के बारे में लिखना ज़रा बड़ी बात तो थी ही) ।

आखेट का अभियान बहुत बड़े पैमाने पर होता था। कुबलाई के पास भालू और बारहसिंगों का पीछा करने वाले शिकारी कुत्तों के दल थे। उसके पास चीते और वनबिलाव थे, जिनसे वह जंगली गधों और दूसरे बड़े पशुओं को मार गिराता। सबसे भयानक शिकार के लिए वह शेरों का उपयोग करता। शायद यह बात कुछ अतिशयोक्ति लगे, क्योंकि हमारे विचार में शेरों को प्रशिक्षित करना असम्भव है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह उनका उपयोग अवश्य करता था। कुत्ते, चीते, वनबिलाव और शेर के सिवा उसके पास उक़ाब थे जो भेड़ियों, लोमड़ियों, जंगली बकरों और हिरनों के लिए काम में लाए जाते थे। शिकारी चिड़ियों के लिए वह कई किस्म के बाजों का उपयोग करता था।

इन आखेट के अभियानों में से यहां एक का चित्रण है। कुबलाई लकड़ी के हौदे पर चलता था, जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है। इसके भीतर सोने के पत्तर जड़े थे और बाहर शेर की खालें चढ़ी थीं। यद्यपि अपनी जवानी के दिनों

में वह बहुत अच्छा सवार रह चुका था, पर अब तो वह गठिया से इतना परेशान रहता था कि प्रायः इसी रीति से वह आखेट करने जाता। कहा जाता है कि उसके पास एक तरह की मछली के चमड़े के जूते थे, जिनका इस्तेमाल वह अपने पैर सूज जाने पर किया करता था, क्योंकि उसके विचार में इससे उसकी गठिया की सूजन कम हो सकती थी। कभी-कभी उसके इतना दर्द होता कि उसे अच्छा करने के लिए वह झाड़-फूंक भी कराता।

अपने सामन्तों, शिकरे वालों और शिकारियों के साथ, जो उसके हाथियों के साथ-साथ अपने घोड़ों पर सवार चलते। पीकिंग से करीब दो-तीन दिन की यात्रा तय करने के बाद वह एक मैदान के मध्य भाग में पहुंचता जो शिकार से भरा रहता। ऐसा लगता है कि एक अवसर पर शायद मार्को पोलो भी इस दल के सदस्यों में शामिल था। वह कहता है "कि पांच हजार कुत्ते शिकार पर छोड़ दिये जाते थे और वे सब एक दूसरे से सीना-ब-सीना चलते और पूरे दिन में सारी जगह फैल जाते यहां तक कि उनसे कोई जानवर भी बच कर न निकल पाता। ऐसे अवसरों पर वास्तव में कुत्तों और शिकारियों के कारनामे एक बड़ा अजीब दृश्य उपस्थित करते। इन बड़े शिकारी कुत्तों का एक दल भालुओं पर और दूसरा बारहसिंगों पर झपटता। कभी शिकार को इस तरफ भगाते और कभी उधर।" वास्तव में देखने के लिए यह बहुत ही मजेदार खेल रहा होगा।

उसने शेरों को भी छोड़े जाते देखा। वे बन्द गाड़ियों में लाये जाते थे और हर शेर के साथ एक छोटा कुत्ता रहता था। शेर और कुत्ता आपस में बड़े दोस्त लगते। जब शिकारी भेदिये (यह सैकड़ों थे) कोई काम का शिकार देख पाते तो शेर को गाड़ी में से छोड़ दिया जाता और वह हवा की तरह शिकार पर टूट पड़ता। बड़े-बड़े सींगों वाले जंगली भैंसों पर इन हिंस्र पशुओं के भयानक रूप से टूट पड़ने का दृश्य शिकार की बड़ी उत्तेजनाओं में से एक था। इस अवसर पर वे ऐसे हिंस्र दिखाई पड़ते कि यह विश्वास करना कठिन हो जाता कि वे पालतू थे और शिकारियों के बुलाने पर लौट आएंगे।

बड़े उक़ाब भी देखने में अजीब थे। कोई भी भेड़िया उनसे निकल नहीं पाता था। वे बड़े बारहसिंगे की पीठ पर बैठ कर, उसका जिगर नोच कर उसे गिरा सकते थे।"

बड़े शिकारों के बीच शिकरों से भी बहुत शिकार होता था पोलो के कथनानुसार "दुनिया में कोई शिकार ऐसा नहीं जो इसकी समता कर सके।" वह कहता है "कि खाक़ान अपने हौदे में बैठा, अपने नीचे चलते हुए शिकारी सवार

सामन्तों से खिड़की में से बातें करता रहता। तब उनमें से एक आवाज़ लगाता कि सारस दिखाई पड़ रहे हैं। कुबलाई फ़ौरन अपने कमरे की छत खोल देता जो लगता है कब्ज़ों के सहारे बंद होती थी। वह सामान्यतः दर्जन भर शिकरे अपने साथ रखता और इनमें से एक सारस पर छोड़ देता। प्रायः शिकार उसकी नजर के तले ही मारा जाता ताकि उसे इस अत्यन्त उत्कृष्ट क्रीड़ा और मन बहलाव का आनन्द अपने कक्ष में बैठे-बैठे या बिस्तर पर लेटे-लेटे ही मिले।" हमें उसके बारे में यही कल्पना करनी है कि वह पीठ के बल लेटे-लेटे, खुले आकाश की ओर देखता रहता था। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि दुनिया में कभी कोई ऐसा आदमी हुआ है या होगा जिसमें मनोरंजन और विनोद की इतनी भावना हो या जिसके साथ ऐसे दुर्लभ संयोग हों।

ऐसा प्रतीत होता है कि शाही छावनी समुद्र के किनारे लगती थी। पूरी छावनी में दस हज़ार तम्बू होते और वह एक शहर जितनी बड़ी लगती थी। दरबार का तम्बू एक हज़ार आदमियों की गुंजाइश के लायक बड़ा था। उसमें तीन खंभे थे और यह शेरों की खाल से ढका रहता था। उसके अन्दर अरमीन और सेबल पशुओं की खालें लगी रहतीं। पोलो हमें बताता है कि सेबल का ओवरकोट लगभग हज़ार सोने के सिक्कों का होता है और "चूंकि अरमीन अधिक महंगी होती थी इसलिए तम्बू के अस्तर के मूल्य का अन्दाज़ा लगाना मुश्किल है।" तम्बू के रस्से रेशम के होते थे। दरबार के तम्बू और खाक़ान के निजी कक्ष—जिनकी शान-शौकत लगभग एक जैसी ही होती थी—के चारों ओर महिलाओं और मुख्य सामन्तों के तम्बू हुआ करते थे। इन आखेटों में उपस्थित कुल लोगों की संख्या एक बड़े नगर की जनसंख्या के बराबर होती थी, इसका कारण यह था कि हर एक का परिवार उसके साथ रहता, क्योंकि रिवाज ही यही था।"

कुबलाई इस अद्भुत सुन्दर छावनी में मई के अन्त तक रहता। प्रतिदिन वह झील और नदियों के किनारे की झाड़ियों में शिकरे के शिकार में जाता या मैदानों के पार जहां जंगली हंस होते, वहां जाता, उसके अनुचरों में से प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना एक बाज़ रहता। लगता है शिकार के प्राणी असंख्य होते थे। उनकी बड़ी सावधानी से रक्षा की जाती और वहां के किसी भी निवासी को अवैध आखेट करने का साहस न होता।" यह लोग अपने स्वामी की आज्ञा का इतना पालन करने वाले थे कि अगर किसी आदमी को कोई जानवर सड़क के किनारे भी सोता मिल जाता तो वह उसे किसी भी मूल्य पर न छूता।"

मई का अन्त होने पर कुबलाई कुछ दिनों के लिए पीकिंग लौटता और तभी

वह अपनी दूसरी शानदार दावत देता। इस प्रकार का रईसी जीवन तेरहवीं शती के योरुपीयों को सरलता से समझ में आ जाना चाहिए, क्योंकि उनके जागीरदार भी इसी तरह से अपना मनोरंजन करते थे । हां यह जरूर है कि उनका खर्च इससे कहीं कम होता था । यही कारण है कि मार्को पोलो का कुबलाई का विवरण बहुत ही जनप्रिय था । चित्र बनाना या सुन्दर अक्षर लिखना , शिक्षित चीनियों के मनोरंजन थे ।

अध्याय चौदह

मार्को पोलो का युन्नान में निरीक्षण-दौरा

"पुस्तक", के इस स्थल पर हमें बताया गया है कि खाकान ने पोलो को गुप्तचर की भांति उपयोग करने का निश्चय किया। यह नहीं कहा गया कि 'प्रिवी काउन्सिल' में सहायक के रूप में उसकी नियुक्ति होने के कितने दिनों बाद यह हुआ। किन्तु लगता है कि इसमें बहुत अधिक समय यथा दो या तीन बरस नहीं लगे होंगे। समझदार और भाषाविद् व्यक्ति होने के नाते उसकी प्रसिद्धि बढ़ गयी थी। जैसा कि हमने अहमद की बदचलनी के प्रसंग में देखा कि उसने अपने को स्पष्टवक्ता सिद्ध कर दिया था। खाकान के लिए यह आवश्यक था कि उसे अपने राज्य के अधिक दूरस्थ भागों की विश्वस्त सूचना मिलती रहे। उन प्रदेशों के निरीक्षण के लिए वह स्वयं यात्रा नहीं कर सकता था और इसलिए उसे जो सूचनाएं मिलतीं उनसे ही उसे संतुष्ट हो जाना पड़ता। राजधानी से आदमी भेजकर स्थानीय सूचनाओं की जांच करने का तरीका चीन में बहुत दिनों से काम में लाया जाता था। कुबलाई के पहले और बाद के सारे सम्राट शाही कमिश्नरों को लम्बे दौरों पर भेजा करते थे।

अपनी नयी नियुक्ति के विषय में बताते हुए पोलो यह नहीं बताता कि वास्तव में उसका काम कैसा था। किन्तु यह स्पष्ट है कि वह वस्तुतः शाही कमिश्नर था, और उससे राजस्व की स्थिति, लोगों की अवस्था तथा स्थानीय गवर्नरों के आचरण और ऐसे ही दूसरे मामलों की सूचना देने के अतिरिक्त यह भी अपेक्षा की जाती थी कि वह सचेष्ट रहे और किसी भी ऐसे मामले का विवरण दें, जिसमें दिलचस्पी बन सकती हो, बगैर इस बात की ओर ध्यान दिए कि वह काम शासन से सम्बन्ध रखता है या नहीं। वह हमें बताता है कि उसने ध्यानपूर्वक देखा था कि दौत्य से लौट कर राजदूत लोग किस प्रकार तत्वरहित सूचनाओं से खाकान को उबाया करते थे, और अत्यन्त मनोरंजक विवरण छोड़ देते थे। उसमें स्वयं ऐसे प्रकृति प्रदत्त गुण थे जो संभवतः उसे आजकल समाचारपत्रों का अच्छा सम्वाददाता बना देते। जो सूचना स्वयं उसे अपने या खाकान के लिए महत्वपूर्ण लगती, उनके नोट लेने का उसने निश्चय किया। एक मध्ययुगीन वेनिस निवासी के लिए यह असाधारण नियुक्ति थी क्योंकि इस पद पर होने से वह ऐसे अधिकारों और सुविधाओं के साथ उन क्षेत्रों में

यात्रा कर सकता था जो योरुप में कभी सुने भी नहीं गये थे । बाद में इस प्रकार के स्थानों का विवरण उसकी पुस्तक का मुख्य उद्देश्य था ।

उसका पहला दौरा युन्नान में था । पीकिंग तथा उस प्रांत के मुख्य नगर—जिसे आजकल कुन मिंग कहते हैं—के बीच एक महान् राजमार्ग था, जिसके विषय में हम चर्चा करते रहे हैं । मैंने हिसाब लगाया है कि एक दिन में पच्चीस मील की सवारी कर युन्नान पहुंचने में साढ़े तीन महीने लगते हैं । पोलो का कहना है कि वह चार महीने तक चलता रहा है । किन्तु यह सही है कि उसे अक्सर रास्ते में रुकना पड़ता था । वास्तव में चार महीने में उसके वहां पहुंचने से यह पता चलता है कि उसने कुछ स्थितियों में बहुत तेज़ सवारी की होगी ।

आरम्भ में यह विशाल दक्षिणी-पश्चिमी राजमार्ग सबसे अधिक धनी, आबाद, समृद्ध और प्राचीन चीनी भूमि पर से होकर जाता था । पोलो ने काफ़ी राजसी ठाठ से यात्रा की होगी, क्योंकि शाही कमिश्नर के साथ बहुत बड़ा अनुचर वर्ग भी रहता था । प्रान्तीय गवर्नरों और नगर के शासक का यह कर्तव्य था कि उसके आगमन पर उससे भेंट करें और उसकी सुविधाओं का ध्यान रखें । सम्राट को सीधे सूचना देने का अधिकार प्राप्त होने से तथा उच्च पदवी का व्यक्ति होने के नाते वह एक ऐसा विशिष्ट अधिकारी था, जिसका सद्भाव प्राप्त करना ही पड़ता था । यह निश्चित है कि उसका स्वागत और उसकी चाटुकारिता होती थी और उसे चीनी जीवन की सारी स्थितियों का परिचय दिया जाता था । किन्तु जिन बड़े नगरों में से होकर उसने यात्रा की उनके सांस्कृतिक महत्व और उनके विशिष्ट इतिहास के विषय में वह हमें असाधारण रूप से कम सूचना देता है । तथापि उसका विवरण जिस प्रकार का है, वह बहुत स्पष्ट है और हम ठीक-ठीक जान जाते हैं कि वह कहां-कहां गया ।

इसके बाद जो विवरण आता है उसमें से पोलो द्वारा उल्लिखित अधिक मनोरंजक तथ्यों का उल्लेख करता हूं, और उनका महत्व अधिक स्पष्ट करने के लिए उनकी समीक्षा करता हूं । पीकिंग छोड़ने और दस मील तक सवारी करने के बाद वह उस पुल पर पहुंचा जो चीन का सबसे सुन्दर पुल कहा गया है और जो अभी तक मौजूद है । जिसका एक नाम हुन हो (पंकिल नदी) है, उसके इस पुल ने अपने आकार और शोभा से उसे आश्चर्यन्वित कर दिया । उस पर दस व्यक्ति घोड़ों पर सवार होकर बराबर-बराबर चल सकते थे । लगता है कि उसमें दस से ज्यादा मेहराबें थीं और मुंडेर के साथ-साथ थोड़ी-थोड़ी दूर पर संगमर्मर के शेर बने थे ।

वह बताता है कि पुल के बाद का रास्ता खेती बाड़ी वाले प्रदेश में से होकर

जाता था, जहां बड़ी संख्या में अंगूर के बगीचे, उद्यान और झरने थे। तीस मील बाद प्रमुख नगर चा-चाऊ था जो अपनी कशीदाकारी के लिए प्रसिद्ध था। होटल बहुत बढ़िया थे। इस नगर के एक मील बाद रास्ता दो शाखों में बंट जाता था। पहली शाखा समुद्र के तट के किनारे पूर्वी प्रांतों को जाती थी। वह दाहिनी शाखा से पश्चिम की ओर गया।

दस दिन की सवारी में वह पाओ-मिंग, चेंग-तिंग और ताइ-यु-आन के बीच से होकर गया। इस यात्रा में उसने अनेक नगरों और उपनगरों का नियमित क्रम तथा व्यापार और शिल्प में उन्नत असंख्य समृद्ध गांव देखे। खेतों में घनी कृषि थी और उनके बीच-बीच ज़मीदारों के भवन छितराये हुए थे। यह भी शिल्प का क्षेत्र था, जहां शाही फ़ौजों के अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य सामान बनाये जाते थे।

ताइ-यु-आन से सात दिन में, वे पिंग-यांग पहुंचे। यह एक प्राचीन नगर था, क्योंकि यह परंपरा से सम्राट याओ का निवास स्थान माना जाता था। सम्राट याओ स्वर्णयुग के तीन महान सम्राटों में से एक था, जिसकी समझदारी और सद्‌गुण कन्फ्यूशियन मतावलंबियों के लिए आदर्श बन गये। पोलो उल्लेख करता है कि यहां वह पहले के राजवंशों का एक महल देखने गया जहां वहां के बहुत से शासकों के चित्रों वाली चित्रशाला (गैलरी) थी। जहां तक हम मूल पुस्तक से समझ सकते हैं, शायद वहां के अधिकारियों ने उसे यह संग्रहालय दिखाया होगा। उन्होंने उसे उस स्थान के विषय में कुछ पुरानी कहानियां कहीं। विशेषत: एक सम्राट के विषय में कि जब वह बाग में हवा खाने निकलता तो उसकी बांदियां उसकी छोटी गाड़ी खींचतीं। किन्तु वहां की प्रसिद्ध वेधशाला के विषय में बहुत कुछ नहीं कहा गया।

पोलो कहता है कि पिंग यांग से लगभग पच्चीस मील बाद उसने पीत नदी पार की। "यह नदी इतनी बड़ी है कि इस पर पुल नहीं बंध सकता, क्योंकि यह बहुत ही चौड़ी और गहरी है। दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग दस दिनों तक अपनी यात्रा जारी रखते हुए वह गौरवशाली नगर चांग-आन पहुंचा। यह हॉन और क्रमागत राजवंशों की राजधानी था और पीकिंग और नानकिंग के बाद चीन का सबसे प्रसिद्ध नगर था। यह वीई नदी की क्रमश: ऊंची होती गई ढलानों पर बसा था। यह नदी पीत नदी की एक सहायक नदी है। नगर की दीवारें और भवन एक के ऊपर एक कतारों में नाट्यगृह की भांति बने हैं। उसके बाद पार्क, प्रासाद, कृत्रिम झीलें और बाग थे। पोलो को यद्यपि चीनी इतिहास का कोई ज्ञान नहीं था किन्तु फिर चांग-आन के विषय में उसने कहा है: "यह बड़ा विशाल और सुन्दर नगर है। पुराने समय में यह उस बड़े शक्तिशाली, धनी तथा नेक राष्ट्र की राजधानी रह चुका है जहां किसी

जमाने में अनेक महान्, समृद्धिशाली तथा बलवान् राजाओं ने राज्य किया। उन दिनों कुबलाई का मंगालाई नामक एक पुत्र वहां का गवर्नर था। हम यह कल्पना कर लें कि जब मंगालाई ने वेनिस निवासी से भेंट की तो उसने इस प्राचीन केन्द्र के महत्व की चीजें उसे दिखायीं। यह केन्द्र चौदह सौ वर्ष पहले हॉन के राज्य में ही प्रसिद्ध नहीं था किन्तु वह तांग (वह राजवंश जो पोलो के आने के लगभग चार सौ साल पहले ६०७ में समाप्त हो गया था) की अधीनता में उस समय संसार में विद्या, साहित्य और कला का सबसे बड़ा केन्द्र था। तांग वंश के राज्य-काल में चूंकि वह ईसाई चर्च के उस विभाग का प्रधान कार्यालय भी था जिसे नेस्टोरियन कहते हैं अतः उसका हमारे लिए एक अन्य महत्व भी हो जाता है। सत्रहवीं शती में, चीन में रहने वाले जेसुइट ईसाई १६२५ में चांग आन में एक पत्थर की सिल मिल जाने से बहुत चंचल हो उठे थे, जिस पर सलीब का निशान था। इस सिल पर १७८० अक्षर खुदे थे और इसका विषय, ईसाई मत का सार, नेस्टोरियन मिश्नरी अलोपेन का ६३५ में आगमन, और ईसाई धर्म को सार्वजनिक रूप से सिखाये जाने के के लिए शाही स्वीकृति के बारे में था। जब पोलो चांग-आन गया तो सम्भवतः यह सिल नहीं थी क्योंकि यद्यपि नेस्टोरियन ईसाई मत खाकान के राज्य के दूसरे भागों में प्रचलित था, तथापि चांग-आन में तांग राज्यवंश के बाद के युग में उसका दमन कर दिया गया था।

पोलो कहता है कि उसने मंगालाई से उसके महल में ही मुलाक़ात की। यह नगर के बाहर पश्चिम में स्थित था और इसके चारों तरफ़ झील और उद्यानों वाला उपवन था। लगता है कि वह महल प्राचीन शाही महलों में से था और उसका निर्माण एक नगर के रूप में किया गया था। मार्को कहता है कि उसमें बहुत से बड़े-बड़े और शानदार हाल थे। "सारे-के-सारे सोने की जड़ाई, चित्रकारी से चित्रित और अलंकृत थे।" जहां तक हम जानते हैं, चीन के सम्राटों के बाद के महल अन्दर से इस प्रकार सोने से सुसज्जित नहीं थे। सोने का स्थान सोने के वर्क या मुलम्मे ने ले लिया था।

मंगालाई के बारे में पोलो ने लिखा है कि उसका शासन न्यायपूर्ण और निरपेक्ष था और लोग उसे चाहते थे। उसके पास एक शक्तिशाली सैन्य दल था, जो महल के बाहरी उपवन में रहता था। यह संक्षिप्त विवरण यह दिखाने के लिए पर्याप्त है कि बड़े मंगोल प्रांतों के गवर्नर किस प्रकार रहते थे। चीनी लोक सेवा के वायसराय होने के स्थान पर वे बहुत कुछ अधीन राजाओं की भांति थे।

चांग-आन में कुछ दिन ठहरने के बाद पोलो उस राजमार्ग पर चल पड़ा जो शैन्सी प्रांत से जचुआन में दक्षिण-पूर्व को जाता है। वह लगभग एक हजार मील की यात्रा

तय कर चुका था और युन्नान में अपनी यात्रा की समाप्ति के लिए उसे अभी दो हजार मील तय करने बाकी थे। अब जिस प्रदेश में से होकर उसने यात्रा आरम्भ की वह उन समृद्ध और अत्यन्त उन्नत प्रदेशों से बहुत भिन्न था, जिनकी यात्रा वह इसके पहले कर चुका था। यह प्रदेश अधिक पर्वतीय भी था। पहला बड़ा नगर हॉन-चुंग था। यह वह जगह थी जहां हॉन राजवंश का भावी प्रवर्तक अपने प्रतिद्वंद्वी ह्‌तेंग-यू द्वारा निर्वासित किया गया था। वहां के लिए रास्ता घाटियों में से ठोस चट्टान काट कर, डांग के ऊपर पतली पगडण्डी के रूप में बनाया गया था। उसके पांच सौ फीट नीचे फेनिल धारा थी। इस पर ही होकर हॉन वंश का संस्थापक २०० वर्ष ई० पू० चीन विजय करने निकला। यह मार्ग अभी तक मौजूद है। इस भाग के निवासी अब रेशम के व्यापारी तथा रेशम के शिल्पकार नहीं रह गये थे, किन्तु ऐसे गरीब खेतिहर और शिकारी थे जो जंगल के साफ किए गए भागों में रहते थे। प्रदेश की गरीबी के बावजूद चौकियां बड़ी-बड़ी और आरामदेह थीं।

पैंतालीस दिन यात्रा करने के बाद पोलो चेंग-तू पहुंचा, जो नदियों के बीच स्थित है जिनमें से प्रमुख नदी मिन-हो है जो यांग्ज़ी की सहायक नदी है। यह स्थान वर्तमान चुंग-किंग से एक सौ पचास मील उत्तर में है। किसी समय चेंग-तू शाही नगर था। पोलो ने पश्चिमी फाटक के बाहर टीला अवश्य देखा होगा, जिसमें सम्राट् वांग-चियन[1] की समाधि थी। उसने अनुभव किया कि वह प्रसिद्ध यांग्ज़ी के समीप है जो वास्तव में उन दिनों मिन-हो मुख्य धारा समझी जाती थी। सामान्यतः यांग्ज़ी के विषय में वह कहता है : "कि इतनी अधिक धाराएं इस नदी को भरती रहती हैं, कि उस वर्णन को पढ़ने या सुनने वाला कोई भी व्यक्ति विश्वास नहीं करेगा। इस नदी द्वारा जितना व्यापार होता था वह अनुमान से परे है। वास्तव में यह नदी इतनी बड़ी है कि नदी के बजाय समुद्र लगती है।"

चेंग-तू, लान-चाऊ और सिल्क मार्ग से आने वाले रास्ते के संगम पर भी पड़ता था और इसलिए बहुत महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक केन्द्र था। पोलो कहता है कि मुख्य पुल पर महसूल एक हजार स्वर्ण मुद्रा प्रतिदिन हो जाता था। यह जेंचुआन प्रान्त की राजधानी था और यहां से युन्नान की राजधानी कुन-मिंग की सीधी दूरी चार सौ मील थी। बीच का भूभाग बहुत दुर्गम है। मार्को ने जो राह पकड़ी थी, वह लगता है याचाओं के रास्ते तिब्बत के किनारे-किनारे रही होगी। कुन-मिन को वह उसी स्थान पर यांग्ज़ी पार कर चुंग-किंग से जा सकता था। वहां

[1]परिच्छेद के अन्त में टिप्पणी देखिए।

से क्वी-यांग होकर एक विशाल राजमार्ग पकड़ सकता था, किन्तु प्रत्यक्षतः अपने काम के कारण उसे याचाओ होकर अधिक पश्चिम की राह पकड़नी पड़ी।

तिब्बत के विषय में वह जो सूचना देता है वह अधिक महत्त्व की नहीं है, किन्तु किसी प्रकाशित पुस्तक में किसी भी अन्य यूरोपीयन ने इस विषय पर कुछ भी नहीं लिखा था। पोलो उस बड़े पठार तथा हिमाच्छादित बड़े मैदानों के बारे में कुछ नहीं जानता था, जो पश्चिम में आठ सौ मील तक ल्हासा तक चले जाते थे, क्योंकि वह बड़े पहाड़ों की निचली पहाड़ियों में से होकर यात्रा करता था। घाटियां बांसों से भरी थीं और उसने बांस के जंगल में आग लगने का विचित्र दृश्य देखा। बांस का डण्ठल जो आर-पार तीस इंच रहता होगा गांठों से बन्द पोले भागों का होता है। आग से इन भागों की हवा इतनी गरम हो जाती है कि वह बांस को बन्दूक सी आवाज से फोडती है। कभी-कभी तो यह आवाज छोटी तोप की आवाज की तरह होती है। मार्को कहता है कि उसने जब यह बिस्फोट पहले-पहल सुने तो वह डर के मारे मर-सा गया था, क्योंकि उसे पता नहीं था कि वह क्या था, किन्तु फिर उसे यह आवाज सुनने की आदत पड़ गयी और वह धमाके के समय कान में रुई ठूंस लेता। उसके घोड़े भी इतने डर गये थे कि वे बेकाबू हो जाते। अगर उन्हें यात्रा के अन्त में बांध भी दिया जाता तो वह अपनी रस्सी तुड़ा कर भाग जाते और फिर कभी नजर न आते। लेकिन वह जान गया था कि किस तरह उनके चारों पैर खूंटी से बांध दिये जायें और उनके कानों पर तब तक कपड़ा डाल दिया जाय जब तक वे भी उसकी ही तरह शोर के अभ्यस्त न हो जायें। (प्रत्यक्षतः वह शुष्क मौसम में यात्रा कर रहा था)। इस देश में उसे शेरों से भी बड़ा कष्ट हुआ।

वहां के निवासी बहुत आदिम थे। उसने उस विचित्र क्षेत्र में जहां बर्मा, चीन और तिब्बत की सीमाएं आपस में मिलती हैं यात्रा आरम्भ की। वहां के निवासी मंगोल जाति के हैं और प्रत्येक जाति अपनी भिन्न-भिन्न भाषा बोलती है, और उनकी अपनी ही कला और अपनी ही पोशाक है। इसे उन्होंने आज तक सुरक्षित रखा है। मार्को पोलो की यात्रा से तेरह सौ वर्ष पूर्व उनके विवरण हमें प्राप्त हैं, और अनेक आधुनिक यात्रियों ने उनके विषय में लिखा है कि वे आदिम हैं, किन्तु जंगली नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी ही छोटी संस्कृतियों का विकास किया है और जहां तक परिस्थितियों ने साथ दिया उन्हें आगे बढ़ाया है।

जब पोलो तिब्बत की सीमा से गुजरा तो उसने कई कहानियां सुनीं कि उस देश का केन्द्रीय भाग किस प्रकार का था। वह उनके बारे में जो कुछ कहता है, संभवतः वह सही भी है कि : "इन लोगों में आपको संसार के उस भाग के सबसे

अच्छे ऐन्द्रजालिक और ज्योतिषी मिलेंगे। वे जादू के जोर से ऐसे असाधारण और अद्भुत करिश्मे करते हैं कि उनको न केवल देखकर बल्कि उनके बारे में सुनकर भी दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। इसलिए मैं अपनी इस किताब में उनमें से किसी का भी विवरण नहीं दूंगा, क्योंकि उसको सुनकर लोग अचंभे में पड़ जायेंगे, जिससे कुछ लाभ नहीं।" पुस्तक के आरम्भ में मैंने उन जादूगरों की चर्चा की है जिन्हें कुबलाई ने तिब्बत से बुलाया था और जो प्यालों को हवा में चला सकते थे। वह शायद एक तरह की भ्रान्ति थी। तिब्बत देश में जाने वाला प्रत्येक यात्री जादू की उन कहानियों को साथ लेकर आता है जो उसने वहां देखे होते हैं, और तो और फ्रेंच यात्री श्रीमती डेविड नील के समान सम्माननीय और रूढ़िवादी व्यक्ति का कहना है कि उन्होंने ऐसे आदमी देखे जो घोड़े की गति से भी तेज़ गति से सैकड़ों मील चले जाते थे। वे कुछ योगियों की शक्ति के बारे में कहती हैं कि वे भीतरी अग्नि के द्वारा पहाड़ों के उन दर्रों में नग्न रहते थे जहां का तापमान शून्य से भी नीचे था। इस भीतरी अग्नि को वे मन की एकाग्रता से उत्पन्न करते थे। तिब्बत के बारे में इस प्रकार की कहानियां सदैव कही जाती रहीं, और इसलिए पोलो के विवरण से किसी को आश्चर्य नहीं हुआ। निःसन्देह उसने मूर के विचित्र धावकों तथा उस जादूई आग के बारे में भी सुना था जो हिमनद जैसी ठण्ड को गर्मी के दिन-सा बना देती थी, किन्तु अपने वेनिस के मित्रों से ऐसी कहानियां कहने का उसका साहस नहीं हुआ, क्योंकि जब महान् नगरों के उसके साधारण से साधारण विवरण और एशिया के स्वामी खाकान के विवरण उसे बड़ा भारी झूठ कहने का अभियुक्त ठहरा रहे थे, तो इनका कैसे विश्वास किया जाता।

तिब्बत की सीमा के किनारे-किनारे दक्षिण की ओर दस दिन की यात्रा के बाद वह महान् यांग्ज़ी के ऊपरी भाग में पहुंचा। उसने अनुभव किया कि यह यांग्ज़ी है, यद्यपि उसने उसे भिन्न नाम दिया। किन्तु समुद्र तक पहुंचते-पहुंचते लम्बी नदियों के कई नाम पड़ जाते हैं। यहां पर यांग्ज़ी युन्नान की सीमा रूप में थी। जिस स्थान से उसने पार किया, वह राजधानी कुन-मिंग (उसकी पुस्तक में याची नाम है) से लगभग एक सौ मील ऊपर था। यह फासला उसने पांच दिन में तय किया और उसके बारे में लिखा है कि "यह देश ऐसा है जहां उत्कृष्ट घोड़े पाये जाते हैं और लोग पशु और कृषि के सहारे रहते हैं। उनकी अपनी भाषा है जो समझने में बहुत कठिन है। पांच दिन के अन्त में आप राजधानी पहुंचते हैं। यह बहुत बड़ा और प्रसिद्ध नगर है, जिसमें अनेक व्यापारी और कारीगर हैं।" चेंग-तू और चांग-आन की तुलना में यद्यपि कुन-मिंग छोटा और देहाती ढंग का नगर था, किन्तु जिन

वनों और जंगली पर्वतों में से होकर वह इतने दिनों यात्रा करता आ रहा था, उनके बाद उसे यह नगर अद्‌भुत लगा।

चेंग-तू पर टिपप्णी

यह जानना रोचक है कि चेंग-तू के पश्चिमी फाटक के बाहर स्थित टीले की खुदाई १९४३ में हुई थी। यद्यपि मार्को पोलो की यात्रा के समय लोगों को मालूम था कि वहां ता-शू के सम्राट् वांग-चीन की समाधि है, किन्तु मंगोल युग के बाद लोग इस तथ्य को भूल गये थे और उन्होंने समझा कि यह लूट टेरेस स्थान है, जहां पर प्रसिद्ध कवि स्सू-मा-हिसियांग-जू (ई० पू० द्वितीय शती) कविताओं की रचना किया करता था। किन्तु जब १९४३ में खुदाई हुई तो समाधि ही मिली, और उसके अन्दर सम्राट् वांग-चीन की कुर्सी पर बैठी हुई मूर्ति थी। इस सम्राट् का देहान्त ९१८ ई० में, पोलो के आने के लगभग ३५० वर्ष पहले हुआ था। वह असाधारण रूप से साहसिक व्यक्ति था, जिसने अपना जीवन, एक गधे-चोर के रूप में शुरू किया और अन्त में, ता-शू का साम्राज्य स्थापित करके सांस लिया। यह साम्राज्य ९०७ ई० ९२५ ई० तक रहा और इसमें पश्चिमी चीन का काफी बड़ा भाग था।

अध्याय पंद्रह

हाथियों का संग्राम

तिब्बत की सीमा पर स्थित पहाड़ों के संकरे भागों और डांगों से कुन-मिग के मैदान पर पहुंच कर पोलो को ऐसे लगा जैसे वह सभ्यता की ओर वापिस लौट आया हो। हमारे लिये भी उसका इस प्रदेश में पहुंचना विचित्र और दूर देशों से उसके परिचित प्रदेश में आगमन के समान है। कुन-मिग प्रसिद्ध वर्मा मार्ग पर स्थित है जो इरावदी से वर्तमान उत्तरी शान राज्य से होकर पश्चिमी युन्नान और वहां से कुन-मिग और चुंग-किंग को जाता है। मोटर के चलाने योग्य मार्ग तो यह केवल द्वितीय विश्व युद्ध में बना, लेकिन खच्चरों का तो यह प्राचीन रास्ता है। वर्तमान रास्ता पुराने रास्ते के साथ-साथ चलता है, और कुन-मिग से बर्मा के पश्चिम की ओर यात्रा करते हुए पोलो ने वही दृश्यावली देखी थी जिसे अभी हाल ही में मोटर द्वारा यात्रा करने वाले अंग्रेजों ने देखा है, क्योंकि उसके समय से लेकर अब तक वह प्रदेश कम ही बदला है। फिर भी एक परिवर्तन जरूर हुआ है। पोलो के आगमन से लगभग पच्चीस वर्ष पहले तक कुन-मिग, नानचाओ नाम के शान राज्य की राजधानी था। मंगोलों ने उस पर १२५२ में आक्रमण किया और उस तिथि से शान जाति के लोगों के एक बड़े जत्थे ने दक्षिण की ओर निष्क्रमण करना आरम्भ कर दिया। मंगोलों ने वर्तमान शान राज्यों और बर्मा में प्रवेश किया और बाद में स्याम में खमेर राज्य को विजय करते हुये नीचे उतरे। मेरे विचार में हम इसे निश्चित ही समझें कि कुन-मिग में जो लोग पोलो को मिले थे वे शान जाति के ही थे, और वास्तव में, यह उस क्षेत्र की मंगोल भाषाओं से बहुत ही कठिन है। अपनी मातृभूमि में ही परा-जित हुए इन शान लोगों के विषय में पोलो कहता है कि वे बौद्ध थे, यद्यपि उनमें से कुछ मुसलमान और कुछ नेस्टोरियन सम्प्रदाय के ईसाई भी थे। आजकल की तरह वे रोटी न खाकर चावल खाते थे और चावल की शराब बनाते थे। इसके सिवा आधु-निक उद्योगों की भांति उनका एक उद्योग, खारे कुएं से नमक निकालना था। उनके टट्टू बहुत उत्कृष्ट थे। इस प्रांत का प्रधान कुबलाई का एक दूसरा बेटा था।

इस राजकुमार के यहां अपना काम निबटाने के बाद पोलो दस दिन तक बर्मा मार्ग के साथ-साथ पश्चिम की ओर बढ़ता गया। टाली ढाई-सौ मील की दूरी पर था। उन दिनों युन्नान दो अधिकार-क्षेत्रों में बंटा था, और इस स्थान पर उसे कुबलाई का

एक और बेटा या पोता मिला। रास्ते में, उसने जीवन में पहली बार मगर देखे। वह इन पशुओं का काफी सही वर्णन करता है : "आकार में वे बड़े पीपे के बराबर हैं। बड़े मगर का घेरा दस-बालिश्त का होता है। पोलो ने समझा कि मगर के सिर्फ दो अगले पैर होते हैं और पिछले पैर सांप की तरह रेंगते हैं। वह उन्हें सांप ही कहता है, मगर नहीं, क्योंकि उस समय की भाषा में मगर शब्द ही नहीं था। पुर्तगाली यात्री, मैंडेज पिंटो ने तीन शताब्दी बाद पूर्वी एशिया में भ्रमण करते समय भी मगरों को सांप कहा। पोलो वर्णन करता है कि किस प्रकार उनको नुकीली लकड़ियों के घेरे में फांस कर पकड़ा जाता था। वह बताता है कि उनका सबसे अधिक मूल्यवान अंग पित्ताशय था। जिसे बड़ी अमूल्य औषधि माना जाता था। इस औषधि को जलातंक, शिशुजन्म, खुजली तथा अन्य बीमारियों में प्रयोग किया जाता था। यह बहुत बहुमूल्य इलाज था। मैंने इन लोगों को यह विश्वास करते देखा है कि कुछ जानवरों के पित्ताशयों में बड़े औषधि-गुण रहते हैं और एक बार मुझे भी रीछ का पित्ताशय बड़े अनुग्रह से भेंट किया गया था। पोलो उस भयानक युद्ध का भी वर्णन करता है जो मगर के शेर से सामना हो जाने पर हो सकता है। मगर, शेर की मांद में से उसके बच्चे चुराने यह सोच कर जाता है कि मां बाहर गयी हुई है। अगर लौटती हुई शेरनी से उसकी अचानक भेंट हो जाय तो यह किसी एक की मृत्यु में समाप्त हो जाने वाली भयानक लड़ाई हो जाती है। पोलो के अनुसार, मगर सदैव जीतता है।

कुन-मिंग और टाली के बीच के रास्ते पर वह समय-समय पर वहां के निवासियों से मिला। वह उनके बढ़िया घोड़ों की प्रशंसा करता जिन पर लम्बी रकाबें लगा कर वे सवारी करते थे। वे उबाले गए चमड़े का बख्तर पहने रहते और ढाल, भाले तथा धनुष अपने साथ लिये रहते। उनके तीर जहरीले होते थे। वह उनके बारे में एक विचित्र बात लिखता है कि यदि कोई महत्त्वशाली व्यक्ति उनके साथ रहने के लिए आ जाए तो अगर उनसे संभव हो सके वे उसकी हत्या तक कर देंगे। परन्तु उसे लूटने के लिए नहीं—जैसा कि मैं पुस्तक से समझता हूं—बल्कि इसलिए कि उसके प्रेत को वे अपनी रक्षा के लिए नियुक्त कर सकते थे। इस प्रदेश में यह अन्ध-विश्वास आज तक चला आता है, और मैंने इस अन्ध-विश्वास का अस्तित्व बर्मा में पाया, जहां मेरे जमाने में किसी प्रतिष्ठित अंग्रेज की इसी अभिप्राय से हत्या कर दी गई थी।

विशाल झील के किनारे पर स्थित टाली नगर—जहां पोलो पहुंचा था—बर्मा मार्ग पर सबसे अधिक पश्चिमी स्थान नहीं था। वहां से वह मीकांग नदी की ओर बढ़ा जो कि एक गहरी घाटी की तलहटी में लगभग पच्चीस मील पश्चिम की ओर

बहती है । नदी से कई हजार फीट नीचे उतर कर—जहां मलेरिया का भयानक प्रकोप रहता है—उसने नदी पार की और आगे की ऊंचाई पर चढ़ा । फिर वहां से बड़े घुमावदार रास्ते से होकर युंग-चांग के मैदान में पहुंचा । जो मीकांग और उतने ही बड़े सालवीन के बीच में स्थित २५ मील के क्षेत्र के मध्य में है । यहां के रहने वाले शान नहीं थे, किन्तु मंगोल जाति के थे और संभव है कि काचिन लोग भी हों । जो आजकल बर्मा की सैनिक जातियों में प्रसिद्ध हैं । दूसरी पहाड़ी जातियों की तरह यद्यपि उनके विचित्र रिवाज थे पर अपने तरीके से वे सभ्य थे । उनके विषय में पोलो कहता है : "ये सारे आदमी अपने ढंग के शरीफ लोग हैं और लड़ाई पर जाने, शिकार और शिकरेबाजी के सिवा वे कुछ नहीं करते । महिलाएं उन गुलामों की मदद से सारा काम करती हैं जो लड़ाइयों में पकड़े जाते हैं । "शोभा चिन्ह के लिए आदमी अपने हाथों और पैरों पर कंकण गुदाये रहते थे । सुन्दर दिखने के लिए वे अपने दांतों पर अजीब तरह का सोने का खोल पहने रहते थे और कोई भी यही समझ सकता है क्योंकि भोजन करते समय वे इसे उतार लेते थे । पोलो कहता है कि शान लोगों के विपरीत उनकी कोई लिखित भाषा नहीं थी और यह बात आजकल के जमाने तक काचिन लोगों के लिए सही रही । उनके चिकित्सक दवाइयों पर जादू की अपेक्षा कम विश्वास करते थे । पोलो एक अत्यन्त विस्तृत विवरण देता है कि किस प्रकार युंग-कांग के चिकित्सक नीरोग करने का व्यापार करते फिरते थे । उनका तरीका मूर्छना पर आधारित एक जादू था । यह चिकित्सा की एक शैली थी जो पूर्व में बहुत काम में लायी जाती थी, यहां तक कि पुराने जापानियों के समान उच्च संस्कृति में भी । जादूगर बीमार के घर आते थे । वे उससे पूछते थे, क्या शिकायत है, कहां दर्द है । तब वे ताल पर नाचने और गाने लगते थे । जब यह कुछ देर हो चुकता था तो चिकित्सकों में से एक को मूर्च्छा आ जाती थी और वह जमीन पर प्रत्यक्षतः निर्जीव होकर गिर पड़ता था । पोलो कहता है कि तब उस पर प्रेत आ जाते थे । जिस क्षण प्रेत का प्रवेश होता था उस व्यक्ति को जोर से कंपकंपी आ जाती थी । ज्यों ही प्रेत चिकित्सक में अच्छी तरह प्रवेश हो जाता था, तब उसके सहकारी उससे रोगी के रोग के विषय में प्रश्न करते थे और इससे यह समझा जाता था कि प्रेत उत्तर देता है, और निर्दिष्ट उपचार विधि इस प्रकार की होगी कि रोगी व्यक्ति ने किसी बुरे प्रेत को खफा कर दिया है । उस प्रेत को भेड़ और मसाले की शराब चढ़ा कर सन्तुष्ट करना होगा । और अधिक गाने बजाने के साथ यह चीजें लायी जातीं और जिस स्थान पर उस प्रेत का वास माना जाता, वहां रखी जातीं । कुछ देर बाद जब नाच अपनी सीमा पर पहुंच जाता तो जादू के चिकित्सकों में से एक

और मूर्च्छित हो जाता और धरती पर लोटने लगता। उसके मुंह से झाग निकलने लगता। उससे पूछा जाता कि बुरी आत्मा ने बीमार को माफ कर दिया या नहीं।" "कभी तो वह उत्तर देता हां और कभी ना।" अगर वह ना कहता तो वह यह भी बताता कि और क्या करना होगा। अन्त में मुख्य जादूगर घोषणा करता कि रोगी व्यक्ति जल्दी अच्छा हो जायेगा। उसके बाद भोज होता और पोलो कहता है कि रोगी व्यक्ति भला-चंगा हो जाता। इस तरह का टोना अभी तक इन प्रदेशों के निकट वाले बर्मा के पिछड़े भागों में प्रचलित है, और उस क्रिया के ब्यौरे यथार्थतः अभी तक वही हैं।

यह तो हुई मीकांग और सालवीन के मध्य प्रदेशों के निवासी काचिन लोगों की बात। अब पोलो कुछ वर्ष पहले युंग-चांग में घटित हुई एक महत्त्वपूर्ण घटना का वर्णन करता है। सालवीन के पश्चिम की ओर बर्मा का राज्य आरम्भ हुआ। बर्मी लोग ऐसी जाति के हैं, जिनका अपना इतिहास और साहित्य है। उनकी सभ्यता जिसमें अपना एक आकर्षण है की तुलना चीनी सभ्यता से नहीं की जा सकती। किन्तु वह स्टेपी के घास के मैदानों के भूगोलों से श्रेष्ठ थी और निश्चय ही उस पहाड़ी सभ्यता से भी बहुत आगे थी, जिसके बारे में पोलो ने कुछ पहले जिक्र किया था। इरावदी पर स्थित राजधानी पगान एक अनुपम स्थान था। वहां हीनयान अथवा बौद्ध धर्म के प्रारम्भिक स्वरूप को इतनी निष्ठा के साथ अपनाया जाता था कि नगर धार्मिक शिखरों का जंगल बन गया था।

पोलो के युंग-चांग जाने के कुछ वर्ष पहले बर्मा के राजा ने राजकीय कर की मांग को अस्वीकार करने के बाद (वह मांग जो कुबलाई ने अपनी सीमा स्थित सारे राजाओं से की थी) मंगोल शासन पर आक्रमण कर दिया था। एक घटना के बाद दूसरी घटना हुई और उसने अपनी सेना युन्नान की सीमा पर भेज दी। परिणामस्वरूप जो युद्ध हुआ उसका विवरण पुस्तक का श्रेष्ठ भाग है। किन्तु पोलो के कथनानुसार ऐसे लगता है कि युद्ध युंग-चांग के बाहर, लेकिन ताइपिंग नदी की घाटी के पश्चिम की ओर तीन मंजिल दूर हुआ। इतिहासकार इसकी तिथि १२७७ देते हैं। हमें ठीक-ठीक नहीं मालूम कि पोलो युन्नान में कब था, किन्तु वह १२७६ से पहले वहां कदापि नहीं हो सकता (वह पीकिंग में १२७५ में ही पहुंचा था) सम्भवतः बाद में हो। किसी भी स्थिति में वह युद्ध स्थल पर नहीं था। उसके सूचना देने वाले ने—वह जो कोई भी था बताया कि बर्मा के राजा ने स्वयं फौजों का नेतृत्व किया था। परन्तु बात वस्तुतः ऐसी नहीं है। नरतीहपते—यही राजा की पाली उपाधि थी—ने अपनी सेना को अपने सबसे बड़े सेनाध्यक्ष के अधीन भेजा था। बर्मा वाले अपनी

राजधानी से तीन सौ पचास मील उत्तर, भामो में जमा हुए और ताईपिंग घाटी से सत्तर मील आगे युन्नान पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़े।

लड़ाई युन्नान के ठीक भीतर, युंग-चांग से कम-से-कम अस्सी मील इधर हुई। युंग-चांग में लड़ाई लड़ने के लिए बर्मा वालों को सालवीन पार करना पड़ता। किन्तु उनके पास दो हजार जंगी हाथी थे और उनके साथ नदी पार करना—जो संसार की सबसे बड़ी और सबसे तेज़ नदियों में से एक थी—बहुत कठिन था। पोलो को गलत सूचना मिली थी। किन्तु युंग-चांग का मैदान और ताईपिंग घाटी का मैदान, जहां वास्तव में लड़ाई लड़ी गई थी, संभवतः बहुत कुछ एक-दूसरे के समान ही थे, इसलिए उसका विवरण भी अमान्य नहीं है।

हाथियों और सवार तीरन्दाजों के मध्य होने के कारण यह युद्ध बहुत असाधारण था। भारत और बर्मा में हाथी सदैव प्रमुख सैन्यदल हुआ करते थे। हाथियों का सामरिक महत्त्व हमारे जमाने के युद्धों के टैंकों की तरह का रहता था। अपनी पीठ पर वह तीरन्दाजों और बल्लमधारी के लिए एक बुर्ज लेकर चलता था, जिसे उन दिनों किला कहते थे। हाथियों के हमले से पैदल सेना की वही हालत हो जाती थी, जैसी हमारे जमाने में टैंकों के हमलों से पैदल सेना की हो जाए। बर्मा के समर-हाथियों के ऊपर एक तरह का हल्का कवच रहता था, जो उनकी रक्षा अपने देश के बल्लमधारियों और हल्के धनुर्धरों से करने के लिए काफी होता। इस तरह की पैदल सेना उन्हें रोक नहीं सकती थी। जब वे उनमें आकर मिल जाते तो असहाय पैदल सिपाही उनके दांतों, पैरों तथा उनकी सूंड के और उन पर चढ़े तीरन्दाजों की दया के पात्र ही रह जाते। इस तरह वे घबड़ाहट में पड़ जाते और अश्व सेना का हमला उन्हें बिल्कुल ही समाप्त कर देता।

युंग-चांग के मंगोल गवर्नर नसरूद्दीन ने जब सुना, कि बर्मी, दो हजार हाथी और साठ हजार अश्व तथा पैदल सेना लेकर चढ़े आ रहे हैं तो वह यद्यपि असमंजस में पड़ गया, क्योंकि उसकी सेना घुड़सवारों की थी इसलिये समस्या कठिन थी। पैदल सेना किसी तरह टैंकों का सामना कर सकती है यदि वह ऐसे शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो जो टैंक सवार सेना के बख्तर छेद सके। नसरूद्दीन की बारह हजार, सवार तीरंदाजों की सेना के पास ऐसे धनुष थे जिनके तीर हाथियों का बख्तर छेद देते। लेकिन यह आसान काम नहीं था और उसे पहले से सावधानी कर लेनी थी। बर्मियों का सामना करने वह ताईपिंग घाटी में उतर गया और समरभूमि के लिए ऐसी जगह चुनी जहां घाटी एक मैदान में खुलती थी, जिसे संभवतः अब नान्तिन का मैदान कहते हैं।

जब बर्मी लोग मैदान के दूसरे सिरे पर घुसे तो उनके सेनाध्यक्ष ने उन्हें व्यूह पांत में खड़ा किया। बीचोंबीच में उसने दो हजार हाथी इकट्ठे किये। उनके पीछे साठ हजार पैदल और घुड़सवार सेना, दो वर्गों में बांट कर खड़ी की। नसरुद्दीन ने अपने बारह हजार सवार तीरन्दाजों को पूरी तरह फैला दिया, उसकी सेना के पीछे ऊंचे-ऊंचे पेड़ों का घना जंगल था। उन्हें सम्बोधित करते हुए उसने आदेश दिया कि "अगर हाथी ऐसे जोरों से आयें कि वे उन्हें न रोक सकें, तो वे जंगल में हट जायें और सुरक्षित स्थान से उन पर तीर बरसायें।" उसने यह भी बताया कि लड़ाई के काम में बर्मी नौसिखुए हैं, जबकि उसके सिपाही विशाल अनुभव वाले पेशेवर योद्धा हैं, इससे उनका पलड़ा भारी होगा, यह निश्चित है।

इन मोर्चे-बन्दियों के बाद दोनों सेनाओं के बीच एक मील का फासला रह गया था। पहले बर्मी गज-सेना आगे बढ़ी यद्यपि तब, बारूद के हथियारों का इस्तेमाल शुरू नहीं हुआ था,[1] परन्तु फिर भी युद्ध शान्ति से नहीं प्रारम्भ हो जाता था, बल्कि बड़े-बड़े नगाड़ों, भारी घंटों और खूब चिल्लाकर शोर करने का रिवाज था क्योंकि शोर आक्रमणकर्त्ता में जोश भर देता और शत्रु को डरा देता। अतः हम स्वयं, कल्पना कर लें कि तुमुलध्वनि के बीच हाथियों ने आगे बढ़ना शुरू कर दिया था।

मंगोलों ने उन्हें तीर की चोट के फासले तक आ जाने दिया। और तब अपनी स्वाभाविक चालों को काम में लाना आरम्भ किया। यह हमेशा तेज और घबड़ा देने वाले युद्ध की चालें थीं—तीर छोड़ते हुए घोड़ों को सरपट भगाना; तीर छोड़ते हुए किनारे को मुड़ जाना; दुश्मन के सामने अन्दर घुस जाना; फिर निकल जाना; पीछे से तीर छोड़ना; घेर कर आक्रमण करना; यह सब बड़ी फुर्ती से किया जाता; और शत्रु के लिए चोट करने का निशाना बनाना बहुत कठिन हो जाता था। किन्तु इस अवसर पर यह चालें काम न आयीं, क्योंकि जब मंगोल लोग घोड़ा दौड़ाते हुए निशाना लगाने की दूरी तक पहुंचे—जो संभवतः करीब डेढ़-सौ गज थी—तो उनके घोड़े हाथियों की ऊंचाई देखकर—जो उनकी पीठ के बुर्जों से और भी ऊंची हो गयी थी—पोलो के कथनानुसार ऐसे डर गए कि उनके सवार किसी भी कौशल

---

[1]मंगोलों के पास बारूद के शस्त्रास्त्र नहीं थे, यद्यपि चीनियों से बारूद बनाना सीखने के बाद उनके पास एक किस्म का बारूद था, पर यह बारूद केवल बम बनाने के काम आता था, जिसे वे गोंफ या बड़े-बड़े सीकों में रखकर उन नगरों पर फेंकते थे, जिन पर उन्हें घेरा डालना होता था। इन यंत्रों द्वारा बम या पत्थर फेंकने की पद्धति को वे साधारण युद्ध में नहीं अपनाते थे।

से उन्हें एक व्यवस्था में आगे-पीछे न दौड़ा सके। वल्कि उन्हें काबू करने के प्रयत्न में ही वे इतने व्यस्त हो गये कि अपनी सामान्य शैली के अनुसार, रास छोड़ कर तीर चलाना उनके लिए नामुमकिन हो गया। वहुत से घोड़े न केवल अड़ गये और बढ़ने से रुक गये वल्कि लौट पड़े और भाग चले। हाथियों ने बढ़ाव तेज कर दिया, तीरन्दाज अपनी बुर्जियों पर से तीर बरसाते रहे, जो कि बिना विशेष प्रभाव के थे, क्योंकि वे कच्चे निशानेवाज थे।

किन्तु इस संभावना की अपेक्षा करते हुए कि हाथी गड़बड़ करने में समर्थ हों, नसरुद्दीन वैकल्पिक प्रवन्ध करने में काफी समझदार था और अब उसने अपने पीछे के जंगल का उपयोग करने का निश्चय किया। उसने अपने सिपाहियों को घोड़ों से उतरने और उन्हें पेड़ों से बांधने का आदेश दिया। जिस प्रकार वे अनुशासित थे, उन्होंने बिना घवराहट के ऐसे किया। तव फिर अपने धनुष लेकर, "जिनका उपयोग वे संसार के किन्हीं भी अन्य लोगों की अपेक्षा अच्छी तरह से जानते थे" उन्होंने बढ़ते हुए हाथियों के समूह पर धुआँधार तीर बरसाना आरम्भ कर दिया। यह ऐसा अचूक निशाना था, जिसे वे रंगरूट होने पर भी नहीं चूक सकते थे—पर यह वलपूर्वक कहा जा सकता है कि वे रंगरूट नहीं थे—किन्तु वहां तो दो हजार हाथी थे, दैत्यों का ऐसा जमघट कि जिसकी कल्पना करना कठिन है। मंगोल तीरंदाज तक भी इतने बड़े गज-समूह पर शीघ्र ही कोई अपना प्रभाव न डाल सके थे, तथापि बर्मी लोग बड़ी अटपटी स्थिति में थे। वे पेड़ों के पीछे छिपे मंगोलों से भिड़ नहीं सकते थे, क्योंकि बुर्जियां बांधे उनके हाथी शाखों के नीचे अंटते नहीं थे। किन्तु यदि वे उनके तीरों के आक्रमण का जवाब देते हुए, जंगल के छोर पर रुक जाते तो वे दुश्मन से कहीं ज्यादा नुकसान उठाते। बर्मी सेनाध्यक्ष को फौरन पीछे हटने का हुक्म देना चाहिए था और हमले का कोई और तरीका काम में लाना चाहिए था। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वहां बहुत अधिक गड़बड़ी और चीख पुकार थी, बहुत ही कम अनुशासन था और इन सबके बीच उसने अपने हाथियों को आक्रमण के सम्मुख किए रखा। हाथी बहादुर थे और निश्चय ही भयानक रूप से क्रूर थे, किन्तु जैसा पोलो कहता है "हाथी में दूसरे किसी भी जानवर से अधिक समझ होती है, इसलिए जब उन्होंने देखा कि यदि उनके सेनाध्यक्ष में समझ नहीं है तो उन्हें ही अब चल देना चाहिए। इस लिए पलट कर और बर्मी मुख्य सेना पर आक्रमण करते हुए उन्होंने अपनी सेना को और भी गड़बड़ी में डाल दिया। उनके शरीर में इतने तीर छिदे हुए थे कि वे साही लग रहे थे। अपने घावों के कारण दारुण कष्ट में परेशान और चिंघाड़ते हुए वे काबू से बाहर होकर इधर-उधर भाग रहे थे। उनके पार्श्व में एक दूसरा जंगल उस

जंगल से काफी दूर था जहां मंगोल छिपे हुए थे। वे इस जंगल की ओर पूरे वेग से भागे और पेड़ों में मिलकर उन्होंने बुर्जियों को शाखों से टकरा दिया, जिससे "उन्होंने उनके अन्दर के लोगों का कोई मामूली हत्याकाण्ड नहीं किया।"

जब नसरुद्दीन ने लक्ष्य किया कि हाथी राह से हट गये हैं और उसके घोड़ों को फिर कष्ट नहीं देंगे तो उसने अपने तीरन्दाजों को फिर सवार होने की और बर्मी घुड़सवार तथा पैदल सेना के खिलाफ दांव-पेंच का युद्ध करने की आज्ञा दी पोलो कहता है कि तब "उन लोगों ने अपने बाणों से बहुत क्रूर और दुष्टतापूर्ण संग्राम आरम्भ कर दिया था और जब वे अपने सारे तीर समाप्त कर चुके तो उन्होंने अपनी तलवारें निकालीं।" यद्यपि बर्मी संख्या में उनसे पांच गुने थे, किन्तु मंगोलों में ऐसे व्यक्तियों का पराक्रम था, जो उस महान् सामरिक दल के सदस्य थे, जिसने संसार के समस्त भागों में साठ वर्ष के अभियान के बाद, जापान और मिस्र के मामलूकों को छोड़कर शेष सब पर विजय पायी। यह बहुत भयंकर युद्ध था। बर्मा वाले यद्यपि तुलना में नौसिखुए थे पर वे बड़ी वीरता से लड़े। मंगोलों में भी बहुत हताहत हुए। "इधर-उधर बहुतेरे आहत होकर धरती पर ऐसे गिरे कि फिर वे वहां उस महान् संघर्ष के लिए कभी न उठ सके।" पोलो का वर्णन ऐसा सजीव है मानो वह स्वयं युद्ध में रहा हो। "वहां चीख-पुकार इतनी अधिक थी कि भगवान् का वज्रनाद भी नहीं सुनायी पड़ता था। संग्राम बहुत भयानक था और चारों ओर बहुत क्रूरता से लड़ा जा रहा था। संग्राम तीसरे पहर तक चलता रहा और तब राजा और उसके अनुयायियों पर इस बुरी तरह से आक्रमण किया गया कि उनमें से बहुत अधिक मारे गये और फिर वे तातारों की सेना के विरुद्ध लड़े न रह सके।"

जब बर्मी सेनाध्यक्ष ने अपने सिपाहियों को हारते और भागते देखा तो वह दुःसाहस के साथ सबसे भयावह स्थानों में से होकर आगे बढ़ता गया। यद्यपि उसने अपने सैनिकों को बढ़ावा देने का बहुत यत्न किया, उन्हें टिके रहने और लड़ने को बहुत ललकारा, पर वह उन्हें हिम्मत न बंधा सका।" आखिर यह देखकर कि उसकी सेना का अधिकांश भाग, या तो घायल हो गया है या खेत रहा है, और सारी युद्धभूमि खून से लथपथ और मृत घोड़ों और सैनिकों से पटी पड़ी है तो वह भी अपने शेष सैनिकों के साथ भाग खड़ा हुआ।

मंगोल लोग निर्दयता से पीछा करने के लिए बहुत बदनाम थे। "वे इतनी बुरी तरह से खदेड़ते, पीछा करते और कत्ल करते गये कि वह दृश्य बड़ा मर्मान्तक हो गया था।" पीछा करना तब तक चलता रहा जब तक कि रात न हो गयी और पूरा सफाया न हो गया। मंगोल लोगों ने अपना पहला गज-संग्राम जीत लिया था।

जिन हाथियों ने जंगल में शरण ली थी वे बाद में पकड़ लिये गये। यह आसान काम नहीं था। मंगोलों ने पहले उनके चारों ओर एक घेरे में पेड़ काट कर उन्हें घेरने की कोशिश की। पर इससे कुछ न हुआ,। जब तक उन्होंने उनके बर्मी महावतों से जो कैद कर लिए गए थे, उनके नाम लेकर न बुलवाया, वे उन्हें न पकड़ सके। उस समय के बाद, कहा जाता है कि कुबलाई ने भी अपनी फौज में हाथियों को काम में लाना शुरू कर दिया।

संग्राम के अपने सुन्दर वर्णन के बाद पोलो उन कारणों की व्याख्या करता है, जिनकी वजह से, अपनी भारी संख्या और हाथियों के रूप में अनोखी श्रेष्ठ सैन्य सामग्री के बावजूद भी बर्मी पराजित हुए थे। पहला कारण, जो वह बताता है वह यह कि बर्मी मंगोलों की तरह शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित नहीं थे। उनके धनुषों की मार इतनी लम्बी या वेधक नहीं होती थी। दूसरे, हाथियों पर काफी कवच नहीं थे। यदि होते तो वे जरूर अपेक्षित वीरता दिखाते और वे मंगोलों को रौंद डालते तथा उनके तीर उन्हें रोकने में बेकाम होते। बर्मियों की हार का तीसरा कारण नसरुद्दीन द्वारा मैदान का चतुर उपयोग था, क्योंकि उसने अपनी फौज को जंगल में पीछे रखकर फैला दिया था। मार्को कहता है कि बर्मियों को ऐसी स्थिति में मंगोलों पर आक्रमण नहीं करना चाहिए था। वह आगे कहता है कि अगर वे खुले मैदान में उन्हें सामना करने पर विवश कर देते और वहां तीरों के विरुद्ध भली प्रकार सुरक्षित हाथियों से आक्रमण करते तो कोई भी चीज हाथियों के धावे को न रोक सकती। मंगोल लोग हार जाते और घबराहट में पड़ जाते। तब अपने घुड़सवारों और पैदलों की पार्श्व सेना को आगे बढ़ा कर, बर्मी सेनाध्यक्ष उन्हें घेर लेता और उनका सफाया कर देता।

यह, युद्ध विवरण का उत्कृष्ट उदाहरण है। स्पष्टतः इसके द्वारा पोलो अपनी योग्यताओं में इस योग्यता को भी सम्मिलित कर सका है। इस संग्राम को इतना अधिक स्थान देकर उसने सैन्य विज्ञान में उसके महत्व के बारे में अपनी बोधशक्ति का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त उसने इसके ऐतिहासिक महत्व को भी पकड़ा है, क्योंकि वह संकेत करता है कि इसके कुछ वर्ष बाद बर्मा पर मंगोल आक्रमण का तथा पगान राज्य का अन्त हुआ। यह राजवंश बर्मी इतिहास में सबसे अधिक सभ्य और असाधारण था, जिसने उस देश को दो सौ वर्ष से अधिक समय तक एकता में बांधे रखा।

अध्याय सोलह

पगान का नगर

बर्मी और चीनी इतिहासकारों से हमें पता चलता है कि इस लड़ाई के पांच वर्ष बाद बर्मा के राजा ने युन्नान पर दूसरा धावा बोल दिया, पर वह पहले से कहीं अधिक मारकाट के साथ पराजित हुआ। इस पराजय से उसे तात्कालिक आक्रमण का भय हुआ और वह अपनी राजधानी खाली कर दक्षिण को भाग गया। उसकी प्रजा ने उसके शासन से तंग आकर उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और १२८७ में उसे विष दे दिया। उसके बाद की अराजकता में मंगोलों ने उस देश पर आक्रमण किया और पगान को ले लिया। उसके बाद से बर्मा मंगोल साम्राज्य का एक अधीन राज्य हो गया।

मार्को इस धावे के बारे में कुछ विनोदपूर्वक संकेत करता है। वह मजाक से कहता है कि कुबलाई ने बर्मा लेना इतना आसान काम समझा था कि उसने अपने बेकार के भांड और नटों की सेना ही काफी समझी। शाही दरबार के यह उपजीवी खुश हो गये और उन्होंने धूमधाम से एक जलूस की तरह पगान में प्रवेश किया।

यह चुटकुला कहने के बाद वह हमें बर्मा और पगान में जाने का मार्ग बताता है मानो वह खुद युन्नान से वहां गया हो। अगर वह बर्मा गया भी होगा तो जिस साल आक्रमण हुआ था, अर्थात् १२८७ के बाद ही गया होगा, तब तक वह चीन में बारह साल रह चुका था। उस हालत में ऊपर सुझाई गई १२७६ की तिथि वह नहीं थी जब वह युन्नान गया था बल्कि १२८८ ठहरती थी। वह 'प्रिवी काउन्सिल' का सचिव १२८४-५ तक रहा होगा—जैसा कि आगे हम देखेंगे—जब वह लंका और भारत को राजनयिक प्रतिनिधि की हैसियत से भेजा गया था। अगर ऐसी बात हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। १२७६ में वह बहुत अल्पआयु, केवल तेईस वर्ष का था, और सचमुच युन्नान के लिए शाही कमिश्नर बनाये जाने के अयोग्य था। अगर वास्तव में वह भारत से लौटने के बाद वहां भेजा गया था, तो उसका पगान जाना संभव था, क्योंकि उस समय तक बर्मा मंगोलों के अधिकार में था। किन्तु उसने क्या-क्या किया, इसके विषय में हम कुछ ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर सकते। सम्भवतः वह मीकांग सालवीन के विभाजन स्थल से आगे कभी न जा पाया हो।

जब वह युन्नान से बर्मा तक के रास्ते का वर्णन करता है तो वह युंग-चांग से आरम्भ नहीं करता, जहां उसने छोड़ा था, परन्तु उस स्थान से शुरू करता है जो बर्मा के मैदान से केवल ढाई पड़ाव है और जिसके बारे में वह कहता है कि सारे रास्ते ढलान है। पर ढाई मंजिल और लंबी ढलान युंग-चांग से बर्मा तक की यात्रा में संभवत: ठीक नहीं बैठती क्योंकि यह फासला उससे दूना है और पहले से ऊंचा-नीचा। किन्तु मंजिल और ढलान दोनों ही बातें संग्राम की वास्तविक भूमि से इरावदी के मैदान तक मिलती हैं। इस प्रकार ऐसे लगता है कि यद्यपि किसी कारण से उसने संग्राम क्षेत्र को गलत नाम दे दिया हो किन्तु उसे अच्छी तरह मालूम था कि वह कहां स्थित है।

ताईपिंग घाटी की ढलान के विषय में उसने केवल इतना ही कहा है कि उसने वहां कोई घर नहीं देखे क्योंकि वहां के निवासी घाटी के छोर के पहाड़ों पर रहते थे। किन्तु जब वह बर्मा के मैदान में पहुंचा तो वहां उसे एक बड़ा बाजार मिला जहां पहाड़ के सारे लोग खरीद करने आते थे। यह ताइपिंग घाटी भामो के मैदानों और पहाड़ी जातियों के पहाड़ पर से उतर कर खरीद-फरोख्त करने तथा वापिस पहाड़ पर लौट जाने के स्वभाव का यह विवरण यद्यपि संक्षिप्त है पर सही है। इसके बाद उसका यह कथन कि बर्मी प्रदेश का विस्तार दक्षिण की ओर है और शेर तथा हाथियों से भरे जंगली प्रदेश में से होकर पगान पहुंचने में पंद्रह दिन लग जाते हैं। यह भी काफी सही है, क्योंकि यह दूरी लगभग साढ़े-तीन सौ मील है, और तेईस मील प्रतिदिन की औसत बैठता है।

वह आगे कहता है, "कि पंद्रह दिनों की सवारी कर चुकने के बाद आप मीन नामक सुन्दर नगर में पहुंचेंगे। जो बहुत बड़ा और शानदार है तथा मीनराज्य का प्रधान नगर है," चीनी लोग पहले बर्मा को मीनराज के नाम से पुकारते थे और अब भी पुकारते हैं। अब वह मीन देश की उस चीज के बारे में वर्णन करता है, जिसकी ओर वहां जाने वाले हर व्यक्ति का पहले ध्यान जाता है, क्योंकि वह है ही ऐसी विचित्र और अनुपम ! वह नगर के उन सुनहरे पगोदाओं का वर्णन करता है, जिनके ऊपर छोटी-छोटी घंटियां लगी थीं और जो हवा से हिलने पर बज उठती थीं। वह विशेष रूप से पगान के दो पगोदाओं की चर्चा करता है। वह कहता है, इनमें से एक असली सोने से मढ़ा था (श्वेदगों, जिसका कि एक भाग आज भी रंगून में है) और दूसरा चांदी से मढ़ा है। और जिस ढंग से दूर से धूप में पगोदा चमकते और झिलमिलाते हैं, वह उस विषय में भी कहता है। यह बहुत सही पर्यवेक्षण है। वह प्रत्येक व्यक्ति जो रंगून नदी तक नाव पर गया है और जिसने श्वेदगों को क्षितिज पर चमकते देखा है वह इसके बारे में जरूर जानता है। पगान का मैदान पगोदाओं से भरा था, शब्दशः

सैकड़ों थे, और मंगोल विजय के बाद उनका दृश्य चमत्कारपूर्ण रहा होगा, जबकि हर चीज़ वैसी ही थी, क्योंकि जैसा मार्को पोलो सही-सही लिखता है, मंगोलों ने पगोदाओं को बर्बाद नहीं किया था। यद्यपि आज कुछ अरसा गुजर जाने के बाद अपेक्षाकृत कम महत्त्व वाले पगोदा नष्ट हो गए हैं, पर बड़े पगोदा अभी तक उसी तरह खड़े हैं जैसे कि हमारे गोथिक कैथेड्रल सही सलामत हैं। यह भी उसी युग के बने हैं और पोलो के कथनानुसार पगान अभी भी सुन्दर स्थान कहा जा सकता है। उसके विषय में वह और अधिक कुछ नहीं कहता। वह इस बात को अनुभव न कर सका था कि पगान उस समय का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बौद्ध केन्द्र था। उसका महत्त्व, व्यावसायिक तो जरा भी न था, बल्कि धार्मिक था, क्योंकि बुद्ध धर्म के सबसे शुद्ध रूप के प्रति वहां के निवासी बहुत उत्साहित थे। जैसा कि हम आगे देखेंगे—वह एक पर्यटक-कमिश्नर की हैसियत से एक और अत्यन्त सुन्दर नगर हांग-चाओ भी गया। यह नगर सुंग राजवंश की राजधानी था और संसार भर में कला और साहित्य का सबसे उन्नत केन्द्र था। हाल ही में तातारों ने इस पर कब्जा जमा लिया था। हांग-चाओ और पगान में वही अन्तर था जो अन्तर फ्लोरेंस के मेदीची और असीसी के सेंट फ्रांसिस में था। यह अन्तर संस्कृति और धर्म का था। यद्यपि पोलो इन दोनों स्थानों का महत्त्व नहीं समझ सका था। पर उसने सही दृश्य को पकड़ा। निश्चय ही वह बड़ा भाग्यशाली था, जो इन दोनों नगरों को वह देख सका। यह सही है कि उनका पतन हो चुका था किन्तु उनमें जीवन ज्योति अभी भी प्रत्यक्ष थी। पर क्या वह वास्तव में पगान आया था ? जैसा कि मैंने पहले कहा, इसके लिए कोई समुचित प्रमाण नहीं।

अगर पोलो बर्मा गया भी था, तो निश्चय ही वह उसके आगे नहीं गया। तथापि पश्चिमी देशों के पाठकों को सारे पूर्व की रूपरेखा देने की कोशिश में वह बर्मा के उन तटवर्ती देशों का वर्णन करता है जो खाकान के अधीन राज्य थे। पहले वह बंगाल की चर्चा करता है, जिसके अन्तर्गत उसके विचार में बर्मा के नीचे का भाग, अराकान और पूर्वी बंगाल सम्मिलित हैं, यद्यपि मंगोल लोग इरावदी के डेल्टा से आगे कभी न गये थे। इसके बाद वह स्याम के उत्तरी भागों और टोंगकिंग की आदिम जातियों के विषय में कुछ कहता है, यद्यपि उसने कम्बोडिया के दक्षिण में महान् नगर अंकोर के विषय में नहीं सुना था, जो उस समय अपनी प्रसिद्धि के शिखर पर था।

अपनी वापिसी पर वह केवल यह कहता है—कि कुन-मिंग में तिब्बत के किनारे-किनारे चेंग-तू का मार्ग पकड़ने के बजाय वह उस रास्ते पर बढ़ता रहा जो आजकल

चुंग-किंग का मुख्य वर्मा-मार्ग कहा जाता है। चुंग-किंग आधुनिक मार्ग का अन्तिम विन्दु है और वहां से वह सवार होकर चेंग-तू गया। मानचित्र में वह घेरा प्रदर्शित है जिस विन्दु पर उसके जाने और आने का मार्ग था। चेंग-तू से वह घोड़े पर ही सत्तर पड़ाव पार कर पीकिंग पहुंचा।

अध्याय सत्रह

सुंग राजवंश की राजधानी

इस पुस्तक के दूसरे भाग में जो कि चीन के पूर्वीय तट पर स्थित प्रदेशों के विषय में है, पोलो किसी विशेष यात्रा का वर्णन नहीं करता। इस दिशा में उसे अक्सर राजधानी और विभिन्न नगरों के बीच निरन्तर यात्रा करनी पड़ती थी। तीन वर्ष तक वह यांग-चाओ के प्रधान के पद पर था। यह नगर नानकिंग की बड़ी नहर के उत्तर-पूर्वी तट पर है। एक अन्य अवसर पर वह शंघाई के दक्षिण-पश्चिम में स्थित हांग-चाओ के चुंगी राजस्व के बारे में रिपोर्ट देने के लिए भेजा गया था। अतः वह एक वर्ष में सारे प्रदेश से सुपरिचित हो गया। यह चीन का सबसे समृद्ध प्रदेश था। इसका दक्षिणी भाग मंगोल साम्राज्य में केवल १२७६ में सम्मिलित किया गया था। इससे केवल अगले वर्ष वह पीकिंग आया था। तब तक यांग-चाओ सुंग राजवंश के अन्तिम शासक वैध चीनी सम्राट् की राजधानी था। १२७६ तक कुबलाई केवल उत्तरी चीन का सम्राट् था। यह देश का वह भाग था, जिसे सुंगवंशी, स्टेपी के किसी पिछले आक्रमणकर्त्ता दल को हार चुके थे। ये आक्रमणकर्त्ता वहां ११२७ में घुस आये थे और अपने को किन राजवंश का कहते थे। ११२७ और १२७६ के एक सौ उन्चास वर्षों के बीच, किनवंश के बर्बर पूर्णतः चीनी हो गये थे। जब उन्हें क्रूर मंगोलों का भय हुआ तो सुंग लोगों का उनकी सहायता के लिए आना सामान्य समझ की बात है। जब अन्तिम किनवंशी सम्राट् ने सुंग लोगों से सैनिक गठबन्धन चाहा तो उसने इसकी ओर संकेत किया था। उसने एक मुहावरे का प्रयोग किया जो बाद में लोकप्रसिद्ध हो गया : "तुम लोगों के लिए हम वैसे ही हैं जैसे दांतों के लिए ओंठ। जब ओंठ नहीं रहेंगे तो दांतों को ठंड लगेगी।" किन्तु अपनी ह्रासोन्मुख महत्ता में डूबे हुए सुंग लोग वास्तविकता को प्रत्यक्ष देखने में असमर्थ थे। जैसा कि मैंने पहले कहा, यद्यपि किन दरबार, चीनी कट्टरता के अनुसार पूर्णतः सभ्य हो गया था, तथापि सुंग अभी तक उन्हें बर्बर ही समझते थे। चीनी ढंगों की नकल करने वाले पूर्ण विदेशी। उन्हें क्या, हो जाएं वे अपने बर्बर भाइयों के शिकार! सैनिक गठबन्धन! कैसी गुस्ताखी है!! स्वर्ग के पुत्र ने उनका अस्तित्व नहीं माना। उसने अपनी उत्तरी राजधानी काइ-फॅग छोड़ दी, यांग्ज़ी पार की और हांग-चाओ को अपनी राजधानी बनाया। किन्तु हांग-चाओ को वह त्सिंग-त्सी अथवा पर्यटन-प्रासाद कहा

करता, जैसे उसने काई-फेंग खाली कर दिया हो, न कि इसलिए कि किन लोगों ने उसे खदेड़ भगाया था, बल्कि इसलिए कि वह दक्षिणी प्रदेशों का दौरा करना चाहता था और इसलिए हांग-चाउ का वह अस्थायी शिविर की भांति प्रयोग करता था। चूंकि इस बड़प्पन में कुछ असलियत नहीं थी, इसलिए जल्दी ही इसका पतन भी हो गया। जब सुविधाजनक अवसर आया तो कुबलाई ने दक्षिण की ओर ध्यान दिया। किन होंठ गायब हो गये और सुंग दांतों को ठंड लगी। मंगोलों के सबसे कुशल सेनाध्यक्ष बयान ने आक्रमण के लिए जाने वाली सेना की बागडोर संभाली। सुंग लोगों के सौभाग्य से इस समय तक मंगोल लोग सभ्य हो गये थे। अपने पितामह चंगेजखां की तरह कुबलाई कत्लेआम में विश्वास नहीं करता था, उनके कुछ अन्य विचार भी थे। जब बयान ने धावा किया तो वह, उच्चकोटि के सुसंस्कृत और युद्ध से घृणा करने वाले सुंग लोगों के लिए यह बड़ा भयानक अवसर था। पहले की गई एक भविष्यवाणी के कारण उन्हें और भी भय लगने लगा। भविष्यवाणी यह थी कि शताक्ष नामक व्यक्ति सुंग वंश का अन्त करेगा। बयान के चीनी रूप पे-येन के अर्थ अथवा श्लेष में इसका अर्थ सौ आंखों वाला ही होता है। उस समय सुंग सम्राट् की आयु केवल चार वर्ष की थी। उसकी दादी उसका शासन भार संभाल रही थी। मार्को पोलो के कथनानुसार जब उसने सुना कि बहुत पहले कहा हुआ शताक्ष आ पहुंचा है तो उसके होश गायब हो गये। पहले संधि की कोशिश की, फिर उसके बाद उसने बयान को शाही मुद्रा भेज दी और बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण कर दिया। बाद में चीनी लोगों ने बयान के विषय में स्वयं ही लिखा है कि वह ऊंची प्रतिभा का व्यक्ति था। निश्चय ही उसमें और एक पीढ़ी पहले के भयंकर मंगोलों में कोई समानता न थी। वह अपने कर्मचारियों के आगे-आगे सवार होकर हांग-चाओ में गया और वहां के निवासियों को कोई हानि न पहुंचाने का आदेश दिया। जब उससे यह कहा गया कि वह सम्राट् और शासनाधिकारिणी से मुलाकात कर ले तो उसने यह कहकर मना कर दिया कि उसे इस प्रकार की भेंट के लिए समुचित शिष्टाचार नहीं आते। संभवतः इसके अर्थ यह होते हैं कि जब तक कुबलाई यह न घोषित कर दे कि इन पराजित महान् व्यक्तियों का क्या पद होगा, उनसे मिलने और उनकी अभ्यर्थना की रीति सन्देहास्पद थी। अगर इस बात को इन अर्थों में लिया जाए तो बयान की उक्ति से पता चलता है कि मंगोलों में कितना अधिक परिवर्तन आ गया था। अब वे केवलमात्र विजेता नहीं थे, किन्तु प्रशासक भी थे जो कि सरकारी शिष्टाचार के पालन को महत्त्व देते थे। जब शासनाधिकारिणी ने सुना, कि कुबलाई न तो उसकी जान का गाहक है और न उसका अपमान करना चाहता है तो वह अचंभित

ग्रौर द्रवित हुई । सुंग वंश में अंतिम अपने नन्हें पोते को छाती से लगा कर वह बोली, "स्वर्ग के पुत्र ने तुम्हें जीवन दान दिया है, ग्रौर उसे धन्यवाद देना उचित है ।" दोनों नतजानु हुए ग्रौर उन्होंने उत्तर की ग्रोर मुंह कर चीनी रीति से नौ बार मस्तक से भूमिस्पर्श किया । कुबलाई को स्वर्गपुत्र की उपाधि देकर उसने वास्तविकता को पहचाना ग्रौर यह स्वीकार किया कि सुंग राज्य समाप्त हो गया है । ईश्वर के स्थानापन्न के रूप में यह चीनी सम्राटों की पवित्र उपाधि हुग्रा करती थी । रक्षकों के साथ उसे ग्रौर उसके पोते को पीकिंग भेजा गया । वहां उनके साथ कुबलाई की वीर ग्रौर नेक सम्राज्ञी जमुई खातून ने ग्रत्यन्त ग्रनुग्रहपूर्ण व्यवहार किया । उन्हें पेंशन मिली ग्रौर बाल सम्राट् तृतीय श्रेणी का राजकुमार बना दिया गया । हांग-चाग्रो के लिए एक मंगोल गवर्नर नियुक्त कर दिया गया ग्रौर नगर मंगोल सैनिकों की एक रक्षक टुकड़ी के ग्रधिकार में रखा गया । किन्तु जनसाधारण के घरों की लूट-पाट या उनमें किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप नहीं किया गया था, ग्रतः नागरिकों का जीवन पहले की भांति चलता रहा । ऊंची श्रेणी की पूर्व स्थिति बनी रही, वैसी ही समृद्ध ग्रौर सुसंस्कृत । इस नगर का ऐश्वर्य ग्रौर इसकी सुरुचि की समता चीन का कोई ग्रन्य नगर नहीं कर सकता था ।

चीन पहुंचने के इतने शीघ्र ही बाद पोलो इन भयंकर घटनाग्रों से जरूर काफी विचलित हुग्रा होगा । हांग-चाग्रो वह केवल बाद में ही गया था । वहां वैभव, ग्रौर वहां की सुख-सुविधा का उसने जो चित्रण किया है, वह उसकी पुस्तक का सबसे ग्रधिक स्मरणीय ग्रध्याय है । उसमें वह बताता है कि सुंग चीन में लोगों का प्रतिदिन का जीवन किस प्रकार का होता था । पर जिस चीन ने प्रतिभापूर्ण व्यक्तियों के एक श्रेष्ठ समूह यथा कवियों, चित्रकारों, दार्शनिकों, साहित्यिकों, कुंभकारों, वास्तुविदों, इतिहासकारों ग्रौर संगतराशों को जन्म दिया । उनके विषय में पोलो कुछ नहीं बताता, क्योंकि वह उनके दर्शन ग्रौर उनकी कला को बिल्कुल न समझता था । जो वर्णन वह करता है, वह ऐसा है जैसे कोई ग्रसंस्कृत व्यक्ति राजसी नगर रोम के पतन के बाद वहां जाने पर उसका वर्णन करे । बड़ी साधारण-सी सुविधाग्रों ने भी उसे ग्रचंभे में डाल दिया, क्योंकि वह जिन सुविधाग्रों का ग्रभ्यस्त था, वे उनसे कहीं ग्रधिक ग्रच्छी थीं । ग्रब हम वह विवरण देखें, जिसमें वह ग्रपने पर ग्रविश्वास करने वाले वेनिस के स्वदेशवासियों को यह विश्वास दिलाने की चेष्टा करता है कि हांग-चाग्रो स्वर्ग था ग्रौर वहां जीवन में ग्रानन्द ही ग्रानन्द था ।

वह यह कहते हुए ग्रारम्भ करता है : "कि मैं नगर में बहुत बार गया हूं ग्रौर मैंने जो कुछ वहां देखा उसे सावधानी से संक्षेप में लिख दिया । कोई चीज छूट न जाए

और जो कुछ हो रहा था उसे समझने का मैंने प्रयास किया।" इससे हम यह मान लेते हैं कि जब उसने कारागृह में अपनी पुस्तक बोल कर लिखायी तो उसके पास संक्षिप्त लेख थे। निःसन्देह यह एक महत्त्वपूर्ण नुक्ता है। उद्यानों, झीलों, उपवनों और उपनगरों सभी को मिला कर उसने हिसाब लगाया कि हांग-चाग्रो सौ मील के घेरे में है। एक झील और एक बड़ी नदी के मध्य में स्थित इस नगर में नहरें इतनी थीं कि इस दृष्टि से वह वेनिस के समान ही था। वहां असंख्य पुल थे और इतने ऊंचे कि बड़े-बड़े जहाज भी मस्तूल झुका कर उनके नीचे से निकल जाते थे और ढलाव इतना अच्छा कि गाड़ी और घोड़े भी बिना कठिनाई के चढ़ जाते। नगर में दस मुख्य बाजारों के चौक थे। प्रत्येक में पचास हजार व्यक्ति समा सकते थे। हिरन का मांस, खरगोश, शिकार का मांस, मुर्गियां, बत्तख, नाशपाती और आड़ू और दूसरे फल, सब तरह के खाद्य-पदार्थ ढेरों में बिकते, और मछलियां तो इतनी बड़ी राशि में रहतीं कि उनका बिक जाना असंभव लगता। घरों के नीचे बाजार के चारों ओर की दुकानों में कम नष्ट होने वाली चीजें जैसे रेशम, जवाहरात, मोती, मसाले, शराब, अलंकार और इसी तरह की चीजें रहतीं।

चालीस गज चौड़ी एक सड़क नगर के आर-पार जाती थी। इस सड़क पर उद्यानों से घिरे बड़े-बड़े भवन और दुकानें स्थित थीं। कारीगर बारह मुख्य व्यवसायों में बंटे हुए थे और वे चित्रकला और नक्काशी के साथ-साथ अन्य दुर्लभ एवं आश्चर्य-जनक शिल्पों में सिद्धहस्त थे। ये कारीगर परिश्रमी, शान्त और शिष्ट होते थे। विदेशी व्यापारियों को देखकर वे प्रसन्न होते और उनके प्रति विनम्र रहते। ऊंची श्रेणी के लोग ऐसे साफ और सुखद घरों में रहते थे जैसे अन्यत्र राजा और जागीरदार रहा करते थे। उनकी पत्नियां बड़ी नाजुक और स्वर्गीय सौंदर्य से सम्पन्न होती थीं। वह रहतीं भी बड़ी नजाकत से थीं, कशीदाकारी किए हुए रेशमी कपड़े और सुन्दरता से जड़े हुए रत्न पहनतीं। उनकी पुत्रियां सुशील और एकान्तप्रिय थीं। जब बाहर निकलतीं "तो उछलती नाचती नहीं थीं, और न ही रंग-रेलियों में मस्त हो जाती थीं और न वे खिड़कियों में से झुककर आने-जाने वालों को भद्दी तरह से घूरतीं।" जब वे बाहर जातीं तो सुन्दर टोपियां पहने रहतीं, जिनसे ऊपर की ओर देखना न हो सकता और वे अपनी आंखें धरती की ओर नीचे किये हुए चलतीं। बिना बुलाए वे अपने बड़ों से बात न करतीं। उनके युवक भाई भी बहुत अच्छे चरित्र के थे। मध्यवर्गीय भी कम सभ्य न थे। "वे प्रसन्नमुख एक-दूसरे को नमस्कार करते, भद्र-जनोचित व्यवहार करते और बड़े शिष्टोचित व्यवहार के साथ भोजन करते।" उनका बातचीत का ढंग अत्यन्त आलंकारिक होता था।

नगर के उत्तर में स्थित बड़ी झील का उपयोग मुख्यतः आमोद-प्रमोद के लिए होता था। उसके चारों ओर अद्भुत ढंग से बाहर और भीतर से सजे हुए प्रासाद और महल थे तथा बहुत से बौद्ध मठ भी थे। बीचोंबीच दो द्वीप थे जो आमोद-प्रमोद के प्रिय स्थान थे। उनमें बने मण्डपों को भोज के लिए किराये पर लिया जा सकता था। इन मण्डपों में, पलंगपोश, मेज़पोश, तश्तरियां और चीनी के बर्तनों की भी व्यवस्था रहती थी।

द्वीपों पर जाने और इन सजीले भोजनगृहों में भोजन करने के अतिरिक्त अनेक नागरिक, निवास-नौकाओं में नौका-विहार भी करते थे। इन नौकाओं में सौंदर्यपूर्ण ढंग से सजी हुई मेज़, कुर्सी तथा रसोईघर भी होते थे, जिससे कि नौका पर ही भोजन भी किया जा सके। निवास-नौका में रहने वाले लोग बहुत प्रसन्न रहते। वे खूब संगीत सुनते और मद्यपान करते, साथ ही साथ पहाड़ों और मीनारों, पुष्पित पेड़ों तथा उद्यानों, झरनों और पगोदाओं के मनोरम दृश्य देखते।

नौका विहार के अलावा सवारी का मज़ा भी लोग उठाते, तराशे हुए पत्थरों या ईंटों के फर्श वाली पक्की सड़क पर से—जिसके दोनों ओर अच्छी नालियां बनी रहती थीं—निजी गाड़ियां ले जाई जा सकती थीं, सड़क के साथ एक अन्य समतल रास्ता घुड़सवारों के लिए रहता। भाड़ा गाड़ियों की तरह खड़ी सार्वजनिक गाड़ियां भी होती थीं, "सड़कों पर रेशम से मढ़ी, पर्दों और तकियों वाली छः सवारियों की लम्बी गाड़ियां सदैव आती-जाती दिखायी देती रहतीं।" यह गाड़ियां बगीचों में आमोद-प्रमोद के लिए दिन भर किराये पर ली जा सकती थीं। वहां पहुंचकर यात्री छाया में बैठकर आमोदभोज का आनन्द मनाते।

नगर की एक और विशेषता थी सार्वजनिक स्नानागार। कुछ तो इतने बड़े थे कि सौ व्यक्ति एक साथ ही पानी में उतर सकते थे। प्रतिदिन नहाने और प्रत्येक बार भोजन से पहले हाथ धोने की प्रथा थी। आग बुझाने का एक कार्यक्षम दमकल भी था। मीनारों पर पानी की घड़ियां थीं और घड़ियाल पर घंटे बजाने वाले आदमी भी अलग से थे, एक बड़ा पुलिस दल था जो डकैतियों की रोकथाम करता था। इस दल की वजह से नगर में कहीं भी घूमना बिल्कुल सुरक्षित था। उन दिनों योरुप में यह बहुत असाधारण बात थी।

अपनी पराजय के बाद भी ऐसा था, हांग-चाओ के निवासियों का सुखी और विलासपूर्ण जीवन! शाही महल अभी भी खड़ा था। पर अब उसका उपयोग मंगोल गवर्नर करता था। पोलो कहता है कि एक अवसर पर वह वहां गया। उसका पथ प्रदर्शक एक बहुत धनी व्यापारी था जिसे पिछले जमाने में महल में प्रवेश करने

की अनुमति थी। पोलो प्रबलता के साथ यहां तक कहता है कि यह संसार भर में सबसे विशाल मूल्यवान, और सुन्दर महल था। इस महल की बहुत-सी इमारतों के चारों ओर पार्क थे, जिनका प्रत्येक पार्श्व ढाई मील का था। पार्क बहुत कलापूर्ण ढंग से बनाया गया था, वहां फूल और फल, फव्वारे और झीलें तथा वन थे, गाड़ियों के लिए पथ थे और हिरनों के लिए खुला वनमार्ग था। पोलो मुख्य सभा भवन के हाल में गया जिसके खंभों पर लाल और सुनहरे रंगों का काम किया गया था, और उसकी छत नक्काशीदार और आसमानी रंग की थी। दीवारों पर विभिन्न कहानियों पशु-पक्षियों, वीरों और महिलाओं के बड़े-बड़े चित्र थे। पोलो कहता है "वह इतना सुन्दर है कि उसकी भव्यता का वर्णन मैं आप से नहीं कर सकता। इस महल का आकार-प्रकार बड़ा आश्चर्यजनक है। उसमें हजारों कमरे हैं।" और वह समझाता है कि कमरे छोटे नहीं थे, जैसे कि योरुप के बड़े-से-बड़े महलों के शयनकक्ष और अन्त:कक्ष होते थे, वरन् उसमें से प्रत्येक एक-एक मकान के बराबर बड़ा था। (गृह-निर्माण के चीनी ढंग में महल मोटे तौर पर आंगन में मण्डपों का समूह कहा जा सकता है जो छतदार मार्गों से जुड़े होते थे। प्रत्येक मण्डप बड़ा कक्ष होता था, जिसमें छोटे-छोटे निवास-गृह बने रहते थे।) और वह खंभों-युक्त बरामदों वाले भीतरी आंगनों का वर्णन करता है, जिससे बाहर की ओर से दूसरे कमरों को रास्ता था, जिनमें दरबार की नर्तकियां और गायिकाएं रहती थीं। वह आगे कहता है "पर अब यह सब सुनसान और उजाड़ थे, क्योंकि मंगोल गवर्नर इस प्रकार के अनुचर नहीं रखता था। उद्यानों के फूल भी उपेक्षित पड़े थे और हिरणों का कहीं पता नहीं था।"

पीकिंग के जिस महल में कुबलाई रहता था उसमें शायद इतनी भूमि नहीं थी उसका घेरा एक मील के लगभग लम्बा था और आध मील चौड़ा। फलस्वरूप यह सुंग महल के घेरे का एक-तिहाई था। पर कुबलाई अपने महल में बंद नहीं रहता था। उसका जीवन, सरल मनोरंजन की एक शृंखला था। वह इधर-उधर शिकार खेलता और यात्रा करता रहता था। पोलो कहता है कि यदि अन्तिम सुंग सम्राट् कम एकान्त-सेवी और पौरुष से अधिक सम्पन्न होता तो वह अपना सिंहासन न खो देता। किन्तु वास्तविकताओं और शस्त्रास्त्रों के ज्ञान के अभाव में वे बड़े हुए और अपने ही शिष्टाचार के बन्दी बन गये। सिद्ध विद्वान लोग जो राज्य के मुख्य पदों पर प्रतिष्ठित थे काम चलाते थे। किन्तु जब राज्याधिकारियों का प्रधान—जैसा कि चीनी सम्राट् था—बड़े-बड़े निर्णय लेने में अक्षम हो गया—उदाहरणार्थ उत्तर में चंगेज खां के विरुद्ध किन राजवंश को सहायता देने के प्रश्न पर—तो राजवंश का अन्त शीघ्र दिखायी देने लगा।

यद्यपि पोलो का हांग-चाम्रो का वर्णन मनोरंजक और विस्तृत है किन्तु वह उस वर्णन से अधिक भिन्न नहीं होता, जबकि स्टेपी के मैदान से आये आक्रमणकारियों द्वारा लंदन के अधिकृत कर लिये जाने पर कोई वहां का वर्णन करता और यह वर्णन पार्कों, बाजारों, व्यापार और बकिंघम प्रासाद तक ही सीमित रहता। हांग-चाम्रो के वास्तविक महत्त्व की ओर पोलो का ध्यान ही नहीं गया, उसका गंभीर महत्त्व वह समझा ही नहीं। निवास योग्य आनन्ददायक स्थानों, अच्छी दुकानों, अच्छे रास्तों, कुशल पुलिस व्यवस्था और आश्चर्यजनक मनोरंजनों से कहीं अधिक वह संसार का सबसे बड़ा बौद्धिक और कलात्मक केन्द्र था। किसी भी अन्य स्थान से बड़ा, जिसमें गौरवशाली रोम को शामिल किया जा सकता है, तथा उन स्थानों से भी जिनकी स्थापना बाद में हुई—जिनमें पेरिस और लंदन को भी शामिल किया जा सकता है—क्योंकि हांग-चाम्रो के ठोस बौद्धिक विकास की पृष्ठभूमि अधिक सुदीर्घ है। यदि किसी धनी व्यापारी के साथ घूमने के स्थान पर जो संभवतः विदेशी रहा होगा—पोलो बराबरी की हैसियत से उन चीनी भद्रजनों से मित्रता स्थापित कर सकता जो कन्फ्यूशियन विद्वान कहलाते थे तो वह हांग-चाम्रो की असाधारण बौद्धिक उत्कृष्टता को समझ पाता। आइये हम कल्पना करें कि वह एकान्त में उनके पुस्तकालयों में उनसे बातचीत कर रहा है। पहली बात, वह बताते हैं कि सहस्रों वर्ष पूर्व जिस काल से उनकी सभ्यता का प्रारम्भ हुआ, तब से चीनी संस्कृति में कोई व्याघात नहीं आया और उसका धीरे-धीरे विकास तब तक होता चला गया, जब तक विचारों का विपुल संचय ही नहीं हो गया। पश्चिम से भिन्न—जिसकी पुरानी संस्कृति आठ सौ वर्ष पहले बर्बरों द्वारा नष्ट कर दी गयी थी और जिसकी अभी तक खोज नहीं की जा सकी है—चीन, हांग-चाम्रो के इस पिछले महान् संकट तक कभी पूरी तौर से बर्बरों द्वारा आक्रान्त नहीं हुआ था। तथापि यह संकट सांस्कृतिक दृष्टिकोण से तात्कालिक संकट नहीं था, क्योंकि दक्षिण की ओर बढ़ने से पहले बर्बर आक्रांता उन चीनी विचारों द्वारा पहले ही सभ्य हो गये थे, जिनके अनुसार जो कुछ भी वहां मिले उसे अग्नि और तलवार की भेंट नहीं कर देना चाहिए। यदि रोम का पतन न होता या रोम बर्बर आक्रांताओं को अपने में खपा पाता तो सभ्य योरुप की जो संस्कृति होती, वैसी ही संस्कृति चीन की थी। (सत्य तो यह है कि रोम की संस्कृति चीन की-सी प्रबल नहीं थी।)

किन्तु मध्य युग के किसी योरुप निवासी के समक्ष यदि इस प्रकार का वक्तव्य दिया जाता तो उसके लिए इसे समझना असंभव हो जाता, क्योंकि गौरवपूर्ण प्राचीन संस्कृति से अनजान होने के कारण वह उस विकसित संस्कृति की कल्पना नहीं कर

सकता जो प्राचीन संस्कृति में ही जन्म लेती है। किन्तु तर्क के लिए मान लें कि चीनी विद्वानों ने ऐसा वक्तव्य दिया, और तब देखें कि इसके बाद उन्होंने इसका कैसा निरूपण किया होता।

सबसे पहले वह उसे शास्त्रीय ग्रन्थ दिखाते, और वे रचनाएं जो ईसा से पांच-सौ वर्ष पूर्व के नैतिक दार्शनिक कन्फ्यूशियस के नाम से सम्बद्ध है। वह यह भी बताते कि, इन पुस्तकों में उस प्राचीन चीनी दर्शन का सार है जो उस दार्शनिक से बहुत पहले भी था। उसकी महान् विशिष्टता यह नहीं थी कि उसने उनकी संस्कृति को जन्म दिया किन्तु उनकी सांस्कृतिक परम्परा को बनाए रखा। इसके बाद वे उसे वह किताबें दिखाते जिनमें उन विस्तृत दार्शनिक सिद्धान्तों का उल्लेख था—जो ईसा पूर्व चौथी शती में स्थापित किए गए थे। इसके अतिरिक्त ईसा पूर्व २०७ शती में हॉन राजवंश की स्थापना का वर्णन भी इसमें होता। हॉन वंश का यह युग रोम साम्राज्य के समानान्तर उत्तर गौरव कालीन युग था। विशाल संस्कृति के उत्तराधिकारी हॉन लोगों ने चार सौ वर्ष तक उसे सुरक्षित रखा और उसे उन्नत किया। पोलो के मित्र तब चाहे यह बताते कि यद्यपि हॉन राजवंश की मुख्य विजय पहले से स्थापित की जा चुकी बौद्धिक स्थिति को ठोस बनाने के बारे में थी, तथापि उसका मौलिक अंशदान वैज्ञानिक इतिहास को लिखना था। ऐसा इतिहास, जो दस्तावेजों के आधार पर लिखा गया और जिसकी तिथि का निर्धारण ऐसी सावधानी से किया गया कि उसमें प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना का वही दिन और वही समय उल्लिखित था। यह अद्भुत कार्य ऐतिहासिक क्षेत्र में रोमन लोगों की सीमित उपलब्धियों से कहीं आगे बढ़ा हुआ था। मान लीजिये कि पोलो उनकी सभी बातें अच्छी तरह से समझता रहता तो वह उसे आगे बताते कि बाद की तीन शतियों में राजनीतिक क्रान्तियों के बावजूद भी चीनी सभ्यता का महान् विकास जारी रहा, कला समीक्षा के सिद्धान्तों को निरूपित किया गया। यद्यपि योरुप में कागज के बारे में लोग अभी तक अनजान थे, पर चीनी लोग इसका उपयोग हॉन के समय से करते आ रहे थे, और जिस वर्ष संत अगस्तीन अपने प्रचार कार्य के लिए ब्रिटेन गये, जब वहां पर रोमन लोगों के चले जाने की संकटपूर्ण स्थिति में जातीय बर्बरता की पुनः स्थापना हो गई थी, तो उस समय तक चीन में छपाई का आविष्कार हो गया था। अन्त में पोलो को बताया जाता कि तब से सब देशों में मिलाकर जितनी किताबें छापी गई हैं उससे अधिक उनके देश में छपी हैं? इन पुस्तकों ने चीनियों की मौलिक संस्कृति और उनसे उत्पन्न नव-निर्माण का विकासशील परिचय देना जारी रखा। आरम्भ से अन्त तक उनका इतिहास सहस्रों ग्रन्थों में आश्चर्यजनक विस्तार से लिखा गया था

जिससे उन्हें ठीक-ठीक पता चल जाता था कि पिछले डेढ़ हजार वर्षों में हर महीने क्या घटित हुआ। उनका पद्य और भी व्यापक था। उदात्त एवं भौतिक विषयों में उनकी समान गति थी। उनके निबन्ध स्वतन्त्र विचारों के सम्पूर्ण क्षेत्र से सम्बद्ध थे। और सबसे अधिक, आश्चर्य की बात यह थी कि जिस शैली में इन विचारों की अभिव्यक्ति हुई, वह स्वयं अपने में न केवल एक कलाकृति थी, बल्कि जिन प्रतीकों में कागज पर इनकी अवतारणा हुई, वे शब्दों के नाते अर्थ में स्वतन्त्र, कला के सूक्ष्म रूप थे। उनमें से प्रत्येक, संतुलन, लयात्मक गति और रेखाओं में सन्निहित एक सशक्त गुण को अभिव्यक्त करता था, यद्यपि इस अभिव्यक्ति को सही-सही समझना कठिन था। इनमें भी वही विशिष्टताएं थीं जो चित्रकला की विशेषताएं भी बन चुकी थीं।

हांग-चाओ ऐसा स्थान था जहां विचारों का यह विशाल संग्रह और उनसे सम्बन्धित प्रकाशन एकत्रित कर दिए गए थे। वहां के पुस्तकालयों में अत्यन्त प्राचीन काल से चले आ रहे दार्शनिक मनन का क्रम संग्रहीत था, जिन पर पीढ़ी दर-पीढ़ी आलोचक और रचनात्मक दोनों तरह के विद्वानों द्वारा विवेचना होती रही। ज्ञान के अभ्यास में गहन आनन्द और बुद्धि से परे के विषयों में ग्रहणीयता की भावना उस नगर के प्रमुख विद्वानों में विद्यमान थी।

यह कुछ तो इस काल्पनिक बातचीत के बारे में लिखा गया और वस्तुतः बहुत काल्पनिक है, क्योंकि हांग-चाओ के विद्वान पांडित्य, संस्कृति और विचारों के निर्बन्ध प्रयोग में पोलो से इतने अधिक आगे थे कि यदि वह किसी तरह से अपनी कला और साहित्य के विषय में सामान्य-से-सामान्य भी उल्लेख करते तो पोलो के लिए वह समझ सकना संभव न होता। यद्यपि जाहिर तौर पर पोलो जैसे साहसी, और कुछ बातों में मौलिक तथा सच्चे व्यक्ति की अवमानना करने की उनकी जरा भी इच्छा न होती, तथापि वे उसे सामायिक रुचि के किसी विषय पर अपना बुद्धिमत्तापूर्ण मत स्थिर करने में असमर्थ बना देने पर विवश हो जाते। मार्को पोलो के विषय में यह कहा गया है—"वह प्रत्येक वस्तु की ओर दृष्टिपात करता था और देखता कुछ न था।" पर वह किसी चीज़ को कैसे देख पाता जबकि अगले दो सौ वर्ष तक योरुप को अभी अपने गौरवकालीन विचारों का पुनः अन्वेषण नहीं करना था, और उसके भी तीन सौ वर्ष बाद (आठवीं शती में) योरुपीय प्रतिभा का हांग-चाओ के विद्वानों के विचारों से साम्य भाव नहीं स्थापित होना था।

यदि हम इस बात को पूरी तरह समझना चाहते हैं तो इस विषय को छोड़ने से पहले एक बात और कहनी है। मैंने पहले कहा है कि सुंग लोगों पर मंगोलों की

विजय मानवीय मन के लिए कोई तात्कालिक संकट नहीं था। किन्तु बाद में चीनी संस्कृति अपने को इस विजय के प्रभाव से अधिक समय तक निरपेक्ष न रख पाई। मंगोल शासन एक शती तक चला। मंगोल लोग यद्यपि ऊपरी तौर पर सभ्य थे किन्तु वे पोलो की तरह चीनी संस्कृति को नहीं समझते थे। उसी की तरह उन्होंने उसे एक किनारे रख दिया। महान् विद्वानों का सहयोग शासन के कार्यों में नहीं लिया जाता था। कार्य संचालन के लिए अधिकतम स्वतन्त्र और सुसंस्कृत विद्वानों के मत अब न लिए जाते थे। सभ्यता के अग्रणी लोग यद्यपि तंग नहीं किये जाते थे, पर उनकी कोई पूछ नहीं रही थी। इस उपेक्षा के परिणामस्वरूप उत्पन्न मनोवैज्ञानिक आघात, संस्कृति की रचनात्मक ज्योति को बुझाने के लिए काफी था। चीनी लोग यद्यपि अपनी संस्कृति के महान् रक्षक रहे किन्तु कोई नयी बात कहने को उनके पास कुछ भी न रहा। अतीत को वर्तमान की प्रेरणा बनाने के स्थान पर वे अतीत की ही नकल करने लगे। वे अद्‌भुत कारीगर, अथक संग्रहकर्त्ता, विविध दर्शनों के प्रतिभाशाली पंडित और सुरुचि के पारखी तो रहे किन्तु जिस स्तर पर उनके पूर्वजों ने जीवन का निरीक्षण करते हुए जो कुछ कहा था, उनके पास ऐसी सामयिक विवेचना नहीं रही थी और परिणामस्वरूप उनके विचार जहां के तहां स्थिर रहे। वे उन्हीं विचारों को बार-बार दुहराते और इससे वे जल्दी ऊब गए। मिंग नाम के स्थानीय राजवंश की पुर्नस्थापना भी उन्हें फिर से प्रेरणा देने में पर्याप्त न हुई। मिंग शासन ढाई-सौ बरस रहा और उसके बाद एक-दूसरे विदेशी वंश मंचू का शासन भी स्थापित हुआ। यह स्टेपी मैदान के अर्द्ध सभ्य बर्बरों द्वारा चीन की पूर्ण विजय थी। १२७० में हांग-चाओ के पतन के बाद उसकी तुलना में बौद्धिक महत्त्व की वैसी ही कोई घटना फिर नहीं घटी जो कि पहले अतीत में घट चुकी थी। यद्यपि सभ्यता बनी रही पर उसकी गति शिथिल हो गई थी और मौलिक चिन्तक भी थोड़े ही रह गये थे। योरुप से प्रगतिशील होने की बजाय चीन पिछड़ चला, हांग-चाओ जैसा शहर फिर न देखा जो संसार की बौद्धिकता का शीर्षस्थ नगर हो—और न ही किसी भावी योरुपनिवासी को पोलो जैसा अवसर फिर प्राप्त होना था। पोलो की आंखों ने एक विशाल सभ्यता का अन्तिम विकास देखा जो नील के पुजारियों की सभ्यता के अतिरिक्त किसी अन्य उल्लिखित सभ्यता के विकासशील जीवनकाल से अधिक चिरस्थायी रहा था। मौलिक बौद्धिकता के इस दृश्य के सामने हम पोलो को भौंचक्का-सा हाथ में नोट-बुक लिये देखते हैं। उसके सामने सार्वजनिक स्नानागारों, पिकनिक समूहों से अतिशय अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ और था, कुछ ऐसा, जो किसी योरुपवासी ने, न कभी पहले देखा था और न किसी के द्वारा उसके देखे जाने की संभावना थी, तथापि वह यह बताने

में पूर्णतः असफल रहा कि वह क्या था। हांग-चाओ मनोरम स्थान है। वह बार-बार लिखता है कि वह सबसे अधिक मनोरम और सबसे अधिक अद्भुत है। चाहे वह कितनी भी कोशिश करता, पर बार-बार वह यही कह पाता "अद्भुत! अद्भुत!!"

अध्याय अठारह

मंगोलो का जापान पर आक्रमण

एशिया के अपने महत्त्वाकांक्षी विवरण में अब मार्को हमें बहुत दूर ले गया है। हमारे पास भूमध्यसागर से पीकिंग के बीच के सारे देशों के संक्षिप्त विवरण हैं। मंगोलों की अपनी भूमि स्टेपी के पास के मैदान; चीन में महान मंगोल के दरबार का पीकिंग, और बर्मा के मार्ग में पड़ने वाले स्थान तथा स्वयं चीनियों के आश्चर्यजनक नगर हांग-चाओ के विवरण हमारे पास हैं। उसने जो सूचना दी है वह उसके समकालीन लोगों के लिए एशिया के ज्ञान-कोष के समान था, उस काल की मानसिक स्थिति में जो कुछ लिखा जा सकता था, उसे दृष्टि में रखते हुए, एक मध्यकालीन योरुपीय के नाते, इस महत्त्वपूर्ण विवरण की, और गहराई में जाना उसके लिए असंभव था। इसके अतिरिक्त उसकी एक और बहुत बड़ी असुविधा थी, कि उसके पास न तो कोई सही मानचित्र थे और न वह बना सकता था। जहां तक संभव हुआ वह यही कर सका कि उसने जिन स्थानों का वर्णन किया है उनको पड़ावों की परिधि में बांधने का प्रयत्न किया है। यह वर्णन और वह मानचित्र—जो माना जाता है कि उसने बनाया होगा और अब जो नहीं रहा—उसके पाठकों को एशिया की विशालता का कुछ आभास देते हैं। अब हम उसे योरुप के भौगोलिक ज्ञान के अन्धकार को कम करने के एक और प्रयत्न में संलग्न पाते हैं। वह हमें चीन सागर के द्वीपों के विषय में बता रहा है और समुद्री मार्ग से भारत की ओर ले जा रहा है जिसकी स्थल सीमाओं के विषय में वह पहले ही कह चुका है कि वे बर्मा के पार मिलती हैं।

वह पहले जिस महान् द्वीप का वर्णन करता है वह जापान जैसा ही है, पर योरुप को चीन की तरह उस द्वीप के नाम तक का भी तब आभास नहीं था और न ही उसके विषय में कोई अन्य ज्ञान था। उन्हें न जापान के नाम तक का कुछ पता था, और न ही उसके अस्तित्व तक का पता था। पोलो जितने दिन चीन में रहा उतने दिनों तक जापान उसके दिमाग पर बुरी तरह छाया रहा था, क्योंकि उसके प्रतापी अतुलनीय और बहुसम्मानित प्रभु, कुबलाई ने उसे आत्मसात् करने की कामना की थी पर वह बहुत हिंस्र रूप से खदेड़ दिया गया था। वास्तव में हमें जो कुछ ज्ञात हुआ वह यह है कि उस युग के सबसे महान् पुरुष द्वारा आक्रमण किए जाने पर जापान ने उसे पराजित कर दिया। इस विजय से फिर उसकी स्थिति ऐसी हो गयी कि अगले

सात सौ वर्षों तक भी उस पर आक्रमण न हुआ पर फिर वह ऐसे विस्फोट से पराजित हुआ जिसकी गूंज उसके तटों के परे दूर-दूर तक जा पहुंची और जो आज भी सारे संसार को त्रस्त करती है।

कुबलाई ने जापान पर दो चोटें कीं, एक १२७५ में, जिस वर्ष पोलो आया था। और एक १२८१ में। उसका नियम था कि अपनी सीमाओं पर स्थित सारे राजाओं से वह अपने को राजाधिराज स्वीकार करने को कहता। हम देख चुके हैं कि बर्मा के राजा के आगे किस प्रकार उसने यह मांग रखी और अस्वीकार किए जाने पर उसके हाथियों के होते हुए भी उस पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया। जापानियों ने भी उसकी इस मांग को अस्वीकार कर दिया। तब १२७५ में कुबलाई ने कोरिया से साढ़े चार-सौ जहाजों में तीस हजार आदमियों की एक छोटी टुकड़ी भेजी, जिसमें आधे सैनिक, मंगोल थे। जापानी द्वीप समूहों के दक्षिणतम द्वीप उत्तरी क्यू-श्यू में हकोज़ाकी के समुद्रतट पर भयंकर संग्राम हुआ। मंगोल, सैनिक स्थल पर छावनी स्थापित करने में असफल रहे और फिर जहाजों पर सवार हो गए। मौसम खराब हो गया था और वे जहाज़ हटा ले गए और उन्होंने आक्रमण छोड़ दिया।

कुबलाई बहुत खफा हुआ, पर वह मौके की ताक में रहा। निश्चय ही वह जापानी शासन के इस विचित्र रूप पर अवश्य परेशान हुआ होगा। जापान में सबसे ऊपर सम्राट् होता था, किन्तु उसका अधिकार पद का ही था, वास्तविक नहीं। लगभग सौ वर्ष पहले विख्यात सामन्तीय अभिजात वर्ग के प्रधान शोगन ने सभी अधिकार हथिया लिए थे, किन्तु सम्राट् नाममात्र के लिए बना रहने दिया गया था। कुछ काल के बाद शोगन के वंशजों ने अपने अधिकारों को अपने दो परामर्शदाताओं होजो राज्याधिकारियों के हाथों में खो दिया। उन्होंने शोगन को नाममात्र के लिए पदासीन रहने दिया। इस प्रकार सम्राट्, शोगन और होजो राज्याधिकारी सभी सत्ता पर आरूढ़ थे। सम्राट् प्रधान पादरी के रूप में कार्य सम्पन्न करता, और शोगन का उस वैध स्रोत के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं था, जिससे राज्याधिकारी अपनी शक्ति प्राप्त करते थे। इसके अतिरिक्त एक दूसरी उलझन थी और वह थी एक पदच्युत सम्राट् के बारे में जो पदस्थ सम्राट् के साथ ही प्रधान पादरी के कर्त्तव्यों में भाग लेता था। यह बहुत विचित्र स्थिति थी, किन्तु लगता था कि काम चलता जाता था। जब यह पता चला कि कुबलाई नया बेड़ा तैयार कर रहा है और आक्रमण के लिए पहले से बहुत बड़ी सेना बना रहा है, तो इन विभिन्न शासकों में से प्रत्येक ने राज्य की रक्षा के लिए अपने-अपने कर्त्तव्य पूरे किए। राज्याधिकारियों ने समुद्रतट के उस भाग की किलेबन्दी करवा दी जहां

पर यह अपेक्षा की जाती थी कि आक्रमण होगा, और सम्राट् (और भूतपूर्व सम्राट्) ने प्रार्थनाओं की व्यवस्था की। यह व्यवस्थित रूप से और बड़े पैमाने पर की गयीं विशेष प्रार्थनाएं दिन रात शिन्तो और बौद्ध मन्दिरों में की गयीं। राजवंशीय पूर्वजों को सम्राट् द्वारा हस्ताक्षर किए गए एक पत्र में स्मरण किया गया। पदच्युत सम्राट् का कार्य और भी अधिक विस्तृत था। उसने प्रज्ञापारमिताहृदय सूत्र की तीन लाख प्रतियां अपने अनुचरों को बांट दीं। उन्होंने उन्हें अपने मित्रों और सम्बन्धियों में वितरित कर दिया। इस प्रकार वह सम्राट् उसका तीन लाख बार पाठ करवा सका और साथ ही एक सामूहिक प्रार्थना करवा सका कि भगवान उसे सुनने पर विवश हो। होजो राज्याधिकारियों में से जब एक ने दैवी सहायता को प्रेरित करने के इस ढंग के विषय में सुना तो उस समय यद्यपि वह युद्ध की तैयारियों में व्यस्त था, पर फिर भी उसने पवित्र पद्यों को अपने रक्त से लिखा।

दीर्घकाल से अपेक्षित आक्रमण जून १२८१ में हुआ। कुबलाई ने दो बेड़े बनवाए थे। उनमें से एक पन्द्रह हजार मंगोल और कोरियावासियों को लेकर कोरिया से चला, दूसरा दक्षिणी चीन की ज़ेटन बन्दरगाह से एक लाख भाड़े के चीनी सैनिकों को लेकर चला। ये उत्तरी क्यू-श्यू के समुद्रतट पर वहां उतरे, जहां जापानियों ने किलेबन्दी कर रखी थी। मुख्य जापानी सेना सचमुच मौके पर न आ सकी, पर मंगोलों का सामना बंगो के ड्यूक के **समुराइयों** और क्यू-श्यू के उन अन्य सामन्तों से हो गया जो रखवाली पर थे। उनको आदेश थे कि मुख्य सेना के आने तक आक्रमणकारियों को रोक रखें और वस्तुतः उन्हें देश में दूर तक घुसने से रोक रखने में वे सफल हुए। किन्तु वे उन्हें उस स्थल से निकाल बाहर न कर सके, जहां वे उतरे थे। पचास दिनों के बाद तट पर एक तूफान आ गया और उसने मंगोलों के बेड़े के एक बड़े अंश को (कहा जाता है कि इसमें चार हजार जहाज थे) तहस-नहस कर डाला। इस प्रकार से अपनी आधारभूमि और छावनी से सम्बन्ध टूट जाने के कारण मंगोलों का साहस छूट गया। इसके अतिरिक्त, तब तक जापानी सेना भी आ पहुंची थी। उसके बाद के संग्राम में मंगोल पूर्णरूप से पराजित हो गए। यह कहा जाता है कि शेष दो सौ की संख्या में बेड़े के जहाज निकल भागे। जापानियों द्वारा जो लोग कैद किए गए वे या तो मार डाले गए या गुलाम बना लिए गए।

जापान जीतने की चेष्टा में कुबलाई को इस प्रकार की भयंकर भगदड़ का सामना करना पड़ा। आंधी के अतिरिक्त पराजय का यह कारण भी हो सकता है कि मंगोल उन चालों का उपयोग नहीं कर सके थे जो उन्हें अन्यत्र सदैव विजय दिलाया करती थीं। उनके धनुष तो उनके पास थे, किन्तु वे थोड़े ही घोड़े ला सके और चूंकि उनके

तीरंदाजों को मुख्यतः पैदल लड़ना पड़ा, वे गत्यात्मक संग्राम चलाने में असमर्थ रहे, जिसके विरुद्ध कोई ठीक बचाव न था।

अब पोलो इस सब के विषय में हमें क्या बताता है ? बहुत कम। किन्तु वह कम भी मोटे तौर पर सही है। जापानियों के बारे में वह कहता है कि वे श्वेत सभ्य लोग थे, उनका धर्म बौद्ध था, और उनका द्वीप चीन से पंद्रह सौ मील पर था। ज़ेटन की बन्दरगाह से उत्तरी क्यू-श्यू की ठीक-ठीक दूरी लगभग एक हज़ार मील है पर जलडमरूमध्य के पार कोरिया से मुश्किल एक सौ मील है। इस सम्बन्ध में यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि दो सौ वर्ष बाद कोलम्बस ने मार्को पोलो की पुस्तक पढ़ी और उसे एशिया का एक मानचित्र भी दिया गया जो कि तोस्कानेली नामक फ्लोरेंस के एक नक्शानवीस ने मूल पुस्तक पढ़ कर बनाया था। इस नक्शे में जापान और पुर्तगाल के बीच में सिवा समुद्र के प्रसार के और कुछ नहीं दिखाया गया था और समुद्र का विस्तार छः हज़ार मील दिया गया था। किन्तु जापान की दूरी उससे दूनी थी, जितनी कि कोलम्बस ने समझी और बीच में अमरीका पड़ता था। यह मनोरंजक है कि चीन में पोलो ने अमरीकी महाद्वीपों के अस्तित्व की अफ़वाह नहीं सुनी थी।

पोलो का विश्वास था कि जापानियों को वस्तुतः जितना धनी समझा जाता था वे उससे कहीं अधिक धनी थे। राजा के महल की छत सोने की बनी थी, उसके फर्श और खिड़कियां भी उसी धातु की थीं। (किन्तु उन प्रारंभिक दिनों में जिस किसी देश में आप न गए हों वह सदैव सोने से भरा समझा जाता था।) वह केवल दूसरे धावे और उसके दुर्भाग्यपूर्ण अन्त का वर्णन करता है। वह, आक्रमण से बचे हुए उन लोगों की कहानी लिखता है, जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। यह लोग एक छोटे द्वीप पर बस गए थे। वह यह भी कहता है कि कुछ जापानी सैनिकों ने अपने को अभेद्य बनाने के लिए मंत्रों का प्रयोग किया था। इस सम्बन्ध में पूर्व में सब जगह प्राचीन राजाओं की सबसे बड़ी कामना अभेद्यता का रहस्य खोज निकालने के बारे में रहती थी। सैनिकों के अपने ही तरीके रहते थे और वे अपनी खाल पर रहस्यमय संख्याओं के गुदने गुदाए रहते थे या किसी तरह के पत्थर या पत्थरों की बनावट की चीजें खाल के नीचे दबाए रहते थे। यह अन्धविश्वास आधुनिक युग तक भी चलता आ रहा है और बर्मा में मुझे भी इस प्रकार का अन्धविश्वास देखने को मिला है। इसकी ओर ध्यान आकर्षित कराने वाला पहला लेखक पोलो है। इस प्रकार उसके आक्रमण का संक्षिप्त वर्णन समाप्त होता है। उसका अन्तिम संक्षिप्त वाक्य उसकी शैली का नमूना है : "महान् खान के

आदमियों की पराजय की कहानी इस प्रकार घटित हुई जैसी कि मैंने आपको बताई ।" यद्यपि उसकी **पुस्तक** का एक उद्देश्य अपने उस स्वामी की महानता को घोषित करना था जिसकी उसने इतनी प्रशंसा की थी और उसी तरह से वह इस आक्रमण के दुर्भाग्य को दबा देने या उसे कम करके दिखाने में कहीं अधिक ईमानदार भी था ।

अध्याय उन्नीस

चीनी जहाज़

खाक़ान की नौ-सेना के अभियान के बाद पोलो उसकी मुख्य बन्दरगाह और वहाँ के जहाजों का वर्णन करता है। उन दिनों चीनियों ने समुद्री जहाज बना लिये थे और उन्हें वे भारत और फ़ारस की खाड़ी तक ले जाया करते थे। बाद की शताब्दियों में वे जावा से आगे शायद ही कभी गए हों और उन्होंने महान् नाविकों के रूप में अपनी ख्याति खो दी। बहुत शुरू से ही यहां तक कि रोम साम्राज्य काल से उन्हें लम्बी समुद्र-यात्रा पर जाने की आदत थी। फ़ारस का समुद्री मार्ग बीच में सुरक्षित रहा करता था। चूंकि फ़ारस-मेसोपोटामिया का क्षेत्र, मंगोल प्रदेश था, अतः मंगोलों के विश्व-व्यापी राज्य में जहाज द्वारा चीन से फ़ारस जाना केवल साम्राज्य के पूर्वीय भाग से पश्चिमी भाग तक जाने के समान था। वास्तव में स्थल मार्ग, जिस पर से होकर पोलो लोगों ने यात्रा की थी उतना ही सुरक्षित था, जितना कि समुद्री मार्ग। किन्तु हमें यह स्मरण कर लेना होगा कि बाहरी यात्रा के समय चीन के लिए जहाज पकड़ने का विचार कर वे फ़ारस की खाड़ी पर होमुर्ज गए और फिर उस ओर से न जाने का उन्होंने निश्चय किया, जिसके लिए मूल पाठ में कोई कारण नहीं दिए हैं पर सम्भवतः उन्होंने सुना हो कि समुद्री दस्यु फैले हुए थे।

यद्यपि मंगोल राज्य के प्रभाव से समुद्री-व्यापार का मार्ग पहले की स्थिति से जिसे बहुत अच्छा समझा जाता था, बहुत अधिक सुरक्षित हो गया था, तथापि मंगोल लोग स्वयं जहाज बनाने के विषय में कुछ भी न जानते थे। उन्होंने जापान पर जो आक्रमण किया वह भी कोरियाई और चीनी कारीगरों की दक्षता द्वारा ही संभव हो सकता था। वास्तव में जब तक कुबलाई ने हांग-चाओ में सुंग लोगों को पराजित न किया और दक्षिण में उस बन्दरगाह तक न गया जिसे पोलो ने ज़ेटन कहा है, तब तक उसे जहाज मरम्मत करने के स्थान, जहाज बनाने वालों, जहाज चलाने वालों और दिग्दर्शक यंत्र के उस समुद्री ज्ञान की उपलब्धि न हुई, जिसे चीनियों ने शताब्दियों से संचय किया था।

पोलो, हांग-चाओ से ज़ेटन तक के मार्ग का वर्णन करता है, क्योंकि उसने इस मार्ग से कई बार यात्रा की थी, पर यह निश्चित नहीं कि ज़ेटन चुआन-चाओ है

या चांग-चाग्रो। यह फूकियेन के दो पुराने बन्दरगाह हैं और एक-दूसरे से केवल साठ मील अलग हैं। इसलिए संभव है कि वह दोनों के विषय में सोच रहा था, क्योंकि वे एक-दूसरे के निकट थे और एक ही अधिकार सीमा में थे। ज़ेटन—क्योंकि मैं पोलो के ही दिए नाम के रूप का प्रयोग करूंगा—वह बन्दरगाह थी, जहां भारत और जावा के गरम मसाले तथा मोती और मूल्यवान रत्न उतारे जाते थे। यह विशाल व्यापार-केन्द्र था। पोलो के कथनानुसार योरुप के बाज़ार के लिए सिकन्दरिया जाने वाले काली मिर्च के हर जहाज़ी बेड़े पर सौ जहाज़ यहां आते थे। "यह संसार की दो सबसे बड़ी बन्दरगाहों में से एक है।" बाद की शती के यात्रियों ने इसे पृथ्वी की सबसे बड़ी बन्दरगाह कहा है। वहां फ़ारस, भारत, जावा और हिन्द चीन के व्यापारी दिखाई पड़ सकते थे, और भारतीय समुद्रों को जाने वाले चीनी जहाज़ यहां से चलते थे। यहां के जहाज़ी कारखानों ने कुबलाई के लिए चार हजार जहाज़ों के उस बेड़े का अधिकांश अंश यहीं बनाया था, जिसे लेकर उसकी सेना ने जापान के विरुद्ध आक्रमण किया था।

इसके बाद पोलो हमें इस बात का विवरण देता है कि बारहवीं शती में महासागर में चलने वाले चीनी जहाज़ किस तरह के थे। पहली बात, वे किसी योरुपीय जहाज़ से कहीं अधिक बड़े और सुविधाजनक थे। उनमें लगने वाली लकड़ी सरो की होती थी। डेक पर पचास या साठ केबिन होती थीं। प्रत्येक व्यापारी अपने लिए एक केबिन ले लेता जिससे समुद्र-यात्रा बहुत सुविधाजनक हो जाती। कहने में यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि उनमें ऐसे डिब्बे भी लगे रहते थे जिनमें पानी नहीं घुस सकता था। और इससे बड़ी दरार पड़ जाने पर भी जहाज़ को खतरा नहीं रहता था। पोलो कहता है कि भूखी ह्वेल मछली की चोट भी, दरार पड़ने का एक कारण हो सकता है और ऐसा प्रायः हो जाता था, क्योंकि अगर रात में चलते हुए जहाज़ पानी में लहरियां उत्पन्न करते हुए ह्वेल के समीप से निकलता तो ह्वेल चलते पानी की चमक देखकर सोचती कि उसके लिए कोई भोजन पहुंच गया है, और तेज़ी से बढ़कर जब वह जहाज़ को चोट पहुंचाती तो बहुधा जहाज़ के किसी भाग में छेद हो जाता।

सबसे बड़े जहाज़ में तीन सौ कर्मचारी और निजी केबिन के साठ व्यक्तियों—जो अपनी पत्नियां, बच्चे और नौकर भी ले जा सकते थे—के अतिरिक्त और भी बहुत से यात्री होते थे। इन जहाज़ों में एक पतवार और चार मस्तूल रहते थे। दो अतिरिक्त मस्तूल भी रहते थे कि यदि हवा के कारण आवश्यक हो तो उन्हें भी उठाया जा सके। जहाज़ का बाहरी खोल बहुत मजबूत रहता था। उसमें दोहरी

लकड़ी लोहे की कीलों से जड़ी रहती और उसकी संधि को बंद कर दिया जाता। पिच काम में नहीं आता था किन्तु चूना, सन और टंग के तेल की मिलावट से काम लिया जाता था। टंग तेल एक तरह की लाख होती थी। पोलो कहता है कि ये जहाज हमारे जहाजों से अधिक बोझ ढो लेते थे। पालों के सिवा उनमें डांड़ भी रहते थे, जो हवा न रहने पर काम आते। पार्श्वों में बचाने वाली नावें भी लगी रहती थीं। इसके सिवा वे एक मस्तूल वाली दो बड़ी नावों को घसीट कर ले चलते थे। इनका काम बड़े जहाजों की सुविधा का ध्यान रखना, मछली पकड़ना और सन्देश ले जाना और इसके सिवा अगर जहाज खड़े हो जाते या बन्दरगाह में ठहर जाते तो उन्हें भी घसीटना होता था। जब जहाज साल भर समुद्र में रहता और उसमें काई आदि लग जाती तो खोल खुरचा जाता और लकड़ी की एक तीसरी तह मौजूदा दो तहों पर जड़ दी जाती। खोल को बनाए रखने का यह तरीका छः तहों तक चलता रहता। पोलो निम्नोक्त विचित्र वर्णन देता है कि यात्रा से पहले किस प्रकार शकुन उठाए जाते थे। एक बड़ी पतंग-सी चीज उड़ाई जाती थी—यद्यपि कहने में अजीब लगता है पर फिर भी उसके साथ नशे में धुत एक आदमी बांध दिया जाता। अगर पतंग ठीक उठी तो शकुन अच्छा होता था, अगर न उठ सकी तो कोई भी जहाज पर न चढ़ता था।

चौदहवीं सदी के यात्री इसमें से अनेक वर्णनों की पुष्टि करते हैं। साधु जोडनिस जहाज के सौ केबिनों, दस पालों, लम्बाई और इधर-उधर में तीन तहों की बात कहते हैं। निकोलो कोन्ती, तीन तहों और ऐसे डिब्बे, जिनमें पानी नहीं घुस सकता था, उनकी चर्चा करता है। इब्नबतूता का कहना है कि जहाज पर अधिक से अधिक बारह पाल, और हजार मल्लाह होते, डांड़ों के लिए पन्द्रह आदमियों की जरूरत होती और इन्हें रस्सों से खींचा जाता। डेक से केबिन तक खुला रास्ता, बड़े-बड़े कमरे और केबिनें थीं, जहाज पर गमलों में सब्जियां भी उगायी जातीं थीं। (स्कर्वी रोग की रोकथाम का एक उपाय, जिसकी खोज योरप में कैप्टन कुक के समय तक न की जा सकी थी।)

इसी प्रकार के एक जहाज में मार्को ने दो बार भारत की यात्रा की। पहले, तब, जब वह कुबलाई द्वारा एक मिशन पर भेजा गया था, जिसका कारण आपको आगे पता चलेगा, और दूसरे, तब, जब उसे कुबलाई के चचेरे-पोते के पास जो फारस का अलखान था, उस की बहू को पहुंचाना था।

अध्याय बीस

मार्को पोलो की सुमात्रा को समुद्र-यात्रा

लगता है पोलो की पहली भारत समुद्र-यात्रा लगभग १२८४-८५ में ही हुई होगी। यदि उसने यह यात्रा १२८७ की मंगोल विजय के बाद की हो तो इस प्रकार उसके बर्मा जाने से पहले हुई होगी। एशिया के सारे देशों पर संक्षिप्त वृत्त जमा करने के लक्ष्य का अनुसरण करते हुए वह हमें रास्ते में पड़ने वाले विभिन्न राज्यों के विषय में कुछ बताता है। उसके शब्द यह हैं : "आप अब बड़े, छोटे और मझले भारत के गांवों, नगरों और प्रदेशों के विषय में कुछ सुनेंगे, जहां वह उस समय गया था जब वह महान् खान की सेवा में था। उन स्थानों पर उसने जो आश्चर्यजनक चीजें देखीं वह उनका विवरण देगा। वह उन दूसरे स्थानों को भी नहीं छोड़ेगा, जिनके विषय में उसने प्रसिद्ध और विश्वसनीय लोगों के मुंह से बातें सुनी थीं, और वह उनके बारे में भी बताएगा, जो उसे भारत के नाविकों के नक्शों पर दिखाया गया।"

उसके शब्दों—"बड़े, छोटे और मझले भारत"— में कोचीन-चीन से अफ्रीका तक के सारे देश सम्मिलित हैं। इस विस्तृत क्षेत्र का पूर्वी भाग उससे अधिक भारतीय था, जितना कि आज है। पिछले सहस्र वर्षों में हिन्दुओं ने निचले बर्मा और कोचीन-चीन के बीच के क्षेत्र में जो अब भी कभी-कभी सुदूर-भारत कहा जाता है, शान्तिपूर्वक अपनी सभ्यता का प्रसार किया था। हिन्दू धर्म, उसकी सामाजिक प्रथाओं और संस्कृत भाषा को समुद्र पार जाकर बसने वाले लोग अपने साथ ले गए थे। जहां जाकर यह लोग बसे वहां के मूलनिवासियों ने हिन्दू विचारों को अपना लिया। उनकी आद्य सभ्यता भी संभवतः उसी प्रकार की होगी जैसी कि भारत के मूल निवासियों की थी। शताब्दियां गुजरती गईं और एक के बाद एक कई हिन्दू राज्य स्थापित हुए जिनकी सभ्यता प्रायः उतनी ही उत्कृष्ट थी, जितनी कि उनके मूलदेश की। तेरहवीं शती में मुख्य राज्य थे, वर्तमान कोचिन-चीन में स्थित चम्पा, कम्बोडिया, जिसमें दक्षिणी स्याम सम्मिलित था, चिरविजय का राज्य जिसके उत्कर्ष काल में सुमात्रा और मलय सम्मिलित थ, तथा जावा का राज्य। प्रत्येक व्यक्ति ने कम्बोडिया में अंकोर मन्दिर की मूर्तियों के फोटोग्राफ़ देखे होंगे। चम्पा और जावा की कलाकृतियां उनसे कम

महत्त्व की नहीं थीं। वास्तव में इस महान् क्षेत्र में—जो कि इतना विशाल है, जितना कि योरुप—भारतीय तक्षण शिल्प की कुछ उत्कृष्ट कलाकृतियों का निर्माण हुआ था। हिन्दू परम्परानुयायी राज्यों के अनुपम कला समूह को अपनी सम्पूर्णता में देखने वाला पोलो पहला योरुपीय था, और संभवतः वह अन्तिम भी था। क्योंकि उसके तुरंत बाद ही इन राज्यों का पतन और विनाश आरंभ हो गया। उनका अस्तित्व बिल्कुल ही समाप्त हो गया था यहां तक कि जंगलों ने उनके मन्दिर और महलों को ऐसे आत्मसात् कर लिया कि उनकी स्मृति तक ही मिट गयी। केवल इधर बिल्कुल आधुनिक काल ही में उनके भग्नावशेष, अन्वेषकों के हाथ लगे हैं। उन्होंने पत्तियों के बीच मूर्तियों के दैत्याकार चेहरे और बरगद की जड़ों से अलग हुई दीवारों के खंडहरों पर उभरी हुई आकृतियां देखीं। पुरातत्व-विद् अब अपने इतिहास के सूत्रों को सम्बद्ध कर रहे हैं।

जैसा कि पोलो का अपना ढंग है, वह अधिक नहीं कहता, और न ही यह स्पष्ट होता है कि वह इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को समझ सका था कि भारत ने, न कि चीन ने, दोनों देशों के बीच में पड़ने वाले क्षेत्र को स्व-संस्कृति दान दिया। किन्तु वह जो कुछ कहता है, वह सदा की भांति, सही है और मुख्य तथ्यों के लघु संक्षेप के समान है।

वह आरंभ करता है, "भारत की समुद्री-यात्रा के लिए आप ज़ेटन में जहाज पर सवार हों और टोंगकिंग की खाड़ी के लिए पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम चलें। यह खाड़ी इतनी बड़ी है और इतने लोग इसमें रहते हैं कि लगता है कि यह अपने में ही एक दुनिया हो।" पंद्रह सौ मील की समुद्र-यात्रा के बाद, जिसमें दो महीने लगते हैं, आप चम्पा पहुंचते हैं। वह आगे कहता है, "चम्पा अपने हाथियों, अगरु-काष्ट जिससे सबसे अच्छी धूप बनती है, और विशेषतः शतरंज के मोहरों और दवातों में काम आने वाली आबनूस की लकड़ी के लिए प्रसिद्ध है।" उसकी यात्रा के समय एक युद्ध हो रहा था, क्योंकि कुबलाई ने चम्पा के राजा द्वारा अपने को राजाधिराज मनवाने के लिए विवश करने के हेतु एक सेना भेज दी थी। यद्यपि मंगोल लोग देश को जीतने में असफल रहे पर उन्होंने इतनी हानि पहुंचाई कि अन्त में राजा ने अधिराजत्व स्वीकार करना उचित समझा और वार्षिक कर स्वरूप बीस हाथी और बहुत-सा अगरुकाष्ट देना स्वीकार किया। इस प्रकार चम्पा बहुत दिनों तक स्वतंत्र हिन्दू राज्य रहने के बाद चीन के अधिराजत्व में आने और उसकी ओर ताकने को विवश हुआ।

चम्पा से पोलो ने अपनी यात्रा दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम की ओर जारी रखी और पुलो-कोंडोर आ पहुंचा। यह द्वीप मीकांग के मुहाने से हटकर है और चीन

के रास्ते में ठहरने का सुप्रसिद्ध स्थान है जहां बाद में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने एक अड्डा बनाया था। नदी के ऊपर की ओर कम्बोडिया और उसकी अद्भुत राजधानी अंकोर थी। किन्तु पोलो इस हिन्दू प्रथानुयायी राज्य के विषय में कुछ नहीं कहता।

उसका जहाज़ तब उसे पश्चिम की ओर जो अब स्याम की खाड़ी कहलाती है—पार ले गया, और वह मलय प्रायद्वीप में उस स्थान पर आ पहुंचा, जिसे वह लोकाक कहता है और जो संभवतः लिगोर के पड़ोस में था। लिगोर एक बड़ा पुराना नगर था, जिसकी भूतकालीन परम्पराएं हिन्दू थीं। लिगोर के रूप में उसने एक स्वतंत्र राज्य देखा जिसकी अपनी भाषा थी। उसे यह पता नहीं कि यह कौन लोग थे, किन्तु हमारे विचार में वे शान थे। पहले के एक अध्याय में यह वर्णन था कि १२५३ में जब मंगोलों ने युन्नान में शान राज्य को पराजित किया तो शान लोगों ने संभवतः अपनी जाति के कुछ उन लोगों का अनुसरण करते हुए दक्षिण की ओर हटना शुरू कर दिया था जो पहले से ही धीरे-धीरे उस जगह पर पहुंच गए थे जो अब उत्तरी स्याम कहलाता है। तब से यह विदेशगमन धीरे-धीरे मीनाम की घाटी की ओर चलता रहा, और ऐसे लगता है कि पोलो की यात्रा के समय शान लोग मलय प्रायःद्वीप के उत्तरी भाग तक पहुंच चुके थे। मीनाम की घाटी और उत्तरी मलय पर अधिकार कर लेने के बाद वे कम्बोडिया के राज्य और चिरविजय के उत्तरी भाग की ओर भी बढ़ रहे थे। क्रमशः उनका प्रभाव बढ़ा और उन्होंने कम्बोडिया जीत लिया तथा स्याम राज्य की स्थापना कर दी। अतः पोलो ने जो देखा वह प्राचीन हिन्दू परम्परा का ह्रास था और उस हिन्द-चीन के अस्तित्व का प्रादुर्भाव हो रहा था, जिसे अब हम जानते हैं। वह इसे अनुभव नहीं कर सका था और वास्तव में कर भी नहीं सकता था, किन्तु जो संक्षिप्त नोट उसने तैयार किए उन्होंने आधुनिक इतिहासकारों को इस परिवर्तन के युग का स्पष्ट विवरण निर्मित करने में सहायता दी है।

लिगोर प्रदेश छोड़ कर पोलो मलय प्रायद्वीप के पूर्वी तट की ओर चलते हुए बिन्तांग द्वीप पहुंचा जो जलडमरूमध्य में सिंगापुर के सामने है। वह कहता है कि बिन्तांग बड़ी जंगली जगह है जहां सुगंधित वृक्षों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यहां भी वह एक महत्त्वपूर्ण घटना के निकट था यद्यपि वह उसकी चर्चा नहीं करता। कुछ वर्ष पहले जावा निवासियों ने सिंगापुर पर अधिकार कर लिया था। यह हिन्दू प्रथानुयायी चिरविजय राज्य का पुराना नगर था। चूंकि चिरविजय राज्य में सुमात्रा ही नहीं, मलय भी सम्मिलित था, उसका अधिकार सिंगापुर जलडमरूमध्य और उससे होने वाले प्राचीन व्यापारिक मार्ग पर था। जब पोलो चिर-

विजय पहुंचा तो उसका विघटन आरम्भ हो चुका था। उस पर दो ओर से आक्रमण हुआ। जैसा कि मैं कह चुका हूं, मलय प्रायद्वीप में शान लोग बढ़ आए थे और कुछ भागों को जीत चुके थे। पूर्व में जावा के लोगों ने प्रतिक्रमण किया और उनके सिंगापुर तथा सुमात्रा के पूर्वी भाग को जीत लेने के बाद उन्होंने अपने को इस महान् व्यापारिक मार्ग का स्वामी बना लिया था। पोलो जावा नहीं गया, किन्तु वह उसकी चर्चा करता है और उसकी स्थिति बताता है। इसके कुछ ही दिनों बाद १२९३ में कुबलाई ने जावा के राजा को अधीन सामन्तों की भांति शुल्क भेजने के लिए विवश करने की उसी प्रकार चेष्टा की जिस प्रकार उसने चम्पा, बर्मा और जापान से कर मांगते समय की थी। किन्तु वह असफल रहा और जावा कभी चीन के अधिराजत्व में नहीं आया। जिस समय डच लोगों ने इस पर अधिकार किया था उस समय वह एक सहस्राब्दी से भी ज्यादा समय तक स्वतंत्र राज्य रह चुका था। यह एक तथ्य है जो हमें यह समझने में सहायता देता है कि उसने आज फिर क्यों स्वाधीनता की मांग की है।

बिन्तांग द्वीप छोड़ कर पोलो सिंगापुर से विभाजित होने वाले जलडमरूमध्य से होकर चला, जो उसके कथनानुसार दो फ़ैदम से अधिक गहरा नहीं था। चूंकि उसका जहाज लगभग इतना ही गहरा था, अतः पेंदा साफ रखने के लिए उसे पतवार उठा लेनी पड़ी। अब उत्तर-पश्चिम की ओर मुड़ते हुए उसने मुख्य जलडमरूमध्य का लम्बा मार्ग आरंभ किया, जिससे उसके जहाज से बायीं ओर सुमात्रा द्वीप पड़ता था। चिरविजय साम्राज्य अपने पतन के बाद बहुत से छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया था। उत्तरी छोर के निकट इनमें से एक स्थान के विषय में जो बाद में अचिन राज्य का भाग बन गया था, वह एक महत्त्वपूर्ण बात लिखता है : "बहुत से अरबी व्यापारियों ने जो वहां अपने जहाज लेकर प्रायः आया करते थे और जो मुहम्मद के धर्म के पैरोकार थे, इन लोगों का धर्मपरिवर्तन मुहम्मद के अप्रिय धर्म में कर दिया था, पर ये नगर के लोग थे, किन्तु पहाड़ के लोग, जिनका कोई धर्म नहीं है, जानवरों की तरह" रहते थे। इसके अर्थ हैं कि १२८५ से पहले ही इस्लाम धर्म उत्तरी सुमात्रा में घर कर चुका था और इसका तेजी से प्रसार होने वाला था। संसार के उस भाग में अचिन के सबसे अधिक शक्तिशाली समुद्री राज्य होने की संभावना थी। सुमात्रा, जावा, और सारा-का-सारा मलय इस्लामी धर्म अपनाने जा रहा था, और जावा के उत्तरी छोर से हटकर बाली के छोटे से द्वीप के अतिरिक्त अन्यत्र सभी जगह हिन्दू संस्कृति का लोप हो जाने वाला था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्ययुगीन योरुपीय होने की प्रतिकूल स्थिति के बावजूद भी पोलो किस तरह सुदूर भारत के दृश्य के मूल तत्वों का निर्देश करने में समर्थ था। उसने कहा है कि भारत की सभ्यता भारतीय थी, और खाकान उसे चीनी परिधि में खींचना चाहता था, कि शान लोगों ने उत्तर से बढ़ते हुए उसे राजनीतिक दृष्टि से विच्छिन्न करना आरंभ कर दिया। उसके पश्चिम तट और अरब से समुद्री मार्ग द्वारा आने वाले मुसलमानों ने उसके धार्मिक और सांस्कृतिक संगठन को त्रस्त करना प्रारम्भ कर दिया था। इन बातों के घटित होने से पहले वह वहां गया था, यद्यपि उनके आसार नजर आने शुरू हो गए थे। हिन्दू धर्म अवसान की ओर अग्रसर हो रहा था और उसका स्थान वह संस्कृति ग्रहण कर रही थी, जिसका सम्बन्ध हम हिन्द-चीन से बताते हैं।

उस समय की अवस्था पर इन सामान्य पर्यवेक्षणों के अतिरिक्त पोलो हमारे समक्ष कई विलक्षण बातें रखता है। इससे पहले वह दक्षिण में सिंगापुर के जलडमरूमध्य की उस दूरी तक कभी नहीं गया था, जो कि भूमध्यरेखा के एक अंश के अन्दर है। अतः वह लिखता है "कि रात्रि का आकाश आश्चर्यजनक था। उत्तरी ध्रुव जिसे सामान्य भाषा में ध्रुव नक्षत्र कहा जाता है, बिल्कुल दिखायी नहीं पड़ता। और मैं फिर कहता हूं कि सप्तर्षि के तारे, अर्थात् वे जिन्हें सामान्य भाषा में हल का डंडा कहते हैं, थोड़े बहुत भी नहीं दिखाई देते।" आरंभिक काल के यात्रियों को ध्रुव नक्षत्र न दिखायी पड़ना बड़ा भयप्रद लगता था। उन्हें ऐसे लगता कि वे खो गए हैं। दुनिया के अन्तिम छोर तक पहुंचने के बारे में मध्ययुगीन कहानियां थीं जहां स्वर्ग स्थित था और एक विशाल पर्वत था जो स्वर्ग तक उठा था। ऐसा माना जाता था कि सिकन्दर महान् ने दुनिया की सीमा पर एक स्तंभ गाड़ दिया था। यहां तक कहा जाता था कि कितनी तेजस्वी शक्ति से उसने स्वर्ग से कर मांगा था। इन कहानियों के मन में रहते ध्रुव नक्षत्र दिखायी न पड़ना कोई हंसी की बात न थी, क्योंकि संभव है आप पृथ्वी के अन्तिम छोर पर स्थित अन्तिम खाड़ी के समीप हों।

सुमात्रा के उत्तरी छोर के समीप पोलो उन राजाओं में से एक की राजधानी पर उतरा जो चिरविजय के मरणप्राय: राजाधिराजत्व से अलग होकर स्वाधीन राजा बन गया था। उस स्थान का सुमाद्र, भारतीय नाम था और वह उस स्थान के समीप था जहां जलडमरूमध्य महासागर में जा मिलता है और जिसे बंगाल की खाड़ी कहते हैं। वह वहां पांच महीने रहा क्योंकि उन दिनों दक्षिणी, पश्चिमी मौनसूनी हवाएं चल रही थीं और उनके सामने से होकर लंका तक सहस्र मील की

यात्रा करना असंभव होता। यहां पोलो पहली बात बताता है कि उसके साथ बहुत से आदमी और अनेक जहाज थे। वह लिखता है : "हम लगभग दो हजार आदमियों के साथ अपने जहाजों से धरती पर उतरे, और वहां पर शहतीरों या लट्ठों के हमने पांच मीनार या दुर्ग बनाए। हमने देखा यहां मकान बनाने की लकड़ी बहुत थी, इन दुर्गों में हम अपने आदमियों के साथ पांच महीने से अधिकांश समय तक वहीं रहे। अपने रहने की जगह के चारों ओर पशुओं और पशुतुल्य उन बुरे मनुष्यों के डर से जो बड़े आराम से आदमियों को पकड़ लेते और खा जाते थे, बड़ी-बड़ी खाइयां खुदवायीं जिनके दोनों सिरे समुद्र में समाप्त होते थे।"

नरभक्षी लोग भीतरी भागों में संभवत: बातस के पठार और उसके उत्तर-पश्चिम के पहाड़ों में रहते थे, और पूर्व के दूसरे पहाड़ी लोगों की तरह अपनी चीजों के विनिमय में भोजन खरीदने बाजार को आया करते थे। वे अन्धानुयायी नरभक्षी थे, जो केवल दो तरह के लोगों को या तो अपने निकट के सम्बन्धियों या विदेशियों को, खाते थे। चूंकि पोलो और उसके आदमी विदेशी थे, अतः उन्हें सावधानी बरतनी पड़ी। बन्दरगाहों और छोटी राजधानियों के अतिरिक्त—जहां के लोग हिन्दू धर्मानुयायी हो गए थे—उत्तरी सुमात्रा के जंगली रहने का यह चित्र यथार्थ है और शताब्दियों बाद तक यथार्थ रहा। इस बड़े द्वीप के मध्यवर्ती भाग अब तक अत्यन्त आदिम अवस्था में हैं, क्योंकि डच लोग अभी तक उन्हें सभ्य बनाने में पूर्णरूप से समर्थ नहीं हुए।

यहीं पर पोलो ने पहली बार ताड़ का पेड़ देखा। एशिया में यह बड़ा सामान्य पेड़ है, किन्तु इसके उपयोग इतने चमत्कारपूर्ण थे कि उसे डर था कि अगर वह उनका वर्णन करेगा तो उसके पश्चिमी देश के पाठक इस विवरण पर विश्वास नहीं करेंगे। वह कहता है, "आप बिल्कुल सच समझें उनके यहां एक तरह का पेड़ होता है—जिसकी शाखा को, जब उन्हें शराब की इच्छा होती है काट डालते हैं, और उन शाखों से पानी बहने लगता है, वह पानी ही शराब होती है।" और वह आगे के विवरण में कहता है कि ताड़ी किस तरह बर्तनों में जमा की जाती है। यह वास्तव में शराब जैसी ही लगती है और इतनी स्वाद होती है, जैसी घर की बनी सफ़ेद शराब। उस युग के वेनिसवासियों का, पेड़ से अपनी इच्छानुसार शराब निकाल लेने का ख्याल, परियों की कहानी की तरह आनन्ददायक लगता था। फिर भी बेचारा मार्को पोलो सावधानी से बिना किसी अतिशयोक्ति के शीतोष्ण प्रदेश के सबसे सामान्य दृश्यों में से एक का वर्णन कर रहा था। वह नारियल का भी वर्णन करता है। योरुपवासियों ने नारियल कभी नहीं देखे

थे, यहां तक कि आज भी थोड़े ही योरुपीय लोगों ने हरी घनी जटाओं से ढके और स्वच्छ पानी से भरे ताज़े नारियल देखे होंगे। दूधिया पानी वाले नहीं, क्योंकि जब ये नारियल पश्चिम को भेजे जाते हैं तो वहां पहुंचते-पहुंचते उनका सफ़ेद पानी दूधिया बन जाता है।

सुमात्रा के इस भाग में पोलो को एक सींग वाला घोड़ा देखने को मिला। वह कहता है, "हम लोग जैसी कल्पना करते हैं उनसे यह पशु बिल्कुल भिन्न है।" और वह उसको ऐसे पशु-सा बताता है, जिसके बाल भैंसे के से हों, पैर हाथी के से, सिर जंगली सुअर का-सा और जिसके मस्तक के बीच में एक सींग हो। यह गैंडे का बहुत सही वर्णन है, क्योंकि यही पशु था, जिससे वस्तुतः उसका अभिप्रायः था। सुमात्रा का गैंडा छोटा होता है और उसके शरीर पर भैंसे की तरह विरले बाल होते हैं, किन्तु इसके दो सींग होते हैं, एक उसके माथे पर और एक नाक पर। पोलो से थोड़ी गलती हो गई, क्योंकि यह वर्णन एक सिरवाले घोड़े की किंवदन्ती को ध्वस्त कर देता है। किन्तु उसने व्यर्थ ही लिखा। जनसाधारण ने फिर भी एक सिर वाले घोड़े, उमेठे हुए सींग वाले घोड़े—से हिरन का विश्वास करना न छोड़ा। यात्री लोग एक सिर वाले घोड़े के सींग लाते रहे जो वास्तव में नर ह्वेल के दांत होते थे। निश्चय ही स्टुअर्ट राजाओं के समय तक यह विश्वास चलता रहा और अब न्यू कॉलेज, आक्सफ़ोर्ड में सुरक्षित एक सींग के घोड़े का सींग, जो कि उस समय भेंट किया गया था, नरह्वेल का दांत है। समझा जाता है कि एक सींग का घोड़ा सुगंधि का बहुत ही शौकीन होता है, और यह विश्वास किया जाता था कि अच्छी तरह से अपने पर सुगंधि छिड़के हुए कोई भी महिला उसे अपनी गोद में पकड़ सकती थी। वास्तव में यही बात मध्यकालीन कढ़े हुए कपड़ों में सबसे प्रसिद्ध "महिला और एक सींग का घोड़ा" वाले कपड़े में भी देखी जा सकती है, जिसमें एक सींग का घोड़ा हिरन के छौने-सा पालतू बन जाता है। पोलो कहता है, आप ज़रा कल्पना करें कि गैंडा महिला की गोद में से पकड़ा गया हो।

अब वह हमें दूसरी विचित्र बात बताता है। लगता है उस काल में पूर्वी भागों से यात्री बौनों के रक्षित शरीरों को लाते थे, जिनकी बिक्री अद्भुत कलावस्तु के समान अच्छी हो जाती थी। पोलो कहता है कि ये सभी चीज़ें होती थीं, उसके कथनानुसार सुमात्रा में बौनों की तरह बन्दर होते थे, जो थोड़ी-सी मेहनत से मनुष्य की तरह ही दिखायी पड़ने वाले बनाए जा सकते थे? (शायद वह गिब्बन बन्दर की बात कह रहा हो।) इस तरह का बन्दर मार डाला जाता था, दवा से उसके बाल अलग कर दिए जाते थे, कुछ बालों को उसकी दाढ़ी की तरह लगा

दिया जाता था और उसकी साफ चमड़ी को इन्सानी रंग का रंग दिया जाता था। "पैर, हाथ और अन्य अंग जो बिल्कुल मानव अंगों के समान नहीं होते थे उन्हें वे खींच कर और कम करके मानव अंगों के समान ही बना देते थे।" सुखाने तथा केसर और कपूर का लेप करने के बाद ये शरीर सावधानी से रखे जाते। "इन मरे हुए बौने आदमियों को लाने की बात बहुत बड़ा झूठ और धोखा है—क्योंकि सारे भारत में और अन्य दूसरी जंगली जगहों पर जहां भी मैं गया मेरा विश्वास है कि वहां इतने छोटे आदमी कहीं नहीं दिखायी पड़े, और न मैंने कभी किसी को कहते सुना कि कहीं इतने छोटे आदमी हैं।" उस समय किसी ने अफ्रीका के भू-मध्यरेखा के जंगलों के पिग्मियों के विषय में नहीं सुना था, किन्तु पिग्मी भी गिबन जितने छोटे नहीं होते।

अन्तिम विचित्रता आटे का पेड़ है। पेड़ से शराब मिलनी ही काफी विचित्र बात थी किन्तु ऐसे पेड़ जो आटा दें!

ऐसा देश जहां ऐसे दोनों पेड़ पाए जाएं, वहां तो आदमी भले ही आलसी बना रहे और उसे आवश्यक चीज़ें भी मिल जायं। पोलो कहता है कि यह एक पुराना बड़ा पेड़ था। इसके तने के अन्दर आटा रहता था। उसे पाने के लिए पेड़ को काट कर फाड़ देना होता है। पोले तने में ढेरों आटा रहता है। इसे पानी की नांदों में भिगोने से अशुद्ध चीज़ें तैर आती हैं और आटा तले में बैठ जाता है। तब उसकी रोटियां बना ली जाती हैं, और मैं—जिसने कि यह सब देखा—आपसे बताता हूं, कि हम लोगों ने खुद उसकी परीक्षा की, क्योंकि हम लोगों ने अक्सर वह आटा खाया। और इसमें से कुछ आटा मैं अपने साथ वेनिस ले गया। और उस आटे की रोटी जौ की रोटी-सी और कुछ वैसे ही स्वाद की होती है।" पाठक को अब अनु-मान करने का प्रयत्न करना चाहिए कि पोलो किस चीज के विषय में बात कर रहा है। वहां एक पेड़ है जिसके अन्दर आटा होता है। आप उसे खा सकते हैं और आज भी अक्सर ऐसा करते हैं। किन्तु साधारणतः हलवे के रूप में। सागू-दाना? हां सागूदाना, इसी तरह तो उत्पन्न होता है। किन्तु हमें यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि पोलो के लौटने के बाद योरुपीय लोग सागूदाने का हलुआ खाने लगे थे। क्योंकि अगले तीन या चार सौ बरस तक भी पेड़ का यह आटा पूर्व से बाहर न भेजा जा सका था।

अध्याय इक्कीस

अण्डेमान द्वीपसमूह

अब हम यह कल्पना कर लें, कि मौनसून समाप्त हो चुकी थी, और पोलो ने समुद्री छावनी के दो हज़ार आदमियों को सामान बांधने और जहाज़ को चलाने की आज्ञा दी। इतने बड़े दल के साथ उसके आठ या दस जहाज़ तो होंगे ही। फिर इस इतने महत्त्वपूर्ण अभियान का वास्तविक उद्देश्य क्या रहा होगा, जिसके लिए बेड़े की आवश्यकता रही हो? शायद शीघ्र ही हम कुछ अनुमान लगा सकेंगे।

अचिन के बाद जलडमरूमध्य से बाहर निकल कर बेड़ा बंगाल की खाड़ी में पहुंचा। उसने फौरन लंका की ओर रुख नहीं किया, बल्कि डेढ़-सौ मील की दूरी पर स्थित निकोबार द्वीपसमूह की ओर चल पड़ा। इस द्वीपसमूह और अंडेमान में जो द्वीपसमूहों के एक ही क्रम में थे—आदिम एशियाई रहते थे और अभी भी रहते हैं। ये लोग हिन्द-चीन के उन मूलनिवासियों से अधिक आदिम थे, जिन्होंने हिन्दू प्रवासियों द्वारा लायी गई सभ्यता को ग्रहण किया और उसका विकास किया। ये द्वीपसमूह, भारत—हिन्द-चीन के मार्ग पर हैं। हज़ारों बरसों से इन द्वीपवासियों के द्वार से होकर न केवल सूती कपड़े, सोने और जवाहरातों का व्यापार होता रहा, बल्कि धर्म, दर्शन, साहित्य और कला भी उनके सामने से दूसरे देशों में जाते रहे। किन्तु उन्हें ज़रा भी, न तो सभ्यता और न अलंकारों ने ही आकर्षित किया। वे लोग विशिष्ट जाति के थे, जिसने अपने ही ढंग के विचारों और व्यवहारों का विकास किया था। यह जाति आदिम तो निश्चय ही थी, किन्तु इसके पास सभ्यता के नाम पर जो कुछ था, वह बिल्कुल पूर्ण था, इसलिए अपना और आगे विकास करने में वे अक्षम थे। हिन्दू सभ्यता से वे जो आध्यात्मिक और भौतिक लाभ उठा सकते थे, उसका उन्होंने परित्याग किया। भारत और चीन के मूल निवासियों के विपरीत वे इन चीज़ों को उन्नत नहीं मानते थे। जब पोलो ने उन लोगों को देखा तो उसे ऐसा लगा जैसे वे पाषाण युग के हों। आजकल यद्यपि वे कम भयानक हैं पर उनकी अब अवनति हो रही है और वे अपने आचार-विचार में उतने ही कट्टर हैं जितने कि आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी, जिनसे कि वे सम्बन्धित हैं। वास्तव में, पोलो की दृष्टि में—जो कि आधुनिक नृतत्वशास्त्रियों के दृष्टिकोण की कल्पना नहीं कर सकता था—

वे लोग भयानक जंगली थे। उनसे कहीं गए गुजरे जो उसने पहले देख रखे थे। क्योंकि युन्नान की जातियों या सुमात्रा के आदिम-मलय-नरभक्षियों के बीच अपनी यात्राओं में भी उसे ऐसे आदिम मनुष्य नहीं मिले थे। वह उनके विषय में लिखता है: "उनके कोई राजा या सरदार नहीं होता और वे बिल्कुल जंगली पशुओं की तरह रहते हैं। ··आदमी और औरतें दोनों ही दुनिया की किसी भी चीज से अपने को नहीं ढकते··उनके घर नहीं होता··न कानून न कायदा·· वे बड़े क्रूर लोग होते हैं और बड़े चाव से जिन किन्हीं आदमियों को पकड़ पायें उन्हें कच्चा खा जाते हैं, बशर्ते कि वे उनके अपने ही लोग न हों। और वह एक विचित्र विवरण जोड़ता है कि वे भारतीय व्यापारियों से तीन गज रंगीन कपड़े का सौदा करते थे, पहनने के लिए नहीं, बल्कि पद या समृद्धि के चिह्न स्वरूप वह उसे झंडा बनाकर डंडे पर फहराया करते थे। उनका रूप पोलो को इतना घृणित लगा था कि उसके कथनानुसार उनके उलझे जंगली बालों, बड़े दांतों और चपटी नाकों से उनके चेहरे बड़े कुत्तों (मैस्टिफ) के सिर की तरह लगते थे। पर वह अपने शुष्क उद्देश्यात्मक ढंग से लिखता है कि यद्यपि देखने में वे कुत्तों की तरह लगते थे पर वे चावल और ज्वार, बाजरा की खेती करते थे, दूध (गाय या भैंस का) पीते थे और तरह-तरह का मांस खाते थे। वास्तव में उन्हें खेती का भी ज्ञान था और वे पशु पालते थे; अपना भोजन स्वयं पकाते थे। इसके अतिरिक्त, वह लिखता है, कि वे मसाले पैदा करते थे, उदाहरणतः लौंग आदि। और उनके जंगल सैपन के समान मूल्यवान कठोर लकड़ी के वृक्षों से भरे पड़े थे, जिससे बहुत अच्छा लाल रंग निकलता है, और जो ब्राजील का पेड़ भी कहा जाता है। यह वृक्ष शताब्दियों बाद दक्षिणी अमरीका में पाया गया था और इसी वृक्ष के नाम पर उस देश का नाम भी ब्राजील पड़ गया, जिसे स्पेन-निवासी ब्राजील की भूमि कहते थे।

इस प्रकार वस्तुतः जो विवरण हमें मिलता है वह अण्डेमान और निकोबार द्वीपसमूहों के निवासियों का रेखाचित्र है। यद्यपि वे भयानक थे और नंगे रहते थे तथा उनके रहने के ढंग बड़े अप्रिय थे, किन्तु उनके जीवनक्रम का विकास ऐसा सुचारु था जो उन्हें इस योग्य बनाता कि वे अपने झंडों को फहराते हुए और अपनी मसालेदार कढ़ी को खाते हुए बड़े आराम के साथ, और अपने देवताओं को (क्योंकि पोलो उन्हें मूर्तियां देता है) पूजते हुए, बड़ा धार्मिकतापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। खा डाले जाने की उनकी वैदेशिक नीति वहां पर बाहर से आकर बसने वालों को हतोत्साहित करती थी। यह बुद्धिमत्तापूर्ण नीति थी,

क्योंकि वे सहज प्रवृत्ति से समझते थे, कि उन्होंने जिस ढंग का विकास किया है वह उनके लिए सबसे अच्छा है और अगर उसमें वहां बाहर से आने वालों के कारण कुछ रद्दोबदल हुई तो चाहे वह धार्मिक, सामाजिक या आर्थिक हो, वे अपने को सन्तोषजनक रूप से कभी भी उस परिवर्तन के अनुकूल न ढाल सकेंगे। वे बीमार पड़ जाएंगे, दुखी हो जाएंगे, उनका नाश हो जायेगा और वे मिट जाएंगे। इस विचार के पीछे उनका सहस्राब्दियों का अनुभव था। यह सही प्रमाणित भी हो चुका था क्योंकि यद्यपि वे हिन्दू सभ्यता के खतरों को दूर भगाते रहे और पोलो के बाद की शताब्दियों में इस्लामी सभ्यता को भी अपने से दूर रखते रहे पर अंत में उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य में मिला दिया गया। इस प्रकार से उन्हें विदेशियों को खा डालने से रोका गया तथा उन्हें प्रोत्साहन दिया गया कि वे कुछ न कुछ पहनें। इस प्रकार के विदेशी प्रभावों से उन्हें बड़ा आघात लगा, जब उनसे कहा गया कि उनकी सबसे पवित्र आस्थाएं निकम्मी हैं, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे आस्थाएं अब मृतप्राय: हैं। मैं एक बार अण्डेमान द्वीप-समूहों का डिप्टी कमिश्नर नियुक्त किया गया था, पर मैंने पदभार नहीं संभाला और अक्सर मुझे आश्चर्य होता है कि अगर मैं संभाल लेता तो कैसे काम चलाता।

अध्याय बाईस

दांत की खोज

अण्डेमान-निकोबार द्वीप समूह को पीछे छोड़ने के बाद उत्तर-पश्चिमी मौन-सून का सामना करते हुए पोलो उस विशाल खाड़ी के पार हज़ारों मील दूर लंका की ओर चल पड़ा। उसकी इस दूरस्थ यात्रा के लिए इस प्रश्न का उत्तर देना जरूरी हो जाता है कि कुबलाई ने उसे इस यात्रा पर क्यों भेजा था। हम जानते हैं कि कुबलाई अपनी सीमाओं के पार दूसरे देशों के धर्म, शासन, धन-दौलत और शस्त्रास्त्र के विषय में जानने को उत्सुक था। संभवतः यह बौद्धिक उत्सुकता थी, या वह अभी तक अपने पितामह की कामना, जो कि समस्त संसार को जीतने की थी मन में रखे था। क्या यह बात, कि पोलो सूर्यास्त के प्रदेशों का भेद लेने भेजा गया था? किन्तु सामान्यतः भेदिया दो हज़ार आदमियों के बेड़े के साथ नहीं भेजा जाता। या संभवतः वह ऐसा राजदूत था, जिसे पूर्व-पश्चिम के व्यापारिक मार्गों पर के राजाओं के साथ व्यापारिक या राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार दिया गया हो? किन्तु खानों का खान इस ढंग से राजनयिक कार्य नहीं किया करता था। जैसा हमने प्रायः देखा, उसकी कार्यविधि सहसा राजस्व मांगने और अधिराजत्व स्वीकार कराने का सन्देश भेजने से सम्बन्धित थी। यदि यह अस्वीकार किए जाते तो वह निश्चय ही आक्रमण करता था। तथापि, यह विवादास्पद है कि भारत के समान अपनी सीमा से दूरस्थ राज्यों से व्यापार बढ़ाने के लिए वह मिशन भेज सकता था। किन्तु व्यापार के अतिरिक्त उसके अन्य उद्देश्य भी थे, जिनमें मिशन का प्रयोजन रहता। उदाहरणतः यह पहले बताया जा चुका है कि उसने दोनों ज्येष्ठ पोलों को राज-दूतों के रूप में, पोप के पास पादरी तथा पवित्र समाधि के दीपक का तेल स्मृति-चिह्न के रूप में भेजने की प्रार्थना के साथ भेजा था। उसे स्मृति-चिह्न तो मिल गया किन्तु पादरी नहीं मिले। हमने देखा कि मंगोलों को शिक्षा देने के लिए जब वह ईसाई पादरी प्राप्त करने में असफल रहा, अथवा पुनर्विचार करने पर उसे ऐसा लगा कि बौद्ध सन्त अधिक अच्छे रहेंगे तो उसने अपने कुछ दूत तिब्बत भेजे और वहां के साधुओं की सहायता से उसने अपने राज्य में बौद्ध धर्म को दृढ़ आधार दिया। यह बौद्ध धर्म जो जादुई या और कम प्रामाणिक था, बुद्ध

के निर्वाण के पांच शती अथवा उसके भी बाद भारत में फैला तथा इसे महायान का नाम दिया गया। किन्तु दूसरा धर्म हीनयान अधिक शुद्ध धर्म था। यह मत परवर्ती प्रखर कल्पना न होकर उन सिद्धान्तों का समुच्चय था, जो बुद्ध ने स्वयं निर्धारित किए थे और जिन्हें उनके अनुयायियों ने उनके मूलरूप में ही सुरक्षित रखा था।

लंका, हीनयान बौद्ध धर्म का घर था। हिन्दू धर्म से हटकर उसने इस धर्म में शरण ली थी। वहां के शासक इस धर्म के समर्थक थे और शताब्दियों से वे उसे सुरक्षित रखते आ रहे थे। विविध कारणों से बारहवीं शती में यह द्वीप सक्रिय धार्मिक केन्द्र बन गया। बौद्ध मन्दिरों के निर्माण के लिए यहीं से प्रसिद्ध बर्मा की राजधानी पगान ने प्रेरणा ग्रहण की। तेरहवीं शती में "शान" जब मीनाम से नीचे दक्षिण की ओर राज्य स्थापित कर रहे थे तब उस समय वे लंका के संपर्क में भी आए और परिणामस्वरूप उन्होंने लंका शैली की बौद्ध मूर्तिकला का विकास किया। संक्षेप में हिन्द-चीन के उत्तरी भाग को सभ्य बनाने वाले के रूप में बौद्ध लंका ने हिन्दुत्व का स्थान ग्रहण किया। लंका के मठ-पुस्तकालय प्रसिद्ध थे और उसके पूज्य स्थानों की अत्यन्त विस्तृत प्रसिद्धि थी। इनमें से सबसे बड़ा मठ कैंडी था जो द्वीप के मध्य में पठार पर स्थित था। यहीं दांत का मन्दिर था। इसी मठ में बौद्ध स्मारक-चिह्नों में से सबसे पवित्र चिह्न, स्वयं बुद्ध का एक दांत रखा हुआ था। किन्तु और भी बहुतेरे दूसरे स्मृति-चिह्न थे जो मुश्किल से इससे कम महत्त्व के थे। परन्तु इस दांत की पूजा के लिए ही तीर्थ यात्रियों की भीड़ निरन्तर रूप से बर्मा जैसे दूरस्थ प्रदेश से भी आती रहती थी। पीढ़ियों तक बर्मी शासकों ने भेंट और धन के उपहार यहां भेजे थे। दांत को प्राप्त करने के भी प्रयत्न होते रहे। सच तो यह है कि पगान के प्रत्येक शासक की, उसे प्राप्त करने तथा उसके लिए किसी दूसरे से श्रेष्ठ पगोदा बनाने की कामना रही। क्योंकि ऐसा माना जाता था कि पूजनीय वस्तु के रूप में अपने अन्य गुणों के अतिरिक्त वह असीम शक्तिपूर्ण जादू की वस्तु भी था।

जिसके दांत के मन्दिर की अन्तर्राष्ट्रीय कीर्ति थी, उसी लंका के द्वीप की ओर पोलो और उसका विशाल अनुचरवर्ग बढ़ रहा था। पुस्तक में अभी तक उसने इस बात का संकेत भी नहीं दिया कि वहां उनका काम क्या था। किन्तु अब वह कहता है कि बुद्ध के दांत (जिसके विषय में कहना था कि वे एक से अधिक हैं) और उनके भिक्षापात्र तथा उनके बालों के स्मृति-चिह्न के विषय में मुसलमानों ने कुबलाई को उसके दरबार में बताया था। "अतएव खान अपने आप से कहता है कि उसके लिए दांतों, पात्र और बालों को प्राप्त करना आवश्यक है। तब १२८४

में वह अपने एक बड़े राजदूत को इन चीजों को मंगाने के लिए लंका के द्वीप में भेजता है।" एक वक्तव्य के आधार पर कि मार्को पोलो १२८४ में चम्पा में था, इस बात की पुष्टि होती है कि १२८४–५ में मार्को पोलो का मिशन भारत में था और यूं भी पहले इस बात का उपर्युक्त तथ्य से सम्बन्ध जोड़ा जा चुका है। चूंकि यह बड़ा अस्वाभाविक लगता है कि दो बड़े राजप्रतिनिधि मण्डल एक ही समय लंका भेजे गए हों, एक पोलो के अधीन और दूसरा दांत लाने के लिए तो हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पोलो का दो हजार लोगों का प्रतिनिधिमंडल, उपर्युक्त बड़ा राजप्रतिनिधि मंडल ही था, और उसे जिस काम के लिए भेजा गया था वह दांत और अन्य स्मृति-चिह्न मंगाने से ही सम्बन्धित था। पोलो द्वारा इस व्यक्तिगत सूचना को रोक रखने की बात उसकी पुस्तक की आदि से अन्त तक की रीति के अनुसार ही है। अपने विषय में सीधे-सीधे वह बहुत कम कहता है। इसके अतिरिक्त उसने यह भी सोचा होगा कि मध्यकालीन इटली में यह कहानी प्रकाशित करना कि उसने किस प्रकार एक लम्बी और भयानक समुद्री यात्रा एक गैर-ईसाई देवता के स्मृति-चिह्नों को प्राप्त करने के लिए की, अच्छे कैथलिक ईसाई के रूप में उसकी गंभीर आलोचना का कारण बन सकती है। और शायद इसीलिए उसने ऐसा ही किया। यद्यपि पुस्तक के किसी आलोचक ने अभी तक यह निष्कर्ष नहीं निकाला, किन्तु मूलपाठ से ऐसा प्रमाणित लगता है।

अब हम यह देखेंगे कि लंका यात्रा के उसके विवरण से इस कल्पना को कहां तक प्रमाण मिलता है। पोलो कहता है कि द्वीप में एकमात्र देवता सागमोनि बोरकन (अर्थात् बुद्ध का प्रचलित नाम शाक्यमुनि) थे। और फिर हमें वह बुद्ध की जीवनी के बारे में बताता है, जिसका ज्ञान पश्चिम को पहली बार हुआ। किन्तु वहां किसी ने भी सदियों बाद तक यह ठीक से नहीं समझा कि महात्मा बुद्ध, हिन्दू धर्म से स्पष्टतः भिन्न एक अन्य महान् पूर्वी धर्म के प्रवर्तक थे। फिर भी जैसा कि हम आगे पोलो के विवरण से देखेंगे, लगता है उसने इस तथ्य को आधा ही समझा। वह इस कथन से आरम्भ करता है कि बुद्ध पहले आदमी थे जिनकी मूर्तियां स्थापित की गईं। इससे उसका अभिप्राय: है कि हिन्दू लोग देवताओं की मूर्तियां बनाते थे, आदमियों की नहीं। उनके देवता कभी भी आदमी नहीं रहे, उनका जन्म दैवी होता था। परन्तु बुद्ध की पूजा "मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ और पावन मनुष्य की भांति होती थी।" उनकी मृत्यु के बाद उन्हें देवता का पद दिया गया। पोलो आगे कहता है, (एक अत्यन्त गूढ़ बात को भरसक समझाने का प्रयत्न करते हुए), "किन्तु वह साधारण देवता न होकर ईश्वर हुए, क्योंकि

बुद्ध के रूप म उनका जीवन पुनर्जन्म के लम्बे क्रम की अंतिम सीढ़ी था, जिसके दौरान में उनकी आत्मा क्रमशः इस तरह पूर्णता को प्राप्त होती चली गई कि अन्त में देवत्व को ही प्राप्त हो गयी। लंका के लोगों का कहना था कि वह ईश्वर थे और वे लोग अभी भी यही कहते हैं। जिन मूर्तियों से लंका भरी पड़ी थी वह उनकी ही आकृतियां थीं।"

यद्यपि यह वक्तव्य सीधा-सादा और भोंडा है, पर इस बात पर जोर देकर वह बौद्ध धर्म की मूलभूत विशेषताओं को समझा सका है, कि बुद्ध वास्तव में एक व्यक्ति थे; और यह कि उन्हें अपनी मृत्यु के समय तक देवत्व प्राप्त नहीं हुआ था; कि उनका जीवन पूर्ण था; कि उन्होंने पूर्णता एक जीवन में प्राप्त नहीं की थी, पर चूंकि उनकी आत्मा क्रमशः नीचतर योनियों से उच्चतर योनि में पुनर्जन्म प्राप्त करती रही, वह साधारण देवता न होकर ईश्वर हो गए और बौद्ध मन्दिरों की सारी मूर्तियां उन्हीं की आकृतियां थीं। उस जीवन चरित्र में—जो मार्को बाद में बताता है और जिसके विवरण वह कहता है कि उसे लंका में बताए गए थे—वह पुनः हीनयान धर्म की प्रमुख बातों पर आता है। वह कहता है कि बुद्ध एक राजा के बेटे थे, वह राजभवन के विलास में पले थे और नहीं जानते थे कि वास्तविक जीवन कैसा होता है। एक दिन वह घोड़े पर सवार होकर नगर में घूमने निकले तो पहली बार उन्होंने एक शव को श्मशान ले जाते हुए देखा और एक अत्यन्त वृद्ध अपाहिज को भी देखा। इन दृश्यों का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने महल छोड़ दिया और गुप्तरूप से उसकी खोज में निकल पड़े, "जो कभी नहीं मरता और जिसने उनको बनाया है।" वह तपस्वी की भांति जंगल में रहने लगे, "वैसे ही जैसे कि वह ईसाई हों, क्योंकि यदि सचमुच उन्हें ईसाइयत का बपितस्मा दिया जाता तो उन्होंने जैसा पवित्र और भला जीवन बिताया है उनकी गणना भी हमारे प्रभु ईसा के समान ही महान् सन्तों में की जाती।"

यह विवरण बुद्ध की उस सीधी-सादी मूलकथा के अंश को यथातथ्य निरूपित करता है जिस पर कथाओं और आख्यानों के विशाल साहित्य का निर्माण हुआ। यह अत्यन्त विचित्र बात है कि यह कहानी योरुप में लोगों को पहले ही मालूम थी, यद्यपि वह बुद्ध के मूलसूत्र से विच्छिन्न और अन्य व्यक्ति पर आधारित था। अठारहवीं शती के एक ईसाई अध्यात्मवादी दमिश्क के जॉन नामक व्यक्ति ने प्रत्यक्षतः सुना था कि बुद्ध की वास्तविक कहानी क्या थी, परन्तु एशिया की विशाल दूरी के पार उस तक पहुंचते-पहुंचते उसने विचित्र रूप ले लिया था। उसने जो कुछ सुना और इसे यूनानी भाषा में जैसे लिखा गया वह इस प्रकार था कि

देव संदेशवाहक संत थामस द्वारा भारतीयों को ईसाई बना देने के बाद (क्योंकि एक बहुत पुराना आख्यान है कि उन्होंने ऐसा किया) अवेनीर नाम के एक भारतीय राजा ने ईसाई बने लोगों को पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। राजा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम जोज़ेफट हुआ जिसके विषय में ज्योतिषियों ने घोषित किया कि वह ईसाई धर्म ग्रहण करेगा। अपने पिता के विलासपूर्ण राजमहल में एक उत्तराधिकारी के रूप में वह बड़ा एकान्त जीवन व्यतीत करता था, कि एक दिन घोड़े पर सवार होकर वह शहर में घूमने निकला और एक अंधे आदमी और एक अपाहिज बूढ़े को मौत के किनारे देखा। इस प्रकार से पहली बार देखे गए संसार के दुःखों से व्याकुल होकर वह अपना राज्य त्याग कर जंगल में चला गया जहां उसने ईसाई धर्म के विषय में सुना। यह जानकर कि यह उसकी समस्याओं का समाधान है उसने उसे ग्रहण कर लिया और कठोर जीवन व्यतीत करने के बाद वह निर्वाण को प्राप्त हुआ।

योरुप में यह कहानी एक हिन्दू राजकुमार की प्रामाणिक जीवनी के रूप में स्वीकार की गयी थी। यह बहु-प्रचलित हो गयी और इसकी बार-बार नकल हुई और बाद की शताब्दियों में किसी अज्ञात समय पोप द्वारा, जोजेफ़ट, सन्तों की सूची में सम्मिलित कर लिया गया और २७ नवम्बर का दिन उस सन्त का दिन निर्धारित किया गया। इस अप्रत्यक्ष और गड़बड़ रीति से बुद्ध कैथलिक सन्त हो गए।

और अब असाधारण उपसंहार भी आता है। सब मध्ययुगीन योरुपियों की तरह, पोलो को भी सन्त जोजेफ़ट की कहानी मालूम थी, क्योंकि सन्तों के इतिहास गिरजों में पढ़कर सुनाए जाते थे। लंका में इस प्रामाणिक और मूल कहानी को सुनकर—जिसने सन्त जोज़ेफ़ट के आख्यान को जन्म दिया था—वह इन दोनों की समानता से आश्चर्य में पड़ गया और उसने लिखा कि "यह सन्त जोज़ेफ़ट की कहानी के समान ही है जो उन दिनों भारत के राजा अवेनीर का पुत्र था और जिसने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था[1]। पर वह न तो यह निष्कर्ष निकालता है कि संत जोजेफट की कहानी बुद्ध की कहानी से ली गयी थी और न यह कि बौद्ध लोगों ने अपनी कहानी ईसाई आधार पर ली। उसका विवरण सीधा-सादा, विवेचना रहित है कि बुद्ध सर्वप्रिय ईसाई सन्तों में एक सन्त के तुल्य थे, अतः सन्त कहलाने के अधिकारी थे।

इस प्रकार सागमौनि बोरकन या बुद्ध के नाम से लंका में जिस देवता की पूजा की जाती थी, उसकी व्याख्या करके पोलो लिखता है कि किस प्रकार १२८४,

---

[1] यह वाक्य मूलपाठ पर भास्यमात्र सम्भव है।

के राजदूतमंडल (अर्थात्, जैसा कि मैं कल्पना करता हूं, वह राजदूतमंडल, जिसका वह प्रधान था) ने लंका के राजा से स्मृति-चिह्न मांगे। लंका के राजा बुद्ध के स्मृति-चिह्न मांगे जाने के अभ्यस्त थे, वे भी उन्हीं दिनों के कुस्तुन्तुनिया के सम्राटों की भांति—जिन्होंने ईसाई स्मृति-चिह्नों की बिक्री का संगठित और लाभप्रद व्यवसाय कर रखा था—किसी भी स्मृति-चिह्न को अच्छे मूल्य पर बेचने को प्रस्तुत थे पर दांत सबसे अधिक मूल्यवान था। उसकी एक प्रतिकृति बर्मा को पहले ही बेची जा चुकी थी, और जिसे असली बता कर बाद में बर्मा और स्याम दोनों को वेचा गया। भाव-ताव शुरू हुआ। राजदूतमंडल के बहुत प्रयत्न के बाद राजा "यद्यपि राज़ी नहीं था, किन्तु अन्त में उन्हें दो दाढ़ें, जो मोटी और बड़ी थीं, और बुद्ध के कुछ केश तथा उनका भिक्षा पात्र दिया। पात्र हरे स्फटिक का बहुत सुन्दर था।" उनको प्राप्त करने में उसकी बड़ी दौलत खर्च हुई।

लगता है दांत हाथी के थे, जिनकी राजा को अपरिमित प्राप्ति थी, क्योंकि सारे जंगल हाथियों से भरे पड़े थे। चाहे यह विचित्र लगे कि मंगोल राजदूतमंडल को हाथी की दाढ़ देकर टाल दिया गया था। परन्तु इस तरह की किसी आपत्ति के लिए राजा के पास उत्तर थे। वह कह सकता था कि बुद्ध जो बाद में ईश्वर हो गए—के दांत भी, जैसा कि हम सोचते हैं, सामान्य नहीं थे। उनकी अपार शक्ति की भांति उनके दांत भी विशाल थे। या वह संकेत कर सकता था कि बुद्ध की आत्मा के भावी पुनर्जन्मों के मध्यकाल में एक बार वह श्वेत गज के रूप में जन्मे, जैसा कि पवित्र जातक के एक पाठ में विस्तृत वर्णन है, और उस समय दिया गया दांत उनके पूर्व जन्मों के समय का था। किन्तु इस कारण से वे किसी भी तरह कम पावन और कम शक्तिपूर्ण नहीं थे। सच तो यह है कि वे अधिक प्राचीन और अधिक दुर्लभ होने के कारण अधिक मूल्यवान थे। किन्तु वास्तव में मंगोल राजदूत ने इस प्रकार की कोई आपत्ति नहीं उठायी बल्कि मार्को कहता है कि विशाल दाढ़ें प्राप्त करके वे अत्यन्त प्रसन्न हो गए।

लंका में आज भी एक दांत प्रदर्शन के लिए रखा हुआ है। कहा जाता है कि वह एकमात्र और असली दांत है। स्वीकारोक्ति के अनुसार लगता है कि बर्मियों, स्यामियों, और मंगोलों को बेचे गए कई दांत नकली थे। किन्तु इस प्रकार की कोई स्वीकारोक्ति नहीं होगी। जैसा कि सब लोग जानते थे, दांत में शक्ति थी, द्वीप से बाहर ले जाने पर यह दांत खरीदार के हाथों में अपना प्रतिरूप अथवा प्रतिकृति छोड़कर हवा में उड़कर वापिस लौट आता था। सम्भवतः पाठकों को यह जान कर अच्छा लगे कि मैंने स्वयं भी यह दांत देखा है। फ़रवरी १९३२

में एक दिन मैं लंका पहुंचा और मोटर से दांत के मन्दिर गया। संयोगवश वहां कुछ बर्मी विशिष्ट यात्री भी थे और मंदिर के संरक्षक पुजारी महान् स्मृति-चिह्न दिखा रहे थे। वह एक सोने के सन्दूक में रखा था। यह सन्दूक एक से दूसरे बड़े अनेक बक्सों में बन्द रहता था। बाहरी सन्दूकों को खोलने में कुछ समय लगा किन्तु अन्त में पवित्र पदार्थ खोला गया और मैंने, हाथी की दाढ़ नहीं, किन्तु किसी प्रकार का हाथी का दांत ही देखा। भिक्षापात्र मैंने नहीं देखा, यद्यपि मेरे विचार में वह अभी भी कैंडी में रखा है।

पोलो कैंडी का जिक्र नहीं करता किन्तु ऐसे शब्दों में लिखता है जो यह संकेत करते हैं कि राजदूतमंडल को स्मृति-चिह्न आदम के शिखर से मिले। यह वह पवित्र पर्वत है जो उस नगर से सौ मील दक्षिण में है। चपटी शिला के शिखर पर बड़े चरण चिह्न के आकार का गड्ढा-सा है। विभिन्न धर्मों ने उसे अपना बताया है। बौद्ध लोग उसे बुद्ध के चरणचिह्न घोषित करते हैं, मुसलमान लोग आदम के, हिन्दू शिव के और ईसाई लोग देवसंदेशवाहक सन्त थामस के। प्रतिवर्ष इनमें से प्रत्येक धर्म के तीर्थयात्री शिखर पर चढ़े हैं और वहां रत्नों की भेंट दी हैं जो चरणचिह्नों की रूपरेखा बनाने में प्रयुक्त हुए हैं। पोलो इसके विषय में कुछ नहीं कहता, किन्तु एक स्मारक या एक प्रकार की समाधि का अप्रत्यक्ष संकेत करता है और कहता है कि वहां स्मृति-चिह्न रखे थे। जहां तक मालूम है स्मृति-चिह्न सदा कैंडी के पावन स्थान में ही रखे रहते थे। किन्तु हम अनुमान नहीं लगा सकते कि सिंहलवालों ने राजदूतमंडल से क्या कहा होगा।

स्मृति-चिह्न खरीदने के अलावा राजदूतमण्डल को यह भी आदेश था कि यदि संभव हो तो वे वह उस बड़ी लालमणि को भी खरीद लें जो राजा के पास थी। वह लालमणि समस्त संसार में पाई जाने वाली मणियों में से सबसे बड़ी और सबसे सुन्दर थी, जिसके समान मणि न पहले कभी देखी गई थी और न उसके देखे जाने की सम्भावना थी।" मैं 'मार्को पोलो' राजदूतों में से एक था और इस उक्त लालमणि को मैंने अपनी आंखों से देखा, जब इसे वहां का शासक (राजा) अपनी बन्द मुट्ठी में थामे था, तो वह मुट्ठी के ऊपर और नीचे बाहर निकली हुई थी, जिसे राजा ने अपनी आंखों और मुंह से लगाया।" यहां अर्थ यह है कि वह जादू का पत्थर था, जिसे चेहरे पर छुआने से यौवन स्वास्थ्य और सुरूप की रक्षा होती थी। राजा ने उपस्थित लोगों के सामने उपर्युक्त रीति से हावभाव बनाए और उसे देना अस्वीकार कर दिया। उसने कहा, कि वह पैतृक पत्थर था, जिसे बेचने का अर्थ उस पत्थर के प्रति असम्मान प्रगट करना था।

अतः पोलो को उसे लिए बिना ही पीकिंग लौटना पड़ा। किन्तु जैसा मैंने पहले कहा, आप यह कल्पना कर लीजिए कि लंका जाने वाला राजदूतमण्डल, जिसमें मार्को स्पष्टतः कहता है कि वह भी था, वही राजदूतमंडल था जो स्मृति-चिह्न लेने के लिए भेजा गया था। यद्यपि वह लालमणि न ले सका था पर वह अपने मालिक के पास खाली हाथों नहीं लौटा था। कुबलाई ने जब सुना कि दांत, केश और पात्र सुरक्षित पहुंच गए हैं तो वह प्रसन्न हो उठा। उसने प्रजा को आज्ञा दी कि जब ये पवित्र चीजें जुलूस के रूप में महल में लायी जायं तो वे सड़क के किनारे खड़े रहें। महल में उसने उन्हें सम्मानपूर्वक ग्रहण किया और एक बड़ी दावत देकर इस समारोह को मनाया। विशेषरूप से वह उस पात्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसे विश्वास था कि यह वही पात्र था जिसे लेकर बुद्ध भोजन मांगने निकला करते थे। बुद्ध इस पात्र को नितान्त दरिद्रता का प्रतीक मानते थे और यही नियम उन्होंने अपने शिष्यों के लिए भी निर्धारित किया हुआ था। उच्चकोटि के स्मृति-चिह्नों और पावन पदार्थों में पाई जाने वाली चमत्कारिक शक्ति की तरह इस पात्र में भी चमत्कारी शक्ति थी। उसका यह विशिष्ट गुण था कि जब उसे भर दिया जाता तो उसके अन्दर की चीजें पंचगुनी हो जाया करती थीं। पोलो लिखता है कि आप भी यह जान लें कि महान खान ने पात्र मिलने के बाद कहा कि वह उसकी परीक्षा लेना और इसके चमत्कारिक गुण का प्रमाण पाना चाहता है। बाद में उसने बताया कि सचाई वास्तव में यही पाई गई।

कुछ पाठकों को हैरानी होगी कि कुबलाई ने जब तिब्बत से बौद्ध भिक्षुओं को मंगवा कर महायान बौद्ध सम्प्रदाय को प्रोत्साहन दिया, जो कि उस समय इस धर्म का मुख्य केन्द्र था तो उसने लंका में स्थित प्रतिस्पर्द्धी हीनयान बौद्ध सम्प्रदाय के प्रधान स्थान से स्मृति-चिह्न क्यों मंगाए। चीन में हीनयान न तो प्रचलित था न कभी प्रचलित हुआ। किन्तु खाकान इस प्रकार की बारीकियों की परवाह नहीं करता था। अपने बड़े तौर-तरीकों के अनुसार वह जादू के स्मृति-चिह्न चाहता था और जहां उनके मिलने की संभावना थी, वहां उसने अपने आदमियों को खरीदने के लिए भेज दिया। पोलो का समुद्र पार हजारों मील की यात्रा करके इन स्मृति-चिह्नों की खोज में भेजा जाना, उसे उसके अन्य अभियानों की अपेक्षा एशिया के हृदय के अधिक निकट लाया और जो-जो अन्य कार्य उसने सम्पन्न किए उनमें से यह सबसे विलक्षण कार्य था।

अध्याय तेईस

रहस्यमय हिन्दू भारत

पोलो जब लंका में था तो वह एशिया भर में सबसे विचित्र स्थान की सीमा पर था। जलडमरूमध्य के पार हिन्दू धर्म का मूल स्थान दक्षिण भारत था, और यहीं से हिन्दचीन तथा अन्य द्वीपों को सभ्य बनाने वाली संस्कृति गई थी। उसके विशाल मन्दिरों में धर्म के आचारों, मूर्त्तियों, शास्त्रनीतियों, नृत्यों, देवताओं, दैवी-शक्तियों, धर्मोन्मादियों, जादूटोनों का एक विचित्र सामंजस्य था। पोलो अपने लंका-निवास काल में स्पष्टतः भारत घूमा था, जैसा कि उसने अपने घर की ओर की गई अपनी यात्रा में दूसरी बार, जब वह राजकुमारी को फारस के अल खान के पास ले जा रहा था वर्णन किया है। अपनी पुस्तक में वह दोनों यात्राओं के अपने पर्यवेक्षणों को एक ही विवरण में सम्मिलित कर लेता है और बारहवीं शताब्दी में वास्को-ड-गामा द्वारा भारत पहुंचने के समुद्री मार्ग की खोज से दो सौ वर्ष पहले के हिन्दू भारत की एक झलक वह हमें देता है। यद्यपि अभी भी यह स्थान अनुपम और विचित्र है, पर पोलो के समय में वह और भी मनोरंजक था, क्योंकि न तो इस्लाम और न पाश्चात्य संसार उसके विचारों की अपनी विशिष्टता और रीति-रिवाजों से टकराये थे। उसने जो कुछ देखा उससे पोलो आश्चर्यचकित था। वह लिखता है, "मैं आपको कुछ आश्चर्यजनक चीजों के बारे में बताऊंगा।"

उस काल में दक्षिण भारत असंख्य स्वतन्त्र राज्यों में विभाजित था। कोई भी व्यक्ति पूरे अथवा आधे भारत का सम्राट् नहीं था। एक राजा के विषय में लिखते हुए, जो मद्रास सागर तट पर कहीं राज्य करता था, पोलो लिखता है कि भारतीयों को दर्जियों की जरूरत नहीं थी, क्योंकि वे कटिवस्त्र के सिवा कोई कपड़ा नहीं पहनते थे। (जैसा कि किसी को भित्तिचित्रों अथवा मूर्त्तियों से पता चल सकता है, यह प्राचीन भारत की अपनी विशिष्टता थी। दक्षिण भारत तब से बहुत कम बदला है और पोलो ने जो देखा वह तब तक प्रथम शताब्दियों के पुराने भारत का ही स्वरूप था।) पोलो आगे कहता है, "कि आप कल्पना कर रहे होंगे कि राजा तो अपने पद की विशिष्टता के लिए कम-से-कम रोबदार कपड़े पहनता होगा, "पर ऐसा नहीं था। आप अगर उसके रत्नों को न गिनें तो उसके शरीर पर एक सुन्दर कटिवस्त्र के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता

था। इनका बोझ जरूर उस पर लदा रहता। उसके गले के गिर्द मोतियों और मूल्यवान रत्नों से जड़ा एक चौड़ा सुनहरा पट्टा रहता था तथा माला की तरह एक कण्ठा भी उसके गले से वक्ष पर लटकता रहता। इस कण्ठे में सौ से ऊपर बड़े मोती और लाल से गुंथे रहते। टांगों पर तीन जगह वह रत्नों से जड़े हुए भारी-भारी सोने के कड़े पहने रहता था और हाथों तथा पैरों की प्रत्येक ऊंगली में एक अंगूठी रहती। इन सब आभूषणों का मूल्य एक बड़े नगर के विस्तृत धन के बराबर था।

इस भारी रत्नालंकृत नग्न पुरुष की सेवा में भक्तों का एक दल रहता, जो इस संसार और दूसरे संसार में अत्यन्त निष्ठा के साथ उसकी सेवा के लिए कृत संकल्प रहते थे। अपने इन प्रतिज्ञाबद्ध मित्रों के बिना वह हाथी पर या किसी अन्य सवारी से देश के बाहर कभी न जाता था। राजा की मृत्यु पर जब उसकी चिता जलाई जाती थी तो वे "दूसरी दुनिया में उसका साथ देने के लिए" अपने को आग में झोंक देते थे। ऐसे राजाओं का खजाना अपार रहता था क्योंकि एक शासन के बाद दूसरे शासन में उसमें निरन्तर बढ़ोत्तरी होती रहती थी। दक्षिण भारत के धनागार सोने और अकल्पित रत्नों से ठसाठस भरे थे, क्योंकि उस प्रदेश पर अनेक शताब्दियों से बाहर से कोई आक्रमण नहीं हुआ था। अन्त में जब इस धन को लूटा गया तो वह लूट अपार थी, और उसकी प्रसिद्धि से योरुपियों को यह सोचना पड़ गया कि भारत बहुत समृद्ध और ऐश्वर्यशाली देश था। जबकि वास्तव में यह ऐश्वर्य इतना अधिक नहीं था।

जिस प्रकार राजा के भक्त होते थे उसी प्रकार देवता के भी होते। राजभक्ति, प्रेम, और धार्मिक उत्साह जैसी भावनाओं का उत्कर्ष भारत में पश्चिम की अपेक्षा बहुत अधिक चरमसीमा पर पहुंच चुका था। बाहर से आने वाले यात्रियों को ये बातें पागलपन का अतिरेक लगती थीं और उनमें से सबसे बड़ी बात आत्मबलि की थी। 'जब कोई भक्त यह सिद्ध करने के लिए—कि वह किसी देवता को कितना अधिक प्रेम करता था—अपनी हत्या कर लेता, और सोचता कि इससे वह मुक्ति प्राप्त कर लेगा।' इस धार्मिक आत्म-हत्या के बहुत से उदाहरण लिखे गये हैं, यथा, अपने को पवित्र घड़ियालों की भेंट दे देना या ऐसे पेड़ पर से कूद पड़ना जिस पर देवता का वास समझा जाता हो। पोलो द्वारा देखी गई एक विशेष प्रकार की धार्मिक आत्म-हत्या अधिक चौंकाने वाली थी। भक्त पालकी पर नगर भर में घुमाया जाता। वह ज्योंही निकलता उसके मित्र चिल्लाते, "यह वीर पुरुष अमुक देवता के प्रेम में आत्मबलि देगा।"

जहां पर वह अपनी बलि देने वाला होता उस स्थान पर पहुंच कर भक्त बारह चाकू ले लेता और ऊंची आवाज़ में यह घोषणा करने के बाद, कि वह जो कुछ करने वाला है वह देवता की भक्ति के कारण किया जा रहा है, उन्हें एक-एक करके अपने हाथों और शरीर में भोंक लेता। प्रत्येक चोट करने पर पागलों की तरह वह अपनी असीम भक्ति की घोषणा करता। जब वह चाकूओं से पूरी तरह छिद जाता तो दुहरे हंसिये की तरह का एक औजार लेता, अर्थात् अर्धवृत्त में मुड़ा हुआ चाकू, जिसके दोनों ओर हत्थे होते। हत्थों में जंजीर के साथ रकाबें लगी रहतीं। इस चाकू को अपने गले के पीछे रख कर वह अपने पांव झुकाता और पैरों को रकाब में डाल देता। तब आगे की ओर पैरों के जोरदार झटके से वह अपना ही सिर काट डालता। देवता का वरदान पाने की यह पागल चेष्टा पोलो को ऐसी अविश्वसनीय लगी कि उसने भूल से समझ लिया कि वह व्यक्ति दण्ड-प्राप्त अपराधी था।

अपने पति की चिता पर विधवाओं की आत्म-हत्या, जिसे सती प्रथा कहा जाता था, वह भी आदर्श निष्ठा की ही एक क्रिया थी। पोलो लिखता है, "जब कोई आदमी मर जाता है, और वहां की प्रथानुसार जब उसका शरीर जलाया जाता है, तो उस समय उसकी पत्नी उस चिता में अपने को जीवित ही झोंक देती है और अपने स्वामी के प्रेम के लिए उसके साथ ही जल जाती है," वह आगे लिखता है कि "जिसमें ऐसा करने का साहस नहीं होता उसकी बड़ी निन्दा होती है।" सती प्रथा की इस बुराई और क्रूरता के प्रति भारत में आने वाले पर्यटकों को बहुत घृणा थी। उनमें से बहुत से बताते हैं कि किस प्रकार पुजारी अनिच्छुक स्त्रियों को भी चिता की भेंट हो जाने के लिए विवश करते थे। प्राय: उन्हें पहले से ही कोई नशीली चीज़ खिला दी जाती थी ताकि उन्हें पता ही न चले कि वे क्या कर रही हैं। पोलो ठीक ही कहता है कि चाहे यह प्रथा कैसी भी पागलपन की थी, पर इसके आधार अवश्य आदर्श रूप थे। वह वास्तविक पतिव्रता विधवाओं तथा पुरोहितों की धर्मान्धता की शिकार—जो उनसे जबर्दस्ती आत्म-हत्या करवा देते थे—के उदाहरण अलग से बताता है।

एक दूसरा उदाहरण, जो जरा कम उग्र धार्मिक निष्ठा का है, वह है मन्दिरों के लिए लड़कियों का बेच देना। वे अपने माता-पिता द्वारा देवदासियों की भांति मन्दिरों को अर्पित कर दी जाती थीं। इस तरह की लड़कियों के दल के दल मन्दिरों में रहते थे। वे प्रतिदिन मूर्त्तियों के सामने की वेदी पर भोजन

का ढेर वैसे ही सजाकर रख देतीं, जैसे उसे राजा की मेज़ पर रखा जाता है और स्वयं भगवान द्वारा उस भोजन का भोग लगाए जाने की प्रतीक्षा करती, गाती, नाचतीं और बाजे बजातीं। जब इतना समय बीत जाता, जितना कि कोई रईस आदमी भोजन करने में लगा सकता है, तो भोजन हटा लिया जाता और मन्दिर की लड़कियां पुजारियों के साथ बैठ कर उसे खा लेतीं। कभी-कभी ऐसे अवसर आते कि पुजारी लोग घोषणा करते कि कोई देवता किसी देवी से खफा है। यह स्थिति बड़ी भयंकर होती, क्योंकि इस स्थिति में, मानवता के लिए देवता से कोई दैवी वरदान प्राप्त करना सम्भव न रहता। दिव्य प्रेमियों की संधि कराने और उनका आनन्दपूर्वक पुनः परस्पर आलिंगन करवाने के लिए लड़कियां बुलाई जातीं। उन्हें हँसाने और अपना झगड़ा भुलाने के लिए कुछ लड़कियां उनके आगे कूद कर और लुढ़क कर कलाबाजी के करतब करतीं। दूसरी विनीत भाव से समझातीं, "हे प्रभु, आप देवी से क्रुद्ध क्यों हैं और उनकी ओर क्यों नहीं ध्यान देते ? क्या वह सुन्दर नहीं है, क्या वह चारु नहीं है ?" एक दूसरी शरीर को मोड़ने वाली "अपना पांव गर्दन से ऊपर उठाती और चक्कर लगाती।" पोलो कहता है, नाचने और कलाबाजियां करने के परिणामस्वरूप इन लड़कियों का शरीर ऐसा पुष्ट हो जाता था कि उनके चिकोटी भी नहीं काटी जा सकती थी। थोड़े से धन के बदले में वे आपको यह आज़मायश करने देतीं, किन्तु उनका मांस इतना दृढ़ होता था कि उसे पकड़ा तक भी नहीं जा सकता था।

हिन्दू धर्म की विशेषताओं का वर्णन करते हुए पोलो उनमें से सबसे विशिष्ट विचित्र ब्राह्मणों का वर्णन भी नहीं छोड़ता। वह उनके पवित्र जनेऊ के, उनके सीधे-सादे निरामिष भोजन, व्यापार में उनकी बड़ी ईमानदारी, और धन के बारे में वह उनकी विश्वासपात्रता, धार्मिक पांडित्य और भविष्यकथन में उनकी रुचि के विषय में भी वह बताता है। इस अन्तिम बात की ओर संकेत कर वह कहता है, "वे शकुन और पशु-पक्षियों-के कार्य और उनके चलने-फिरने पर संसार के अन्य आदमियों की अपेक्षा अधिक विश्वास करते हैं।" और वह छाया की लम्बाई, मकड़ियों छींकों और पक्षियों के उड़ने की दिशाओं से, उनके द्वारा भविष्यवाणी करने के उदाहरण भी देता है।

यह सारी बातें उसे विशिष्ट हिन्दू चीज़ों से विचित्र आदर्श योगियों की चर्चा की ओर ले जाती हैं। किन्तु पहले वह उस योगी के विषय में कुछ कहता है जो रसायन में विशेषज्ञ है। इस प्रकार के लोग रासायनिक सोना बनाने का

प्रयत्न नहीं करते थे, किन्तु जीवन के रसायन की खोज में रहते, यह ऐसी कल्पना थी जो पूर्व में आदिकाल से लोगों के मन में घर किये थी और अभी भी बरकरार कायम थी। यह रसायन दो प्रकार के थे एक वह जो अमरत्व प्रदान करता है और जीवन को केवल दीर्घत्व देता है। पोलो के कथनानुसार इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि वह योगी जिनके पास जीवन को दीर्घत्व प्रदान करने का रहस्य था "दूसरों से अधिक काल तक जीवित रहते थे। क्योंकि सामान्यत: वे डेढ़ सौ से दो सौ वर्ष तक जीते रहते और फिर भी उनके शरीर बिलकुल समर्थ रहते थे, इससे वे जहां चाहें वहां आने-जाने में शारीरिक दृष्टि से अच्छी तरह सक्षम थे। अपने मठों और उनकी मूर्त्तियों की सारी सेवा वे अच्छी तरह करते थे।" मठ से उसका अभिप्राय मन्दिर से है क्योंकि विशाल भारतीय मन्दिर मठ निवासों की भांति ही थे। उनके घेरे में बहुत से ऐसे घर होते थे, जिनका प्रयोग पुजारी करते थे। सच तो यह है कि ऊपर पोलो ने जिन लोगों की चर्चा की है वे रासायनिक—योगियों से अधिक पुजारी थे, क्योंकि योगी कभी घरों में नहीं रहते थे। तथापि पोलो का यह कहना सही है कि कुछ योगी रासायनिक थे और वे वनों के एकान्त में अपनी साधना का अभ्यास करते रहते। वह कहता है है जो तरल पदार्थ वे पी जाते थे उनमें पारे और गन्धक का योग रहता। उन दिनों ऐसे ही पदार्थ जीवन रसायन के सुप्रसिद्ध अंश होते थे। मिश्रण में सही अनुपात उनका रहस्य था। राज्यों के बहुत से शासक गलत रीति से मिश्रित किए गए रसायन को पीकर मर गये। फारस के मंगोल अलखान अरग़न शाहज़ादे ने जिसकी पत्नी—जैसा कि हम देखेंगे—पोलो की रक्षा में दी गयी थी, रसायन का आठ महीने का क्रम लिया और उससे वह मर गया। सत्रहवीं शती में फ्रांसीसी डाक्टर बर्नियर ने कहा है कि उसके समय के योगी इसी तरह के योग की दो रत्ती मात्रा रोज सवेरे खाकर पूर्णरूप से स्वस्थ रहते थे। पूर्व देश के प्रत्येक राजा को सच्चा रसायन प्राप्त करने की आशा रहती थी। यहां तक कि दुनिया का मालिक महान् चंगेज खां, जब आक्सस के पास अफ़ग़ानिस्तान के ऊपर रह रहा था, तो एक ताओ संप्रदाय के पुराने रासायनिक को बुलाने उसने किसी को शान्तुंग जैसी दूर जगह भेजा। उससे अमरत्व का रहस्य मांगने उसे मरुभूमि और पर्वत के तीन हजार मील पार बुलवा भेजा। इसलिए पोलो के लिए यह विषय अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण था। किन्तु उसका विचार है कि एक कारण जिससे कि रासायनिक योगी इतना अधिक जीते थे यह होगा कि उनका भोजन सादा, विरल और पौष्टिक रहता था।

पोलो जो कुछ सामान्य योगियों के विषय में कहता है, जो संन्यासी और घुमक्कड़ थे वह भी मनोरंजक और समानरूप से प्रमाणित है। साधारणतः वे भक्त श्रेणी के होते थे। इस सम्बन्ध में चरम परित्याग कर वे दिव्य शक्ति से निकट साहचर्य प्राप्त करने की चेष्टा किया करते थे। तपस्वियों की भांति वे थालियों के स्थान पर सूखी पत्तियों पर भोजन करते, अपने शरीर पर गोबर की राख लगाते। वे जीवन की समान महत्ता पर विश्वास करते हुए, चाहे वह मनुष्य है, पशु अथवा वनपल्लव, वे किसी भुनगे या हरी वस्तु की हत्या न करते। वे सम्पूर्ण रूप से नंगे घूमते और रात को कुछ ओढ़ने के लिए किसी कपड़े अथवा बिछौने का उपयोग न करते थे। पोलो अन्त में कहता है, "यह बड़ी हैरानी की बात है कि वे सब मर नहीं जाते।" ऐसा लगता है और ऐसा लगना चाहिए भी कि जीवन के इस ढंग ने उसे त्रस्त कर दिया था। क्योंकि हमें आजकल भी इन पिशाचसेवितों के देखने मात्र से घबराहट होती है। वह उन्हें देखकर कांप उठता था : "वे इतने क्रूर, धूर्त और ऐसे मूर्त्तिपूजक थे कि मैं कहता हूं कि यह सब शैतान जैसे काम लगते थे।"

यही है उसका हिन्दू धर्म के बारे में रेखाचित्र ! उस असाधारण प्रणाली का जो भारत में आर्यों ने तीन हजार वर्ष पहले प्रचलित की और जो ईसाई युग की पहली शतियों में सागर पार हिन्द चीन में फैल गयी थी। यद्यपि उसे, उसके उच्चकोटि के साहित्य और दर्शन और इन्हीं की प्रतिच्छाया रूप जिन रिवाजों को उसने देखा, उनके बारे में उसे कोई धारणा न थी, किन्तु वह बाहरी रूपरेखा की मुख्य बातों पर उंगली रखने और मध्ययुगीन योरुप को ऐसा लेखा देने में सफल होता है, जिसे उस समय की शिक्षा व्यवस्था में समझना मुख्यतः कठिन था।

अध्याय चौबीस

मोती और कच्चा अम्बर

पोलो हमें, भारत में गोताखोरी सम्बन्धी दो चित्र देता है। इस देश के समुद्र मोती और कच्चा अम्बर, दो निधियों के लिए प्रसिद्ध थे। मोतियों की मुख्य गोताखोरी लंका और कुमारी अन्तरीप के बीच के जलडमरूमध्य में होती थी जहां पर पानी सुविधाजनक रूप से उथला था। मोती खोजने वाली नावें वहां लंगर डाल कर खड़ी हो जातीं और गोताखोर जो मासिक भाड़े पर रखे जाते थे, छोटी नावों से काम करते। किन्तु इससे पहले कि वे समुद्र-तल पर पहुंचें, पहले, उन्हें शार्क मछलियों से अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करना होता था, और यह कार्य बेड़े के ब्राह्मणों के सिपुर्द था। अपने मन्त्रों और जादू की विद्या से वे उन मछलियों को वश में करके उन्हें मुग्ध कर लेते ताकि वे किसी को नुकसान न पहुंचा सकें। कौन-कौन से ठीक-ठीक तरीके वे काम में लाते थे यह तो मुझे नहीं मालूम किन्तु गोताखोरों में गोता लगाने योग्य उत्साह वे जरूर भर देते थे। इस बात की कल्पना की जा सकती है कि यदि दुर्घटनाएं होती रहतीं तो उनसे शार्कों पर मंत्र चलाने के लिए न कहा जाता पर वे लोग आज तक यही करते आ रहे हैं और यह निश्चय ही बड़ी अद्भुत बात है। पोलो कहता है कि रात को वे अपने मन्त्रों को हटा लेते थे ताकि अगर कोई अनधिकृत व्यक्ति अंधेरा होने पर सीपों को पकड़ने का प्रयत्न करे तो शार्क उसे निगल जाएं। किन्तु चोर लोग मछलियों के डर से रात को समुद्र में जाने की चेष्टा नहीं करते, और न ही उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिलता है जो व्यापारियों द्वारा किराये पर रखे गए इन ब्राह्मणों के अतिरिक्त जादू करना जानता हो।

गोताखोर छः फैदम नीचे काम कर सकते थे। जब तक वे नीचे रह सकते वे रहते और फिर ऊपर आने पर सीपों की भरी हुई जाली, अपने साथ ले आते। सीपें खोल कर पानी की नांदों में रख दी जातीं। सीपें सड़कर ऊपर तैर आतीं और मोती तह में बैठ जाते। इस समुद्र से पाए जाने वाले मोती संसार भर में भेजे जाते हैं, पोलो कहता है कि उसकी बात ने उन पाठकों की उत्सुकता को जरूर जाग्रत किया होगा, जिनके पास भारतीय मोती हैं।

कच्चे अम्बर के लिए, सबसे महत्त्वपूर्ण गोताखोरी अदन की खाड़ी के प्रवेश

मार्ग पर स्थित सकोत्रा द्वीप से जरा हटकर होती थी। कच्चा अम्बर ह्वेल मछली की आंतों में एक प्रकार का ठोस पदार्थ होता है। सामान्यत: यह समुद्र में तैरता हुआ पाया जाता है या ह्वेल जब इसे निकाल देती है तो यह बहता हुआ समुद्रतट पर आ लगता है। मैंने इसे पूर्वीय समुद्रों में देखा है और मुझे यह भेंट भी किया गया था। कच्चे रूप में यह फेन के टुकड़े-सा लगता है। यह मरी ह्वेल मछली के पेट में भी मिलता है और इसे सौ पौंड तक इकट्ठा किया जा सकता है। इसे साफ करने के बाद योरुप में इसका गन्धद्रव्य के रूप में उपयोग होता है। यद्यपि स्वयं यह गन्धहीन होता है इसे ऐसा बनाया जा सकता है कि इसमें से गन्ध निकले। पूर्व में इसके और भी बहुत से उपयोग होते हैं यथा औषधियों, बलवर्द्धक पदार्थों और भोजन में डालने का एक पदार्थ आदि।

पोलो वर्णन करता है कि सकोत्रा के मछुए किस प्रकार उस ह्वेल को पकड़ते थे जिसके पेट में से अम्बर पाया जा सकता था। वे लोग अपने जहाज़ के पीछे पानी की सतह पर चिथड़ों के बंडल को टन्नी मछली की चर्बी में सान कर पूंछ-सी बना कर अपने साथ घसीटते ले आते। चर्बी की गंध पाकर ह्वेल तुरन्त ऊपर आ जाती। और मछुए टनी मछली की चर्बी के टुकड़े पानी में फेंक देते, जिनमें कुछ नशीली दवा लगी रहती थी। पोलो यह नहीं बताता कि वह अफीम थी या कोई दूसरी वस्तु। ह्वेल जब टन्नी को निगल जाती तो वह नशे में आ जाती और बेहोश पड़ी रहती। तब मछुए अपना जहाज़ उसके पास ले जाते, ह्वेल को घसीटते और उसके सिर में एक कांटेदार कील ठोंक देते। मछली मूर्छित होने के कारण, यह सब न जान पाती और मछुए हारपून में रस्सा फंसा कर फिर जहाज़ पर चढ़ जाते। जब वह होश में आती तो भागती। रस्से को ढील दे दी जाती और बीच-बीच में उसके साथ पीपा बांध दिया जाता। यह पीपे ब्रेक का काम देते। ह्वेल न तो उन्हें बहुत तेजी से अपने साथ घसीट पाती, और न उन सबके साथ गोता लगा सकती थी, क्योंकि इन सब पीपों की मिलकर तैरने की क्षमता अधिक होती थी। इससे मछली बहुत थक जाती और मछुए तब उसे किनारे की ओर खींच कर ले जाते।

अध्याय पच्चीस

पोलो के विश्व वर्णन का उपसंहार

हिन्दू भारत का वर्णन करने के वाद तथा यह बताने के बाद कि वहां की दो प्रसिद्ध सामुद्रिक निधियों को कैसे प्राप्त किया जाता था, पोलो अपने पाठकों को इस देश की भौगोलिक स्थिति और इसके आस-पास के राज्यों की मुख्य विशेषताओं की रूपरेखा देने की कोशिश करता है। भारत के पश्चिम की ओर के राज्यों के विषय में वताते हुए वह यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार सागरतट फ़ारस की खाड़ी की ओर क्रमबद्ध रहा और आगे अरब तथा अफ्रीका के सागरतट की ओर दक्खिन को मुड़ गया। संसार का विवरण लिखने की उसकी महान् योजना का यह एक आवश्यक भाग था। मुझे सन्देह नहीं कि उसकी मूल पांडु-लिपि के साथ—जो अब खो गयी गयी है—एक कच्चा नक्शा भी था। उसने अपने समय के भौगोलिक ज्ञान के लिए जो अंशदान दिया वह निश्चय ही बहुत बड़ा था।

उसकी सफलताओं के इस रेखाचित्र में उन अध्यायों का सार देना कठिन है, जिनमें उसने भारतीय, अरबी और अफ्रीकी समुद्री तटों का वर्णन किया है। उसने भारत के पश्चिमी तट और फ़ारस की खाड़ी के बारे में सूचना अपने व्यक्तिगत निरीक्षण से प्राप्त की है और शेष उन प्रतिवेदनों से जिन्हें उसने विश्वस्त समझा। चीन से चलकर महान् सागर मार्ग किस प्रकार फ़ारस में होमुर्ज पर समाप्त हुआ इसके बारे में उसने बहुत स्पष्ट धारणा बनाई। वह बताता है कि संगठित समुद्री लूट के कारण वर्तमान बम्बई का उत्तरी भाग कम सुरक्षा पूर्ण था। समुद्री डाकू मुसलमान थे और बड़े निर्दयी होते थे। उनके पास ऐसे तरीके भी थे जिनसे वे उन मोती और मणिमाणिक्यों को प्राप्त कर लेते, जिन्हें बन्दी जहाज़ के व्यापारी छिपाने के लिए निगल जाते थे।

पोलो अरब सागर के तट पर स्थित विभिन्न बन्दरगाहों को गिनाता है और अदन तथा अबीसीनिया का पूरा वर्णन देता है। उसके अबीसीनिया के निरीक्षण यदि तब समझ लिये जाते तो बाद के कुछ गड़बड़ विचारों को वे रोक देते। सोमाली प्रदेश में मोगादिस्को और टांगानीका में जंजीबार के अपने विवरण में वह पुर्तगालियों के पूर्वी अफ्रीकी तट पर पहुंचने के दो शताब्दी पहले का स्पष्ट चित्रण देता है। यह सच है कि उसने अफ्रीका के विस्तार की कल्पना नहीं की थी। उसने सोचा कि ये स्थान अलग-अलग बड़े द्वीपों पर

स्थित हैं। उसे यह धारणा नहीं थी कि वे एक ही महाद्वीप पर हैं जिसका सागरतट और आगे तीन हजार मील दक्षिण में अन्तरीप तक चला गया है। तथापि जंजीबार के बाद क्या है इसकी उसने कल्पना की। उसकी सूचना थी कि वहां से दक्षिण की ओर जाने पर लौट नहीं सकते क्योंकि एक तेज धारा आगे बहा ले जाती है। अज्ञात प्रदेश की उसकी एकमात्र कहानी एक विशालकाय पक्षी के विषय में है जो सम्भवतः समुद्र पक्षी की अतिरंजित कथा है, जिसके फैले हुए पंखों का विस्तार सत्रह फीट तक होता है। अपनी ज्ञान परिधि के परे फैले इन विशाल विस्तारों और बड़े-बड़े सागरों के असंख्य द्वीपों के सामने से होकर वह लौट पड़ता है और विनीत भाव से कहता है : "मैंने आपसे भारत की सारी अच्छी और श्रेष्ठतम बातों के विषय में कह दिया है," इन शब्दों में उसका तात्पर्य हिन्द-चीन में स्थित चम्पा से लेकर अफ्रीका में स्थित जंजीबार तक के विस्तार से है। "किन्तु संसार में कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जो भारत के सारे द्वीपों के विषय में सच-सच बता सके। यह इतने अनन्त हैं कि सारे के सारे खोज निकालने के लिए एक आदमी और दो की यहां तक कि तीन व्यक्तियों की आयु भी काफी न होगी।" वास्तव में यह कार्य बहुत बड़ा था और बाद के पांच सौ वर्षों तक भी पूरा न हो सका था।

यद्यपि पोलो ने भारत से आगे और कोई वर्णन करना छोड़ दिया, तथापि उसने यह नहीं महसूस किया कि उसका काम पूरा हो गया था, क्योंकि उत्तर की ओर अन्य प्रदेश अभी रह गये थे, जिनकी उसने चर्चा नहीं की थी, किन्तु जिनकी खबर उसे थी। चीन के ऊपर स्टेपी मैदानों में मंगोलों के निवास स्थान के ऊपर ठंडे अंधेरे और उजाड़ प्रदेश थे, जिनके विषय में उसने पिहले सुन रखा था। यहां हम फिर उसका अनुसरण करने से रुकेंगे, किन्तु इस बात पर अपना विस्मय अवश्य प्रकट करेंगे कि वह बर्फ जमी धरती पर कुत्ते से खींची जाने वाली स्लेज गाड़ियों, ध्रुवप्रदेशीय रीछों, काली लोमड़ियों तथा सेबल के बाहुल्य का बड़ा सजीव और विस्तृत वर्णन कर सकता था और ऐसे देश के विषय में भी बता सका जहां जाड़ों में सूर्य उदय ही नहीं होता, संक्षेप में साईबेरिया और आर्कटिक के वर्णन में। केवल इतना ही नहीं, वह मंगोल प्रदेश के उत्तर-पश्चिम में वोल्गा पर केन्द्रित रूस की भी चर्चा करता है, तथा वहां की भयानक ठंड से बचाने वाले बड़े-बड़े चूल्हों तथा वोद्का के बारे में भी लिखता है।

सुदूर उत्तर में अन्तिम बार झांकने के साथ-साथ वह अपनी भौगोलिक दृश्यावली की परिसमाप्ति करता है। अब हमारे लिए यह जानना शेष रह जाता है, कि वह वेनिस कैसे लौटा और उसके बाद उसने क्या किया तथा कैसे यह किताब लिखी।

अध्याय छब्बीस

पोलो का वेनिस वापिस लौटना

१२८७ के आस-पास, पोलो अपने भारतीय मिशन से पीकिंग लौटे। जैसी मैंने कल्पना की है, यदि वे बौद्ध स्मृति-चिह्न ले आये होंगे और उनके अतिरिक्त बहुत-सी मनोरंजक सूचनाएं भी अपने साथ लाए होंगे, तो कुबलाई निश्चय ही उनसे मिलकर बहुत खुश हुआ होगा। मूलग्रन्थ के अनुसार उसने अपने साव-धानी से तैयार किए गए विवरण और जिन देशों में वह गया था वहां पर से संग्रहीत विचित्र पदार्थों का एक संग्रह भी कुबलाई को पेश किया। जितने समय से वह वहां था (अब बारह वर्ष से ऊपर) उसकी प्रसिद्धि, बराबर बढ़ती गई थी, पर अब वह और भी अधिक बढ़ गयी थी। लगता है कि वह खाकान के निकट ही विश्वस्त पद पर प्रतिष्ठित था, और आगे भी निरीक्षण दौरों पर जाता ही रहा। सम्भवतः इस बार वह युन्नान-बर्मा के दौरे पर गया। हम यह तो मान ही लें कि वह भारी वेतन पाता होगा, और हम यह भी निश्चयपूर्वक जान गए हैं कि उसने और दोनों ज्येष्ठ पोलो ने व्यापार में अच्छा लाभ उठाया था, क्योंकि यह स्पष्टरूप से कहा गया है कि वे रत्नों और स्वर्ण में बहुत धनी हो गये थे।

यद्यपि वे धनी और सम्मानित तो हो गये थे पर अब उन्हें घर की याद सताने लगी थी। कुछ तो उन्हें स्वदेश की याद बेचैन करती और कुछ वे अब इतने धनी हो गए थे कि वे अपने देशवासियों के पास जाकर सम्पन्न स्थिति में बुढ़ापे को गुजारने की उम्मीद कर रहे थे और कुछ उन्हें यह भी भय था कि अगर कहीं कुबलाई मर गया तो वे अपने साथ इतने धन के साथ इस देश से बाहर कभी भी न जा पायेंगे। कुबलाई अब इकहत्तर का था और लोगों का यह ख्याल था कि वह अब बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहेगा। पोलो उसके विशेष कृपापात्र रहे थे इससे बाकी अमीर उमरा में कुछ लोग उनसे ईर्ष्या करने लगे थे। पोलो को भय था कि हो सकता है, कुबलाई का उत्तराधिकारी उनके प्रति इतना अधिक सहृदय न हो और वे लोग जो उनके प्रति दुर्भावना रखते हैं, उन्हें भी उनको हानि पहुंचाने का अवसर मिल सकता है। इन कारणों से, और कुछ अन्य कारणों से भी वे चीन देश छोड़ने को आकुल हो

उठे। किन्तु किसी निरंकुश शासक का राज्य छोड़ना कभी सरल नहीं होता। एशिया में कोई व्यक्ति शासक के लिए जितना ही अधिक उपयोगी होता था, उतना ही उसे उस शासक से, बाहर जाने के लिए आज्ञापत्र प्राप्त करना कठिन होता।

पोलो लोग इस बात को अच्छी तरह जानते थे और कुबलाई से आज्ञा प्राप्त करने के बारे में उन्हें अभी पूरा विश्वास भी नहीं हुआ था। किन्तु एक दिन निकोलो पोलो ने यह देखकर कि खान बहुत खुश है, उसे घुटनों के बल नमस्कार करके तीनों की ओर से घर जाने की अनुमति मांगी। इन शब्दों को सुनकर वह बहुत परेशान हो गया और जवाब दिया "मुझे यह तो बताओ, राह में मरने के लिए तुम क्यों जाना चाहते हो? अगर तुम्हें सोने की जरूरत है तो मैं तुम्हें उससे और कहीं ज्यादा सोना दे देता हूं, जितना तुम्हारे घर पर है, और इस तरह जो भी और चीज़ तुम मांगोगे वह मैं दूंगा।"

निकोलो ने असहमति प्रगट की कि यह बात नहीं है कि वह अधिक धन चाहता है, किन्तु विवाहित होने के नाते और इतने समय से अपनी पत्नी और अपने बच्चों को न देख सकने के कारण वह अब घर जाना अपना कर्त्तव्य समझता है। किन्तु कुबलाई ने उसकी बात न सुनी,

"दुनिया की किसी भी शर्त पर मैं राजी नहीं हूं कि तुम मेरे राज्य से चले जाओ।"

किन्तु अस्वीकृति कभी अन्तिम नहीं होती, विशेषतः पूर्व में। और फिर कई बार पोलो ने अपनी जाने की प्रार्थना दुहरायी, पर उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। ऐसा लगता था कि जब खाकान मर जायेगा तो उन्हें पुनः प्रयत्न करना पड़ेगा। सबसे बड़ा संकट तो यह था कि सम्भवतः उत्तराधिकार के लिए झगड़ा उठ खड़ा हो और उत्तराधिकार के लिए लड़ने वालों की सेनाएं सभी स्थल मार्गों को रोक दें। पर, चूंकि उस देश से निकलने का कोई और उपाय नहीं था, इसलिए वे भाग्य के भरोसे बैठ गये।

मार्को पोलो के भारतीय मिशन से लौटने के कुछ ही समय बाद फ़ारस के अलखान अरगन की ओर से एक राजदूतमंडल आया। उसकी पत्नी बोल्गाना का १२८६ में देहान्त हो गया था और अपनी मृत्यु शैया पर उसने अपने पति को उसे यह वचन देने की प्रार्थना की थी कि उसकी रानी का स्थान उसके ही मंगोल फिर्के के अतिरिक्त और किसी महिला को न लेना चाहिए ऐसी राजकुमारी पाने के लिए पीकिंग सूचना भेजना और अपने चचरे पितामह

खाक़ान की अनुमति पाना आवश्यक था। उसी के अनुसार अर्गन ने तीन राजदूतों को थल-मार्ग से रवाना किया। सम्भवतः वे १२८८ के लगभग राजधानी में पहुंचे होंगे। खाकान उनसे बहुत सम्मानपूर्वक मिला और अविलम्ब अपने पौत्र की प्रार्थना स्वीकार की क्योंकि वह उसे बहुत चाहता था और उनके बीच कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ था, जैसा कि साम्राज्य के दूरस्थित भागों के अपने सम्बन्धी अधिकारियों के साथ उसके झगड़े हुए थे। खोज करने पर पता चला कि कोकाचिन, नाम की एक एक सत्रह वर्ष की बहुत सुन्दर और सुशील स्वभाव की लड़की जो दिवंगत रानी के फिर्के की ही थी, वहां भेजी जाने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त थी।

इस सब में काफी समय लगा और वे राजदूत कोकाचिन के साथ १२८९ तक वापस न जा सके थे। उन लोगों ने वही स्थल मार्ग चुना जिससे वे आये थे, किन्तु आठ महीने की यात्रा के बाद वे ऐसे क्षेत्र में पहुंचे जहां के गृहयुद्ध ने सारा मार्ग अरक्षित कर दिया था। जो भारी दायित्व उन्हें सौंपा गया था, उसके साथ वे किसी आपत्ति का सामना करने का साहस न कर सके और इस कारण पुनः पीकिंग लौटने पर विवश हो गये, जहां वे १२९० में किसी समय पहुंचे होंगे। अब वे एक परेशानी में थे। फारस कैसे पहुंचा जाए ?

इस स्थिति में दरबार में उनका पोलो लोगों से परिचय हुआ। उनमें से प्रत्येक की यही अभिलाषा थी कि यथासम्भव शीघ्र से शीघ्र घर पहुंचा जाय। उनके आपस में मिलने से एक समझौता हुआ। मार्को पोलो, समुद्री मार्ग अच्छी तरह जानता था इसलिए यह तय हुआ कि वह राजदूतों को सुरक्षित रूप से फारस पहुंचा देगा यदि वे उसे, उसके पिता और उसके चचा को जाने देने के लिए खाकान को राजी कर लें।

इसके अनुसार राजदूतों ने खाकान से इस अभिप्राय की प्रार्थना की, कि वे बहुत समय से अनुपस्थित हैं और अर्गन परेशान होगा। यह मालूम नहीं कि स्थल मार्ग कब तक खुले और जाने का केवल समुद्री रास्ता ही था। चूंकि मार्को पोलो को इन रास्तों का अनुभव था, इसलिए उसके साथ जाना सुरक्षित रहेगा, पर क्या खाकान उसे जाने देगा ? उनका तर्क इतना पुष्ट था, कि कुबलाई उसका प्रतिरोध न कर सका। वह मान तो गया, पर कहा जाता है कि बड़ी अनिच्छापूर्वक। और अन्त में उसने पोलो को छुट्टी की स्वीकृति दे दी।

किन्तु जनवरी १२९२ तक विदाई रुकी रही। उन लोगों के जाने से पहले

खाकान ने उन तीनों का दरबार में सत्कार किया। उसका व्यवहार अत्यन्त अनुग्रहपूर्ण था और उनके प्रति अपने स्नेह की चर्चा भी उसने की और कहा, "वह उन्हें जाने दे रहा था, किन्तु वह उनसे यह वचन देने को अवश्य कहेगा, कि कुछ दिनों घर रहने के बाद वे लौट आयेंगे। उनकी यात्रा सरल करने के लिए उसने उन्हें सोने की दो प्रसिद्ध पटियां अथवा अनुमति-पत्र दिये। उसने उन्हें पोप, फ्रांस के राजा, इंग्लैण्ड के राजा, स्पेन के राजा, और योरुप के अन्य राजाओं के लिए पत्र दिए और भेंट दी। उन्हें चौदह जहाज दिये गये, कुछ में बारह मस्तूलों का प्रबन्ध था। लेडी कोकाचिन के अतिरिक्त उन्हें एक मंग राजकुमारी को भी साथ ले जाना था।" लगता है कि वह भी अलखान के हरम के लिए ही भेजी जा रही थी।

राजभक्ति और निष्ठा की बहुत-सी अभिव्यक्तियों के साथ उन्होंने अपने मालिक से विदा ली और ज़ेटन पर बहुत से दरबारियों की भीड़ ने उन्हें बिदा दी। विदाई भेंट में ऊंचे मूल्य के लाल और अन्य रत्न उन्हें दिये गये।

उन्होंने जो रास्ता पकड़ा वह वही था जिस रास्ते से मार्को पोलो अपनी पिछली लंका यात्रा पर गया था। जिस तरीके से यह पुस्तक लिखी गई है उसके कारण दोनों समुद्र यात्राओं में अन्तर बताना असम्भव है। उदाहरण के लिए जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, सुमात्रा में उन्हें जो देरी लग गई थी, जब उन्हें तट पर छावनी बनानी पड़ी और वहां मोनसून की समाप्ति की प्रतीक्षा में ठहरना पड़ा था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह पहली यात्रा में हुआ या दूसरी में। हम जो कुछ जानते हैं वह यह कि इस दूसरी यात्रा में उन्हें जावा पहुंचने में तीन महीने लगे और अगले अट्ठारह महीनों में वह फ़ारस की खाड़ी पहुंचे। उन्हें जरूर कहीं पर रुकना पड़ा होगा। यह देरी या तो उत्तरी-पूर्वी हवा न पा सकने के कारण, या सम्भवतः जहाज़ टूटने या किसी अन्य दुर्घटना से हुई होगी, उन्हें दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा था, इसका संकेत उन्होंने किया है, क्योंकि जब वे ज़ेटन से चले तो उनके साथ छः सौ व्यक्ति थे (मल्लाहों को बिना गिने, क्योंकि लगता है कि वे कम से कम पन्द्रह सौ थे) किन्तु छः सौ के परिजनवर्ग में से केवल अट्ठारह अपने इष्ट स्थान पर पहुंचे। किन्तु दोनों राजकुमारियां सुरक्षित रहीं, उसी प्रकार उनकी परिचारिकाएं भी।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, फ़ारस में उतर कर उन्हें पता चला कि अर्गन उस दवा को पीने से जिसे वह संजीवनी समझता था—मर चुका था।

अतः लेडी कोकाचिन और सुंग राजकुमारी अर्गन के एक बेटे गजन को दे दी गयीं। दोनों तरुण और सुन्दर स्त्रियों से अलग होने का दृश्य मर्मस्पर्शी था। क्योंकि रास्ते में उनकी अपनी बेटियों की भांति देखभाल करने से पोलो को उनसे बहुत ममता हो गई थी और उनके साथ उन्हें इतने साहसिक अनुभव हुए थे कि उन्हें उनसे बड़ा मोह हो गया था। लेडी कोकाचिन ने जब बिदा ली तो वह रो पड़ी। मूलपाठ में एक संकेत है कि एक स्थान पर मार्को ने उसकी जान बचायी थी।

वे अभी फारस में ही थे कि उन्होंने सुना कि खाक़ान कुबलाई की मृत्यु हो गयी थी। इस समाचार ने उनके इस अनुमान को प्रमाणित कर दिया कि वे ठीक समय ही चीन से निकल आये थे। इससे यह भी असम्भावित हो गया कि यदि बाद में वे चीन लौटना भी चाहें तो भी न लौट सकते थे।

ऐसे लगता है कृष्ण सागर में फ़ारस से तबिजान तक उनकी यात्रा का अन्तिम भाग बड़ा खतरनाक रहा था। किन्तु सोने की पटियां दिखलाने पर उन्हें शक्तिशाली रक्षकदल दे दिया गया था। डाकुओं से भरे प्रदेशों में जो पड़ाव थे, वहां उनकी रक्षा दो सौ की संख्या में घुड़सवार करते। पोलो लिखता है, "अन्त में ईश्वर की कृपा से, बहुत दिनों और बहुत श्रम के बाद, हम तबिजान और वहां से कुस्तुन्तुनिया पहुंचे।" उस नगर से जहाज़ लेकर १२६५ में बहुत-सा धन लेकर, भगवान् को धन्यवाद देकर जिसने हमें इतने बड़े संकटों और अनंत आपत्तियों से बचाया था, वेनिस पहुंचे।

मार्को पोलो इसके बाद उन्तीस वर्ष तक जीवित रहा। इस तथ्य के अतिरिक्त, कि उसने अपनी पुस्तक जेनोआ के कारागार में लिखी, हमें उसके विषय में अन्य महत्वपूर्ण बातों की बहुत कम जानकारी है। वह कहानी जो सामान्यतः सभी को मालूम है कि जब उसने उसके पिता और उसके चचा ने घर पहुंच कर, पारिवारिक भवन का द्वार खटखटाया तो उनके सम्बन्धियों ने उन्हें नहीं पहचाना, और उन्हें अन्दर नहीं आने दिया, इतनी असंगत है कि इस पर विश्वास नहीं होता। यह कहानी विस्तार से जी० बी० रोमूसियो की पुस्तक के मुद्रित संस्करण की प्रस्तावना में मिलती है। यह पुस्तक १५५३ में लिखी गयी और १५५६ में—यात्री की मृत्यु के दो सौ चौंतीस वर्ष बाद प्रकाशित हुई। किन्तु कहानी में सम्भवतः कुछ आधार है। और उस आधार को मानना इतना अकारण नहीं है क्योंकि जैसा रोमूसियो कहता है तीनों पोलो अपने तातार वेश में आये इसलिए तुरन्त पहचाने नहीं जा सके। इस अनिश्चितता की स्थिति को

देर तक रखने और अपने कपड़ों में सिये हुए रत्न दिखाने में उन्हें जरूर आनन्द आया होगा। हमें यह निश्चित रूप से मान लेना चाहिए कि जैसे ही उनका धनी होना ज्ञात हुआ होगा उनकी पहिचान के विषय में फिर प्रश्न न किया गया होगा। उनका घर लौटाना चाहे जैसे भी हुआ हो, इतना हम जानते हैं कि वे रियो-द-सान-जियोवानी और रियो-द-सान मारिना के कोने पर अपने पारिवारिक भवन में फिर से रहने लगे थे, जो अभी तक मौजूद है, किन्तु तेरहवीं शताब्दी के उस भवन की मीनारों में से एक के अतिरिक्त ऊपरी ढांचे में कुछ और नहीं बचा है।

अभी तक विद्वानों ने यही माना था कि कर्जोला के युद्ध के बाद ही जो सितम्बर १२९८ में हुआ था—मार्को पोलो को कैद किया गया था। पर अब इस विचार का त्याग कर दिया गया है और यह माना जाता है कि उसके लौटने के अगले वर्ष, अर्थात् १२९६ में वह एशिया माइनर में लायास के समीप कैद किया गया था, जबकि पच्चीस वेनिस के व्यापारियों ने जिनोआ के पन्द्रह व्यापारियों से मारपीट की और उसके परिणामस्वरूप जो युद्ध हुआ उसमें वेनिसवासी पराजित हुए और उनके नाविक बन्दी बना लिये गये। मार्को जिनोआ ले जाया गया और वहां १२९९ तक—जब वह मुक्त किया गया था—कारावास में रहा। यह इन तीन वर्षों के कारावास की बात है कि उसने इनमें अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। किन्तु उसने यह अपने हाथों नहीं लिखी। संयोग से बंदियों में पीसा का कोई रुस्तीशेलो था। यह व्यक्ति—जैसा कि अब हमें उसे कहना चाहिए साहित्यिक था, अर्थात् उसने कुछ कल्पित बातें लिख दी हैं और वह काफी हद तक सुसंस्कृत था। उसके लिए वह बड़ा सुखद क्षण रहा होगा जब मार्को ने उससे प्रस्ताव किया होगा कि वे दोनों मिलकर इस रचना पर काम करें। कोई भी समझ सकता है कारावास का समय बिताने के लिए उसके लिए और कुछ भी इससे अच्छा नहीं हो सकता था। कहा जाता है कि पुस्तक १२९८ में समाप्त हो गयी, और उससे अगले वर्ष अपनी मुक्ति पर मार्को पोलो उसे अपने साथ वेनिस ले आया।

पोलो और उसकी पुस्तक के बारे में उसका एक समकालीन लेखक, इयकोपो द आक्वी लिखता है: "भटकानेवालों की जबानों के कारण उसने जो देखा उससे कम कहा। वे दूसरों पर झूठ का आरोप कर देते हैं और अविवेकपूर्वक उसकी निन्दा करते हैं कि जिस किसी चीज़ पर वे विश्वास नहीं कर सकते या जिसे समझेंगे ही नहीं, और वह पुस्तक संसार के आश्चर्यों के विषय में मिलियो की किताब कहलायेगी और उसमें बड़ी और विस्तृत और प्रायः

अविश्वसनीय चीजें मिलेंगी।" मरते समय, उसके मित्रों ने उससे अपनी पुस्तक में संशोधन करने तथा उसने जो कुछ अतिशयोक्ति लिख दी थी उसे निकालने को कहा। इस पर उसने उत्तर दिया :

"मैंने जो कुछ देखा है उसका आधा भी नहीं लिखा।"

यद्यपि पुस्तक उस काल के योरुपीय लोगों की समझ के बाहर की चीज थी, जिस पर उन्होंने अज्ञान के कारण अविश्वास किया, फिर भी वह बड़ी जनप्रिय सफलता थी। वह इतनी जनप्रिय थी कि मूल पांडुलिपि उतना अधिक पढ़ने के बाद शेष न रही जितनी कि वह पढ़ी गयी थी। चूंकि प्रतियों की मांग जारी रही, लापरवाही से लिखी या जानबूझ कर सम्पादित की हुई बहुत अधिक पांडुलिपियां अस्तित्व में आ गयीं। मूल पुस्तक इतालवी मिश्रित भोंडी फ्रेंच भाषा में लिखी गयी थी जिससे कभी-कभी समकालीन व्याख्याकार भी उलझन में पड़ जाते थे, "और इस प्रकार" पोलो का अन्तिम सम्पादक ए० सी० मौले कहता है, "प्रत्येक नकल करने वाले ने पहली में से ही छोड़ दिया, संक्षेप किया, व्याख्या की, और जैसा ठीक समझा, भूलें की—और जिसका हमें सामना करना पड़ रहा है। उसका परिणाम है कि लगभग एक सौ बीस पांडुलिपियां हैं जिनके विषय में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कोई भी दो एक समान नहीं हैं।"

किन्तु विद्वान लोग इस प्रकार की समस्याओं का सामना करने के अभ्यस्त रहते हैं। जब उनके सामने बहुत अधिक पांडुलिपियां आ जाती हैं तो उनकी पारस्परिक तुलना करके वे बहुत कुछ मूलपाठ के समान ही कोई अन्य चीज पुनः स्थापित कर लेते हैं। यही मार्को पोलो के लिये भी किया गया। १९३८ में प्रकाशित, मौले के महान् संस्करण में वर्तमान पांडुलिपियों के विस्तृत चुनाव से निकाला हुआ एक मूलपाठ अब भी प्राप्य है। पहले के सम्पादकों यूल और कोर्डियर द्वारा प्रयुक्त मूलपाठ से यह बहुत अधिक भिन्न है। इस अन्तर का एक बड़ा कारण दिसम्बर १९३२ में पूर्वीय विषयों के पंडित और संग्रहकर्त्ता सर पर्सिवल डेविड द्वारा स्पेन में तोलेदो के गिरजे की चैप्टर लायब्रेरी में पोलो की एक नयी पांडुलिपि की खोज थी। यह पांडुलिपि जेल्दा पांडुलिपि के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि किसी समय यह अट्ठारहवीं शती में गिरजों के उच्चाधिकारी कार्डिनल फ्रांसिस्को जवेरियो दे जेल्दा के संग्रह में थी। इसमें बहुत से नये अंश हैं और यह बहुत महत्त्वपूर्ण भी है क्योंकि इसमें १५५९ में छपे रोमूसियो संस्करण के वे अंश हैं जिन पर पहले संदेह किया जाता था,

चूंकि वे वर्तमान पांडुलिपि में नहीं आते। इस प्रकार **"मार्कों पोलो की यात्राएं"** का प्रामाणिक मूलपाठ बहुत अधिक बढ़ा दिया गया है और पहले से कम रूखा तथा अधिक पठनीय है।

यदि जेलदा पांडुलिपि जैसी महत्त्वपूर्ण खोज १९३२ तक के समय तक हो सकती है तो निःसंदेह और भी खोजों की अपेक्षा की जा सकती है। तथापि, समस्त सामान्य प्रयोजन के लिए मूलपाठ पर्याप्त रूप से प्रामाणिक है।

जेनोग्रा में अपने बन्दी जीवन से मुक्त होकर मार्को पोलो को पच्चीस वर्ष और जीवित रहना था। विद्वानों के अत्यन्त श्रमसाध्य प्रयत्न भी उसके बारे में कुछ थोड़े से तथ्यों को छोड़कर कुछ अन्य निकाल पाने में असफल ही रहे और ये तथ्य अधिकतर आकर्षणहीन हैं। यह सबको ज्ञात है कि उसने विवाह किया था और उसके तीन बेटियां थीं। उसका उत्तराधिकार-पत्र विद्यमान है और उसमें उसकी सम्पत्ति के धन का हिसाब दिया गया था। किन्तु आज की तुलना में तेरहवीं शताब्दी के धन का निर्धारण करने की कठिनाई की वजह से यह ठीक से कहना असम्भव है कि वह सम्पत्ति कितने मूल्य की थी। यह नहीं लगता कि वह एक धनी व्यक्ति के रूप में मरा था। सम्भवतः चीन से लौटने पर उसे व्यापार में हानि हुई हो, और इससे जो सम्पत्ति उसने बनायी थी वह भी कम हो गयी हो। किन्तु हमें इतना अधिक ज्ञान नहीं कि हम यह कह सकें कि ऐसा ही हुआ था।

जब वह मरा तो सत्तर वर्ष का था, और यह विश्वास किया जाता है कि वह सान लोरेंजों के गिरजे में दफनाया गया था। किन्तु गिरजे का पुर्ननिर्माण किया गया है, इसलिए अब वहां ऐसी कोई चीज नहीं, जो उसकी कब्र की ठीक स्थिति बता सके।

अध्याय सत्ताइस

सामान्य निष्कर्ष

जो कोई मार्को पोलो की पुस्तक की जितनी ही जांच करता है उतना ही उसे अचम्भा होता है कि क्या उसने उसे उसी रूप में लिखा था, जिसमें वह लिखी हुई पाई गई है। एक व्यापारी के बेटे की हैसियत से जिसने सत्रह वर्ष की उम्र में वेनिस छोड़ा और बीस वर्ष तक पृथ्वी के दूसरे भाग में घूमता रहा, किसी को भी उससे विचित्र व्यक्तिगत अनुभवों की अपेक्षा होगी, जिसमें सफलताओं और दुर्दिनों के प्रति उसके अपने भावों का उल्लेख हो। उसकी तरह के महान् साहसी के लिए अपने को अभिव्यक्ति देने का यही स्वाभाविक मानवीय ढंग होता है। इसके विपरीत, उसने एक विद्वत्तापूर्ण रचना लिखी। वह रचना इस ढंग की थी, जैसे किसी मध्ययुगीन विद्या के केन्द्र से सम्बन्धित कोई व्यक्ति ज्ञान की अभिवृद्धि और अज्ञान के निराकरण के लिए लिखना अपना कर्त्तव्य समझता—यद्यपि यह जेल में बोल कर लिखाई गयी, इसमें सावधानी से नियोजित होने के लक्षण दिखाई देते हैं। बोल कर लिखाने से पहले उसने पूरे विवरण का एक खाका बना लिया था। पुस्तक राज्यों के प्रधानों को सम्बोधित करके एक प्रस्तावना से आरम्भ होती है, जिसमें उन्हें परामर्श दिया गया है कि वे उसे पढ़वा कर सुनें क्योंकि उसमें पूर्व के वे अमूल्य विवरण हैं जो लेखक के अपने अनुभवों और प्रमाणित साक्ष्यों पर आधारित हैं। रूपरेखा में दिये गये उसके वर्णन—कि किस प्रकार पहले उसके पिता और उसके चचा ने, और फिर उसने स्वयं यात्राएं कीं—का उद्देश्य अपने कारनामों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करने का नहीं है, किन्तु यह संकेत करना है कि पुस्तक के मूल भाग में दी गई सामग्री विश्वासनीय स्वीकार की जा सके, क्योंकि वह जिन स्थानों का उल्लेख करता है वह वहां गया था।

तब थोड़े शब्दों में यथातथ्य टिप्पणियों के क्रम में दिया हुआ, पूर्वी संसार का मुख्य विवरण आता है जो उसकी सम्मति में पुस्तक का सार है। यद्यपि यह पुस्तक विषय से असम्बधित व्यक्ति द्वारा लिखी गई है, पर फिर भी एशिया का यह ज्ञान-कोष उस काल की सबसे बड़ी शिक्षात्मक रचना के समान माना गया। क्योंकि इसमें उच्चकोटि के महत्त्व की कई सूचनाएं थीं, जिन्हें धार्मिक कट्टरता, वास्ध्य, हवाई कल्पनाओं तथा सामान्य ज्ञान के अभाव से परे हट कर सतर्क,

स्थिर और श्रमसाध्य रीति से प्रस्तुत किया गया है।

यह बार-बार दुहराया नहीं जा सकता कि पोलो अपने पाठकों को आश्चर्यचकित नहीं किन्तु शिक्षित करना चाहता था। वह ज्ञान को मूल्यवान मानता था, वह अपना जीवनवृत्त लिखने योग्य नहीं समझता था। यह उसकी साहित्यिक निरीहता प्रकट करता है, क्योंकि उस नीरस विवरण में जो उसने लिखा, आत्मचरित् में वह कहीं अधिक मूल्यवान् तथ्य प्रतिपादित कर सकता था। किन्तु यह अधिक कठिन साहित्यिक कार्य होता, जिसके लिए, यह सोच लेना सुरक्षित है, कि वह अक्षम था।

मैंने कई बार कहा है कि उसकी पुस्तक समझी नहीं गयी। वह जनसाधारण द्वारा नहीं समझी गयी क्योंकि उसके विषय अविश्वसनीय लगे। और लगता है कि विद्वानों ने उसे इसलिए पसन्द नहीं किया कि उन्होंने शायद उसे पढ़ा नहीं, या अगर पढ़ा है, तो वे उसे वर्तमान ज्ञान से सम्बन्धित करने में असफल रहे। इस सम्बन्ध में यह महत्त्वपूर्ण है कि दूसरी पीढ़ी का महान् बुद्धिवादी दान्ते, मार्को पोलो का उल्लेख नहीं करता, हमारी उससे नरक पाप मोचन के लोक अथवा स्वर्ग में भेंट नहीं होती और न उसकी पुस्तक के किसी उल्लेख से।

निम्नलिखित परिणामों का उल्लेख किया जा सकता है। कि यद्यपि पोलो विद्वतापूर्ण पुस्तक लिखने में अक्षम था, पर फिर भी वह उसे लिखने बैठा, कि उसने उसमें से ऐसी प्रत्येक सूचना अलग रखी जो उसके विचार में ऐसी गम्भीर और सूचनात्मक रचना के लिए अनुपयुक्त होगी, कि उसने हांग-चाओ में सुंग लोगों की संस्कृति और चीन तथा लंका में बौद्ध धर्म आदि विषयों के बारे में भी लिखा, जबकि यदि वह वास्तव में अपने समय का विद्वान व्यक्ति भी होता, तो भी उसकी क्षमता उस कार्य की महानता के सामने कम ठहरती। किन्तु अपनी अल्प शिक्षा के बावजूद भी वह तेरहवीं शती के योरुप की सबसे महान् रचना लिख पाया, क्योंकि उसने जो कुछ देखा या सुना था उसे उसने विधिपूर्वक लिख लिया। यह उसकी समीक्षाबुद्धि थी, जिसने उसे कुछ असंगत लिखने से बचा लिया और चूंकि उसके अनुभवों ने उसे उस प्रकार का विषय उपलब्ध कराया जो उसके समय के किसी भी लेखक के विषय से अधिक आश्चर्यजनक था। यह तीन चीजें, स्पष्ट वर्णन, सामान्य ज्ञान और अतुलनीय रुचि का विषय उसके लिए काफी रहा।

यदि उसमें अधिक भाव बुद्धि और कल्पना होती तो वह चीनियों से कुछ और भी सीख लेता। ठीक वैसे ही जैसे चीनियों ने कुछ मंगोलों को शिक्षित किया,

श्रौर उन्हें बर्बरता से सभ्यता की ओर उठाया। उसी प्रकार वे मार्को पोलो को भोंडे व्यापारी से सभ्य मानव में परिवर्तित कर सकते थे। किन्तु वह इतना प्रतिभाशाली और भावुक नहीं था कि वह अपने को ऐसा बना सकता। उसकी यात्राओं में शिक्षात्मक शक्ति के होने पर भी, और बुद्धि में उससे बहुत अधिक बढ़े-चढ़े व्यक्तियों से सम्पर्क होने पर भी, उसकी क्षमताओं ने उसे बढ़ने नहीं दिया। फिर भी उसकी बुद्धि का विकास अपनी यात्राओं और अनुभवों के कारण इस सीमा तक जरूर हुआ, जिसने उसे वह लिखने में समर्थ बनाया, जो उसके पाश्चात्य समकालीन लोगों की पूरी समझ से परे थे। तथापि उसने अपनी योरुपीय शिक्षा-दीक्षा के उन मानसिक बन्धनों को उस सीमा तक नहीं तोड़ा, जहां तक वह उस स्थिति में तोड़ सकता, यदि चीनी लोग उसे अपने स्तर तक शिक्षित करने में सफल होते।